BAHN201CCT

मध्यकालीन हिंदी कविता

बी. ए.

(द्वितीय सेमेस्टर के लिए)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad

Course : Bachelor of Arts

ISBN: 978-93-93722-02-7

Edition : मार्च, 2022

प्रकाशक	:	रजिस्ट्रार, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद
संस्करण	:	मार्च, 2022
प्रतियाँ	:	200
मूल्य	:	435/- रुपये
डिजाइनिंग एंड सेटिंग	:	डॉ. मो. अकमल ख़ान, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू, हैदराबाद
आवरण	:	डॉ. मो. अकमल ख़ान, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू, हैदराबाद
मुद्रक	:	हाईटेक प्रिंट सिस्टम लिमिटेड, हैदराबाद

Madhyakaleen Hindi Kavita

Editor
Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, DDE, MANUU, Hyderabad

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University
Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat
Director: dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in
Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

संपादक-मंडल

(Editorial Board)

प्रो. ऋषभदेव शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिंदी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

प्रो. श्याम राव राठोड़
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.
हैदराबाद

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद

डॉ. आफ़ताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

डॉ. वाजदा इशरत
अतिथि प्राध्यापक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू, हैदराबाद

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

गच्चीबावली, हैदराबाद-32, तेलंगाना-भारत

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

लेखक	**इकाई संख्या**
• **डॉ. पठान रहीम खान,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मानू	1,5,9,13
• **डॉ. पूर्णिमा शर्मा**, काउंसलर, बी.आर.ए.ओ.यू. हैदराबाद	2, 3
• **डॉ. एन. लक्ष्मीप्रिया,** असिस्टेंट प्रोफेसर, महात्मा गांधी गवर्नमेंट कॉलेज, मायाबंदर (अंडमान निकोबार)	4, 8
• **डॉ. सुपर्णा मुखर्जी,** हिंदी विभाग, सेंट एंस जूनियर एंड डिग्री कॉलेज फॉर गर्ल्स एंड वूमेंस, हैदराबाद	6
• **डॉ. सुषमा देवी,** सहायक व्याख्याता, हिंदी विभाग, भवन्स विवेकानंद कॉलेज, सैनिकपुरी, हैदराबाद	7
• **प्रो. निर्मला एस. मौर्य,** *कुलपति, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर*	10, 11
• **डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा,** असिस्टेंट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद	12, 14
• **डॉ. अबू होरैरा,** अतिथि प्राध्यापक, मानू, हैदराबाद.	15, 17
• **डॉ. के. अविनाश,** अकादमिक एसोसिएट, डॉ. बी. आर. अंबेडकर सार्वत्रिक विश्वविद्यालय, हैदराबाद	16
• **डॉ. मंजु शर्मा,** अध्यक्ष, हिंदी विभाग, चिरेक इंटरनेशनल स्कूल, हैदराबाद	18
• **प्रो. गोपाल शर्मा**, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भाषा विज्ञान विभाग, अरबा मींच विश्वविद्यालय, इथोपिया	19, 20
• **डॉ. वाजदा इशरत,** अतिथि प्राध्यापक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू	21, 23
• **डॉ. शशि बाला,** हिंदी अध्यापक, केंद्रीय विद्यालय, राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, शिवरामपल्ली, हैदराबाद	22, 24

विषयानुक्रमणिका

संदेश	:	कुलपति	7
संदेश	:	निदेशक	8
भूमिका	:	पाठ्यक्रम –समन्वयक	9

खंड/इकाई		**विषय**	**पृष्ठ**
खंड 1	**:**	**कबीरदास**	
इकाई 1	:	कबीरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व	12
इकाई 2	:	उद्बोधन	27
इकाई 3	:	भक्ति निरूपण	42
इकाई 4	:	झीनी झीनी बीनी चदरिया	57
खंड 2	**:**	**सूरदास**	
इकाई 5	:	सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व	72
इकाई 6	:	विनय	87
इकाई 7	:	बाल लीला वर्णन	102
इकाई 8	:	भ्रमरगीत	117
खंड 3	**:**	**तुलसीदास**	
इकाई 9	:	तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व	132
इकाई 10	:	नीति	147
इकाई 11	:	गुरु वंदना	161
इकाई 12	:	राम वन गमन	176

खंड 4	**:**	**मीराँबाई और रसखान**	
इकाई 13	:	मीराँबाई : व्यक्तित्व और कृतित्व	191
इकाई 14	:	कृष्ण भक्ति	206
इकाई 15	:	रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व	221
इकाई 16	:	भक्ति भावना	236
खंड 5	**:**	**बिहारी**	
इकाई 17	:	बिहारी : व्यक्तित्व और कृतित्व	251
इकाई 18	:	भक्ति	266
इकाई 19	:	शृंगार वर्णन	281
इकाई 20	:	नीति निरूपण	296
खंड 6	**:**	**भूषण और घनानंद**	
इकाई 21	:	भूषण : व्यक्तित्व और कृतित्व	311
इकाई 22	:	शिवाजी की सेना	326
इकाई 23	:	घनानंद : व्यक्तित्व और कृतित्व	341
इकाई 24	:	प्रेम की पीर	356
		परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना	**371**

प्रूफ रीडर:

प्रथम : डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक, दू. शि. नि., मानू

द्वितीय : श्री एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक, दू. शि. नि., मानू

अंतिम : डॉ. आफताब आलम बेग, सहायक कुल सचिव, दू. शि. नि., मानू

संदेश

मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय की स्थापना 1998 में हमारे देश की संसद के अधिनियम के तहत हुई। इसके चार सूत्री जनादेश हैं; (1) उर्दू भाषा का प्रचार और विकास,(2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा, (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षण द्वारा शिक्षा तथा (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। ये कुछ मुख्य बिंदु हैं जो इस विश्वविद्यालय को अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग और विशिष्ट बनाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर ज़ोर दिया गया है।

उर्दू के माध्यम से ज्ञान को बढ़ावा देने का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी वर्ग के लिए आधुनिक ज्ञान प्रदान करना है । एक लंबे अंतराल से उर्दू का दामन अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान सामग्री से लगभग ख़ाली रहा है । किसी पुस्तकालय या पुस्तक विक्रेता की अलमारियों का सामान्य अवलोकन इस बात की पुष्टि करता है कि उर्दू भाषा अब केवल साहित्य की कुछ विद्याशाखाओं के लिए ही सीमित होकर रह गई है और यही स्थिति उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में भी देखने को मिलती है । ये वे चुनौतियाँ हैं जिनका सामना उर्दू यूनिवर्सिटी को करना है| स्वयं अध्ययन सामग्री की परिस्थिति भी इस से अलग नहीं है। विद्यालयी स्तर पर उर्दू पुस्तकों की अनुपलब्धता प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के आरंभ में चर्चा का विषय रहती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय का शिक्षा माध्यम उर्दू है और इसमें आधुनिक शिक्षा के लगभग सभी मुख्य विभागों के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं इसलिए इन सभी शास्त्रों के लिए पाठ्यक्रम संबंधित पुस्तकों की तैयारी इस विश्वविद्यालय का महत्वपूर्ण दायित्व है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 1998 में दूरस्थ शिक्षा से इस विश्वविद्यालय की शुरुआत हुई थी।

मुझे इस बात की बेहद प्रसन्नता है कि शिक्षक वर्ग सहित अन्य उत्तरदायियों के अथक परिश्रम तथा विषय विशेषज्ञों के भरपूर सहयोग से पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च स्तर पर प्रारंभ हो गया है। दूरस्थ शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए कम से कम समय में स्वयं अध्ययन सामग्री तथा स्वयं अध्ययन की पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। प्रथम सेमेस्टर की पुस्तकें प्रकाशित होकर छात्र एवं छात्राओं तक पहुँच चुकी हैं। द्वितीय सेमेस्टर की पुस्तकें भी शीघ्र ही छात्रों तक पहुँचेंगी। मुझे विश्वास है कि इससे हम एक बड़ी उर्दू भाषी जनसंख्या की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा इस विश्वविद्यालय के अस्तित्व एवं इसमें अपनी उपस्थिति का दायित्व पूरा कर सकेंगे।

प्रो.सय्यद ऐनुल हसन
कुलपति

संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का बाकायदा प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और ट्रांसलेशन डिविजन से हुआ था और इस के बाद 2004 में बाकायदा पारंपरिक शिक्षा का आगाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए। नए स्थापित विभागों और ट्रांसलेशन डिविजन में नियुक्तियाँ हुईं। उस वक़्त के शिक्षा प्रेमियों के भरपूर सहयोग से स्व-अधिगम सामग्री को अनुवाद व लेखन के द्वारा तैयार कराया गया।
पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है कि दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से लगभग जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के मयार को बुलंद किया जाय। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवततापूर्ण करके स्व-अधिगम सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड-24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार कराया जा रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज पर आधारित कुल 15 पाठ्यक्रम चला रहा है। बहुत जल्द ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम शुरू किए जाएंगे। अधिगमकर्ताओं की सरलता के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 5 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह और अमरावती) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क तैयार किया है। इन केन्द्रों के अंतर्गत एक साथ 155 अधिगम सहायक केंद्र (लर्निंग सपोर्ट सेंटर) काम कर रहे हैं। जो अधिगमकर्ताओं को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (डी. डी. ई.) ने अपनी शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। इसके अलावा अपने सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ ऑनलाइन तरीके से ही दे रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर अधिगमकर्ता को स्व-अधिगम सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्र ही ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध कराया जाएगा। इसके साथ-साथ अध्ययन व अधिगम के बीच एसएमएस (SMS) की सुविधा उपलब्ध की जा रही है। जिसके द्वारा अधिगमकर्ताओं को पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसलिंग, परीक्षा के बारे में सूचित किया जाता है।

आशा है कि देश में शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई उर्दू आबादी को मुख्यधारा में शामिल करने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी।

प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

भूमिका

''**मध्यकालीन हिन्दी कविता'** शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के बी.ए. हिंदी (द्वितीय) सत्र के दूरस्थ शिक्षा माध्यम के छात्रों के लिए तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जी सी) के निर्देशों के अनुसार नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

किसी भी भाषा-समाज के मनोभावों, सरोकारों, मूल्यों और जीवन-दर्शन ही नहीं, उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उत्थान-पतन को समझने के लिए उसके साहित्य का अध्ययन इतना महत्वपूर्ण होता है कि इतिहास और समाजशास्त्र जैसे ज्ञान-क्षेत्र भी साहित्यिक रचनाओं का उपयोग अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए प्रमाणों के रूप में करते हैं। इसका कारण यह है कि परिस्थितियाँ चाहे जैसी हों, हर देशकाल के रचनाकार अपने साहित्य में अपने समय की धड़कनों को अवश्य दर्ज करते हैं। हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय इतिहास का मध्यकाल अनेकानेक प्रिय और अप्रिय, अच्छे और बुरे परिवर्तनों का काल रहा है। हिंदी साहित्य ने इन तमाम परिवर्तनों और इनके प्रभावों को पूरी प्रामाणिकता के साथ विभिन्न काव्यों में सुरक्षित रखा है। हिंदी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल भक्ति आंदोलन से आरंभ होकर नवजागरण आंदोलन के आरंभ होने के पूर्व तक व्याप्त है। पूर्व मध्यकाल को साहित्य की दृष्टि से भक्तिकाल और उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा जाता है। यह सारी अवधि एक ओर तरह-तरह की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से आक्रांत रही, तो दूसरी ओर इस अवधि में सामाजिक परिवर्तन को सकारात्मक दिशा प्रदान करने वाला साहित्य भी रचा गया। इसका एक छोर भक्ति और अध्यात्म के शिखर को छूता है, तो दूसरा छोर शृंगार और भौतिकता के धरातल पर स्थित है। यही कारण है कि इस काल की कविता में बहुआयामी विविधता पाई जाती है। प्रस्तुत पुस्तक में इसकी एक प्रामाणिक झाँकी उपस्थित की गई है। इसके अध्ययन से छात्र हिंदी भाषा और साहित्य की समृद्ध परंपरा से तो परिचित होंगे ही, उच्च जीवन मूल्यों और परिष्कृत सौंदर्य बोध की शिक्षा और प्रेरणा भी प्राप्त कर सकेंगे। प्रस्तुत पुस्तक की रचना में इस बात का ध्यान रखा गया है तथा सारी सामग्री को कुल चौबीस इकाइयों के रूप में छात्रों की सुविधा के लिए सरल, सहज और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन विद्वान इकाई लेखकों, ग्रंथों और ग्रंथकारों से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

पाठ्यक्रम–समन्वयक

मध्यकालीन हिन्दी कविता

इकाई 1 : कबीरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मूल पाठ : कबीरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व
    1.3.1 जीवन परिचय
    1.3.2 रचनाओं का परिचय
    1.3.3 विद्रोही स्वभाव
    1.3.4 भक्ति भावना
    1.3.5 समाज सुधार की भावना
1.4 पाठ सार
1.5 पाठ की उपलब्धियाँ
1.6 कठिन शब्द
1.7 परीक्षार्थ प्रश्न
1.8 पठनीय पुस्तकें।

1.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आपको मालूम है कि हिंदी साहित्य की एक हजार साल से ज़्यादा की विकास यात्रा को चार कालों में विभाजित किया जाता है। इनमें दूसरे काल को भक्ति काल का नाम दिया गया है। भक्ति काल को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो भागों में बाँटा है - निर्गुण भक्ति शाखा एवं सगुण भक्ति शाखा। फिर निर्गुण धारा को उन्होंने दो भागों में बाँटा है - ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं- कबीरदास। कबीरदास संत थे। उनके जीवन पर भारतीय दर्शन के जीव, ब्रह्म, माया, मुक्ति आदि से जुड़े चिंतन का गहरा प्रभाव पड़ा। कबीरदास स्वतंत्र, निर्भीक और क्रांतिकारी संत कवि होने के साथ-साथ सफल समाज सुधारक भी थे। कबीरदास ने बाह्य आडंबरों का विरोध किया। मुसलमानों और हिंदुओं को जागृत किया। प्रस्तुत इकाई में हम उनके जीवन और साहित्य पर चर्चा करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- कबीरदास के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- उनके समाज सुधारक रूप से परिचित हो करेंगे।
- उनकी रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उनकी भक्ति भावना को समझ सकेंगे।
- उनके दार्शनिक विचारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : कबीरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रिय छात्रो! संत कबीरदास मध्यकाल में अखिल भारतीय स्तर पर उभरे भक्ति आंदोलन के अग्रणी समाज-चेता संत थे। जन-जन तक उनके जैसा व्यापक प्रभाव बहुत कम कवियों का होता है। उन्होंने एक ओर तो सब प्रकार के बाहरी आडंबर छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का उपदेश दिया। दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों पर जोरदार प्रहार भी किया। भक्ति और समाज सुधार उनके साहित्य के दो पहलू हैं, जो आपस में गहरे जुड़े हुए हैं।

1.3.1 जीवन परिचय

संत कबीरदास के जन्म, माता-पिता और बचपन आदि के बारे में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। माना जाता है कि उनका जन्म काशी में 1398 ई. के आस-पास हुआ था। संभवतः वे किसी हिंदू परिवार के परित्यक्त बालक थे, जिन्हें नीमा एवं नीरू नामक संतानहीन जुलाहा दंपति ने लहरतारा तालाब के पास अनाथ पड़े पाया और गोद ले लिया।

नाम : कबीरदास की रचनाओं में स्थान-स्थान पर तुक या मात्रा के आग्रह से 'कबीर' के स्थान पर कहीं 'कबीरा' और 'कबिरा' भी हो गया है, परंतु उनका प्रचलित नाम 'कबीर' ही है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

1) 'कबीर' कूता राम का, मुतिया मेरा नावँ।

2) 'कबिरा' संगत साधु की, हरै और की व्याधि।

3) कहै 'कबीरा' राम जन, खेलौ संत विचार।

जाति : कबीरदास जाति के जुलहे अथवा बुनकर थे। उनके दोहों में 'जुलाहा' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है। इसके साथ-साथ ताना-बाना, तुरिया, करघा आदि जुलाहगिरी के शब्द उनकी रचनाओं में देखने को मिलते हैं। उन्होंने खुद को जुलाहा कहा भी है। यथा-

1) तू ब्राम्हण में काशी का जुलाहा।

2) कबीर जुलाहा भय पारखू अनभै उतरा पार।

3) जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरष हरष गुण रमै कबीर।

स्पष्ट है कि कबीरदास जाति के जुलाहा थे एवं इसी कार्य से अपना आजीविका चलाते थे।

जन्म स्थान एवं जीवन : कबीरदास के जन्म-स्थान के संबंध में दो मत प्रचलित हैं। कुछ लोग उनका जन्म स्थान 'काशी' मानते हैं, तो कुछ अन्य विद्वान उनका जन्म 'मगहर' में होना स्वीकार करते हैं। काशी उनका जन्म स्थान था। इस संबंध में कबीरदास ने स्वयं कहा है कि

1) काशी में हम प्रकट भये है, रामानंद चेताए।

2) पहले दर्शन कासी पाए, पुनि मगहर बसे आई।

कबीर के जन्म-मृत्युकाल के संबंध में भी मतभेद है। इस संबंध में प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल और बाबु श्यामसुंदर दास कबीर का जन्म संवत 1456 वि. (1399 ई.) मानते हैं।
2) डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने कबीर का जन्म 1424 वि.(1367 ई.) में स्वीकार किया है।
3) डॉ. गोविंद त्रिगुणायत एवं डॉ. सरनाम सिंह शर्मा ने कबीर का जन्म संवत 1455 वि. (1398 ई.) स्वीकार किया है।

मृत्यु के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। उनकी मृत्यु के संबंध यह दोहा बहुत प्रचलित है कि-

संवत पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रल्यो पौन में पौन।।

अर्थात् कबीरदास की मृत्यु 1575 वि.(1518 ई.) में माघ महीने के शुक्ल की एकादशी को हुई। वे 120 वर्ष जीवित रहे, जो उन जैसे महान व्यक्ति के लिए संभव ही है।

शिक्षा-दीक्षा : कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।" वे कागज पर लिखी बात पर कम तथा आँखों देखे स्वानुभूत सत्य पर अधिक विश्वास करते थे। भले ही कबीरदास ने औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की, किंतु सत्संग से उन्होंने बहुत कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। वे बहुश्रुत थे।

परिवार : कहा जाता है कि उनके परिवार में कुल 6 सदस्य थे। उनके माता-पिता नीमा और नीरू, पत्नी लोई, पुत्र कमाल एवं पुत्री कमाली। पुत्र कमाल का स्वभाव कबीरदास के विपरीत था। वह धन लोभी और व्यवसायी वृत्ति का था। उससे कबीरदास संतुष्ट नहीं थे। पुत्र कमाल के बारे में कबीरदास की उक्ति है कि -

बूडा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमरण छांड़ि कै, घर ले आया माल॥

यह भी कहा जाता है कि लोई कबीर की शिष्या थी। उनके नाम पर यह उक्ति प्रचलित है कि-

कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिनु राखन हार न कोई॥

गुरु : कबीरदास के गुरु का नाम रामानंद है। कबीरपंथी रामानंद को ही उनका गुरु मानते हैं। कबीरदास ने गुरु की महत्ता का जो प्रतिपादन किया है, वह भी इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने निश्चय ही किसी महान भक्त या साधक को अपना गुरु बनाया था। कबीरदास स्वयं इस बारे में लिखते हैं कि "कासी में हम प्रकट भए हैं रामानंद चेताए।" अन्यत्र भी कबीरदास ने रामानंद को अपना गुरु कहा है -

कहै कबीर दुविधा मिटी,
जब गुरु मिलिया रामानंद।

भाषा : कबीरदास का व्यक्तित्व महान था। उन्होंने बहुत पर्यटन भी किया था। घूमने के दौरान उन्होंने विपुल अनुभव भी प्राप्त किए थे। उनकी बोली एवं भाषा में भी अनेक भाषाओं एवं बोलियों के शब्द मिलते हैं। इसलिए रामचंद्र शुक्ल ने उनकी बोली को 'सधुक्कड़ी' नाम दिया है। उसे 'पंचमेल खिचड़ी' भी कहा गया है, क्योंकि उसमें अनेक भाषाओं के शब्द हैं।

बोध प्रश्न

1. जुलाहा दंपति को बालक कबीरदास कहाँ पर मिले?
2. कबीर का पालन करने वाले दंपति का नाम क्या था?
3. कबीरदास के कितनी संतानें थीं?
4. कबीरदास अपने पुत्र से खुश क्यों नहीं थे?
5. कबीरदास किसे अपना गुरु मानते थे?
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास की भाषा को क्या नाम दिया?

1.3.2 रचनाओं का परिचय

कबीरदास की रचनाओं का कोई प्रामाणिक संग्रह उपलब्ध नहीं होता है। वास्तव में उनकी रचनाएँ कंठ परंपरा से आगे बढ़ती रही। इसलिए उनमें परिवर्त्तन एवं परिवर्धन भी होता रहा। इसलिए उनकी रचनाओं की संख्या निर्धारित नहीं है। कबीरदास स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे। कहा जाता है कि उनकी सारी रचनाएँ उनके शिष्य धर्मदास ने लिखीं। धर्मदास ने 1521 वि. (1464 ई.) में कबीरदास की रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से किया, जिसके तीन भाग हैं- 'साखी', 'सबद' और 'रमैनी'।

कबीर की कुल कितनी रचनाएँ हैं, इस संबंध में भी विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं-

1) मिश्र बंधुओं ने कबीरदास की रचनाओं की संख्या 75 बताई है। यद्यपि इनमें से अनेक को वे संदिग्ध मानते हैं।
2) डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'संत कबीर' में कबीरदास की रचनाओं की संख्या 85 बताई है। यद्यपि इनमें से स्वतंत्र ग्रंथ 56 हैं। वे सर्वाधिक विश्वसनीय पथ 'गुरुग्रंथ साहब' को मानते हैं।
3) डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने कबीरदास की रचनाओं की संख्या 40 मानी है। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'द निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोएट्री' में किया है।

4) डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' का संपादन सन 1930 ई. में किया है, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी में हुआ है।

प्रायः डॉ. श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' को ही कबीरदास की रचनाओं का प्रामाणिक संकलन माना जाता है। क्योंकि उसकी समानता 'गुरुग्रंथ साहब' से बहुत अधिक है। सिंखों का धार्मिक ग्रंथ होने से 'गुरुग्रंथ साहब' में परिवर्त्तन नहीं हुआ है। इसका संपादन भी संवत. 1661 वि. (1604 ई.) में हुआ था। अर्थात् कबीरदास की मृत्यु के 86 वर्ष बाद, जिसके कारण इसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। कबीरदास की रचनाओं के जितने भी संकलन उपलब्ध हैं, उनको तीन वर्गों में विभक्त किया गया है - साखी, सबद और रमैनी। इन तीनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) साखी : 'कबीर ग्रंथावली', 'बीजक' आदि ग्रंथों में कबीरदास के जो दोहे संकलित हैं, उन्हीं को 'साखी' कहा जाता है। कबीरदास द्वारा रचित प्रामाणिक साखियों की संख्या लगभग 800 है। 'कबीर ग्रंथावली' में इन्हें 58 भागों में बाँटा गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं - गुरुदेव की अंग, चेतावणी कौ अंग आदि। 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का रूपांतरण है, जिसका अर्थ है - गवाही। ये साखियाँ (दोहे) कबीरदास की आध्यात्मिक अनुभूतियों की गवाह या साक्षी हैं। 'बीजक' में साखी को 'ज्ञान की आँख' कहा गया है -

साखी आँखी ज्ञान की,
समुझ देखि मन माहीं।
बिनु साखी संसार का,
झगरा छूटत नाहीं।

अर्थात् साखी तो ज्ञान की आँख है, इसे तू अपने मन में विचार करके देख ले। बिना साखी के सांसारिक झगड़ों से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

(2) सबद : कबीरदास के लिखे पदों को 'सबद' कहा जाता है। इन पदों में कबीरदास के आध्यात्मिक विचार तथा रहस्यानुभव शब्दबद्ध हैं। खंडन-मंडन तथा आलोचना और व्यंग्य भी इनके विषय हैं। इनकी भाषा में सरलता और भावों में गंभीरता है। कबीरदास के शिष्यों ने भी गुरु की वाणी को 'सबद' कहा है। कबीरदास 'सबद' के महत्व को बखूबी जानते थे। वे यह भी कहते हैं कि शब्द के बिना श्रुति (वेद) भी अंधी है। जब तक अंधी श्रुति सबद रूपी द्वार नहीं पाती, तब तक भटकती रहती है -

सबद बिना श्रुति आंधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे सबद का, फिरि-फिरि भटका खाय।।

(3) रमैनी : 'बीजक' का तीसरा भाग 'रमैनी' है, जो 'रामायण' का अपभ्रंश है। कबीरदास के 'बीजक' में रमैनियों की संख्या 84 बताई गई है। ये दोहा-चौपाही शैली में लिखी गई हैं। रमैनी

में कबीरदास ने सृष्टि-रचना का वर्णन प्रमुखता से किया है। जीव इस सांसारिक माया में रमा रहता है, क्योंकि जीव माया से रमण करता है। रमैनी से जीव की उस दशा का बोध होता है, जिसमें वह माया के रूप में मोहित हो कर उसमें लीन हो जाता है, अथवा उसमें रमण करने लगता है। रमैनियों में 'राम' नाम को ही सार तत्व कहा गया है, इसलिए भी इन्हें रमैनी कहा गया है -

राम नाम निज पाया सारा,
बिरथा झूठ सकल संसारा।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि बाबु श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' और धर्मदास द्वारा संगृहीत 'बीजक' ही कबीरदास की रचनाओं के प्रामाणिक संग्रह हैं।

बोध प्रश्न

7. कबीरदास की रचनाओं का संकलन उनके किस शिष्य ने किया?
8. कबीरदास के शिष्य ने उनकी रचनाओं का संकलन किस नाम से किया?
9. मिश्रबंधुओं ने कबीर की कितनी रचनाएँ मानी हैं?
10. बीजक का तीसरा भाग कौन-सा है?

1.3.3 विद्रोही स्वभाव

प्रिय छात्रो! आप यह भली प्रकार जानते हैं कि हिंदी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। हिंदी साहित्य का दूसरा युग भक्ति काल है। भक्ति काल को 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है। इस युग में दो धाराएँ चलीं - निर्गुण धारा एवं सगुण धारा। निर्गुण भक्ति धारा में संत काव्य एवं सूफी काव्य शामिल हैं। सगुण भक्ति धारा में भी दो काव्य धाराएँ शामिल हैं - राम काव्य धारा एवं कृष्ण काव्य धारा। निर्गुण भक्ति धारा की संत काव्य परंपरा में कबीरदास का नाम गर्व से लिया जाता है। उन्होंने भक्ति को अलग मान्यता दी है। हिंदी साहित्य में उनकी एक अलग पहचान है। महात्मा कबीर संतोषी, उदार, निर्भीक, सत्यवादी, बाह्य आडंबर-विरोधी तथा क्रांतिकारी सुधारक थे। वे फ़क़ीर भी थे। जन्म से ही उनके अंदर विद्रोही भावना, अपने ऊपर अखंड विश्वास एवं अदम्य साहस था। कबीरदास का व्यक्तित्व कुछ अजीब सा है। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी इस संबंध में लिखते हैं कि "वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, धूर्त भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ़, दिमाग के दुरुस्त, भीतर कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे।" कबीरदास के एक ही ग्रंथ को प्रामाणिक माना गया है, जो है 'बीजक', जो उनके शिष्य द्वारा संगृहीत किया गया है। संत कबीरदास ने अपनी कविता के माध्यम से हमेशा एकता की बात कही है। किसी जाति में भेद-भाव करना वे पसंद नहीं करते थे। वे धर्म के नाम पर होने वाले

दिखावे को खंडन करते हैं। उन्होंने ध्यान दिलाया कि ईश्वर का वास तो मनुष्य के अपने भीतर है। यथा -

कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढे बन मांही ।
ऐसे घटी घटी राम है, दुनिया देखे मांही।

1. **बाह्य आडंबरों का विरोध :** कबीरदास ने हिंदी साहित्य को नवीन चेतना और नूतन जीवन दर्शन प्रदान किया। वे अपने युग के सबसे महान प्रतिभा संपन्न एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे किसी भी प्रकार के बाह्य आडंबर, कर्मकांड, पूजापाठ आदि पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने पवित्र, नैतिक और सादा जीवन को अधिकाधिक महत्व दिया। वे सत्य, अहिंसा, दया, धर्म के सामान्य स्वररूप में विश्वास रखते थे। कबीरदास अपने समय के बड़े क्रांतिकारी कवि थे। सामजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जो रूढ़ियाँ प्रचलित थीं, उन सबका कबीरदास ने विरोध किया। उन्होंने अंधविश्वास का खंडन किया। कबीरदास ने सब मनुष्यों की समानता का प्रतिपादन किया। वे कहते हैं कि सभी एक ब्रह्म के पुत्र हैं, क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र। इसी प्रकार उन्होंने हिंदू और तुर्क का भेद नहीं माना है - "कहै कबीर एक राम जपहूँ रे, हिंदू तुरक न कोई"। कहा जाता है कि काशी में मरने से मुक्ति मिलती है और मगहर में मरने से नरक की प्राप्ति होती है। इसी अंधविश्वास का खंडन करने के लिए मरने से पहले वे मगहर चले गए एवं वही उनका देहांत हुआ।
2. **राम-रहीम की एकता :** कबीरदास के समय में धर्म के नाम पर समाज छिन्न-भिन्न हो गया था। मनुष्यता के नाम पर कोई भी मिलने के लिए तैयार नहीं था। कबीर को इस बात से गहरी ठेस पहुँची। उन्होंने समाज की हानिकारक बातों का एक-एक कर विरोध किया और राम-रहीम की एकता दर्शाकर सब लोगों को एकता के सूत्र में बाँध कर रखने का प्रयास किया **-** दुई जगदीश कहाँ ते आया, आया कहू कौन भरमाया।
3. **हिंदू-मुसलमानों की एकता :** कबीरदास ने हिंदू और मुसलमानों में भेदभाव को दूर करने की आजीवन कोशिश की। वे किसी भी जाति को छोटा-बड़ा नहीं मानते थे। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर समझदार हिंदू-मुसलमानों ने परस्पर विद्वेष भावना छोड़ दी और वे एक-दूसरे के निकट आने लगे। लेकिन कट्टरवादियों को यह पसंद नहीं था। इसलिए उन्होंने कबीर को मारने तक के षड्यंत्र रचे। पर हर बार कबीर बच गए। इसीलिए उनके अनुयायी श्रद्धापूर्वक उन्हें भक्त प्रह्लाद का अवतार मानते हैं!
4. **मूर्ति-पूजा का विरोध :** मूर्ति-पूजा का कबीरदास ने डटकर विरोध किया। उन्होंने देखा कि मूर्तियाँ लोगों के आपस में लड़ने का कारण बनी हुई हैं और लोग इनके चक्कर में पड़कर ईश्वर से विमुख हो रहे हैं। अतः उन्होंने कटाक्ष करते हुए कहा कि -

पाथर पूजै हरि मिले, हम लें पूजि पहार।

घर की चाकी कोई न पूजै, पिसा खाइ संसार।।

5. **तीर्थ, रोजा आदि का विरोध** : कबीरदास तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज का भी घोर विराध करते थे। वे कहते थे कि ये सब केवल दिखावे के लिए ही किए जाते हैं। आत्मा के उद्धार से इन सबका कोई संबंध नहीं है। इसके साथ-साथ वे माला फेरना, सिर मुंडाना, जटा बढ़ाना, कपडे रंगना आदि का विरोध करते थे। माला फेरने की व्यर्थता को बताते हुए वे कहते हैं कि

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका छोड़ दे, मन का मनका फेर।

कहा जाता है कि गंगा में डुबकी लगाने से सात जन्मों का पाप धुल जाता है। इस पर कबीरदास कहते हैं कि यदि गंगा नहाने से ही मानव तर जाए तो जड़ जीव कभी के मुक्त हो गए होते। वे पूछते हैं कि अगर ऐसा है तो बेचारी लौकी अडसठ तीर्थ नहाने के पश्चात भी अपना कडवापन क्यों नहीं तजती!

6. **निंदा का खंडन :** कबीरदास ने परनिंदा का विरोध किया। उस समय सब एक-दूसरे के दोष गिनाने में लगे रहते थे। कोई अपना दोष मानने को तैयार नहीं था। इस संबंध में कबीरदास कहते हैं कि

दोष पराये देखि कर, चला हंसत हंसत
अपने चेत न आवई, जिनका आदि न अंत।

इस प्रकार कबीरदास समाज में लोगों को सुमार्ग पर लाना चाहते थे और उन्होंने इस समाज सुधार के लक्ष्य को पूर्ण रूप से सफल किया।

1.3.4 भक्ति भावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास को निर्गुण धारा के ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि माना है। कबीर निर्गुण भक्ति मार्ग के अनुयायी थे। रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण करने के कारण कबीरदास के हृदय में वैष्णवों के लिए अत्यधिक आदर था। कबीरदास की वैष्णव भक्ति के केंद्र में भारतीय अद्वैतवादी भावना थी। इसका कारण यह है कि कबीरदास एक ऐसी भक्ति धारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्ग एवं सभी वर्ण के व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें। कबीरदास प्रेम अर्थात् भक्ति को ज्ञान के समान कष्ट साध्य मानते थे। वे कहते थे कि ईश्वर से प्रेम करना कोई सरल कार्य नहीं है, जो अपने अंदर के अहंकार को समाप्त कर सकता है, वही ईश्वर से प्रेम कर सकता है। अहंकार को समाप्त करना अपना शीश अपने हाथ से काट कर धरती पर रखने के समान है -

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै, सो पैठे यहि माहिं ।।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीरदास के भक्त होने के बारे में लिखते हैं कि “कबीरदास मुख्य रूप से भक्त थे। वे उन निरर्थक आचारों को व्यर्थ मानते थे, जो असली बात को छुपा देते हैं, झूठे बातों को प्राधान्य देते हैं। कबीरदास प्रेम के क्षेत्र में गलित भावुकता को कभी बर्दाश्त नहीं करते थे। बड़ी चीज़ का मूल्य भी बड़ा होता है। भगवान जैसे बड़े प्रेम को पाने के लिए भी मनुष्य को बड़े से बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है।”

कबीरदास की कविता में भक्ति के लिए अनिवार्य तत्वों की भी चर्चा मिलती है। ये तत्व हैं -

(1) नम्रता : भक्ति में नम्रता होना अत्यंत जरूरी है। कबीरदास भक्ति के लिए राम का कुत्ता बनना स्वीकार करते हैं। इससे अधिक नम्रता और क्या हो सकती है। किसी भी अन्य भक्त कवि ने अपने को इष्टदेव का कुत्ता नहीं कहा है। कुत्ता नम्रता एवं लघुता की परम सीमा होने के साथ निष्ठा और वफादारी में सबसे ऊपर है। कबीरदास कहते हैं कि -

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाँव।
गले राम की जेवरी, जित खैंचे तित जाँव॥

कबीरदास की नम्रता की पराकाष्ठा यह है कि वे अपने आप को संसार का सबसे बुरा व्यक्ति स्वीकार करते हैं-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन देखा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

(2) दाम्पत्य अथवा कांता भाव : आत्मा और परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध भक्ति मार्ग में ही संभव है। कबीरदास ने दांपत्य भाव अथवा कांता भाव को अपने इष्टदेव के मध्य घनिष्ठता देखने के लिए स्पष्ट किया है। कबीरदास कहते हैं कि मैं राम की प्रेयसी नहीं, परिणीता पत्नी हूँ। कबीरदास का समर्पण भाव एकांगी नहीं था। कबीरदास स्त्री के पतिव्रत धर्म के भी समर्थक थे। वे अपने राम के अलावा और किसी को देखना नहीं चाहते थे। इसके साथ-साथ वे यह चाहते थे कि उनके पति राम को और दूसरा कोई न देखे। इससे हमें कबीरदास का राम के प्रति कांता भाव स्पष्ट देखने को मिलता है। यही उनकी रहस्य भावना का भी आधार है।

(3) प्रेम भाव : पति-पत्नी में प्रेम होना अति आवश्यक है। वैसे ही भक्ति भी प्रेम के बिना असंभव है। भक्ति परम-प्रेम का ही दूसरा नाम है। कबीरदास ने प्रेम का जो महत्व स्वीकार किया है, वह उन्हें ज्ञानी संत की अपेक्षा भक्त अधिक सीधा करता है। सभी को पता है कि वे ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को ज्यादा महत्व देते हैं। कबीरदास कहते हैं कि लोग पंडित होने के लिए मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ते हैं, परंतु मेरे मतानुसार पंडित होने के लिए प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ना काफी है। वे कहते हैं कि -

पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुवा, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।

कबीरदास कहते हैं कि भक्त के अलावा दूसरा कोई पंडित नहीं हो सकता। यह प्रेम राजा-प्रजा सभी के लिए समान है। वह कहते हैं कि प्रेम उच्च-नीच, निर्धन और अनपढ़ के भेद को नहीं देखता। प्रेम पाने का सबसे बड़ा मार्ग है अपने अहंकार का त्याग करना। अहंकार का त्याग एक भक्त का लक्ष्य होता है।

(4) वैष्णव भक्त होने की स्वीकृति : कबीरदास वैष्णव भक्त थे। वे वैष्णव भक्त प्रचारक स्वामी रामानंद के शिष्य थे। वैष्णवों की कबीरदास ने बहुत प्रशंसा भी की है। कबीरदास को वैष्णवों की झोपड़ी पसंद आती है। वे वैष्णव अर्थात् अहिंसा एवं शुद्धता के मार्ग के समर्थक हैं। संत कबीरदास की भक्ति भावना सबसे परे हैं। वह भक्ति एवं भक्तों से प्रेम तथा ढोंग और ढोंगियों से नफरत करते थे।

1.3.5 समाज सुधार की भावना : कबीरदास समाज सुधारक थे। इस बहाने वे समाज को बदलना चाहते थे। डॉ. रामरतन भटनागर ने लिखा है कि 'कबीर ने समाज सुधार नहीं, बल्कि जीवन गढ़ने का, मनुष्य को गढ़ने का प्रयत्न किया।'

(1) सुधारक रूप : कबीरदास मनुष्य मात्र को समान आदर का अधिकारी मानते थे। वे भेदभाव को व्यर्थ एवं अहितकर मानते थे। इसको दूर करने के लिए उन्होंने बहुत प्रयास किए। उन्होंने अर्थहीन एवं आडंबरपूर्ण आचरण का हमेशा विरोध किया। कबीरदास मूर्ति पूजा, हज, रोजा आदि को मानने वाले लोगों को बहुत खरी खोटी सुनाते थे। उनके सुधारवादी रूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि कबीर जिस संत मत के प्रवर्तक थे, वह धर्म का ऐसा रूप है कि जो हिंदू और मुसलमानों दोनों को सरलता से ग्राह्य हो सकता है, लेकिन उनका समावेश इस धर्म में नहीं है। अर्थात् न कोई हिंदू है, न मुसलमान। इस प्रकार कबीर ने संपूर्ण रूप से धार्मिक भेदभाव का बहिष्कार किया।

(2) लोक कल्याण की भावना : कबीरदास को समाज में दो प्रकार के तत्व दिखाई देते हैं। एक समाज-उपयोगी एवं दूसरे समाज-विरोधी। उन्होंने समाज-उपयोगी तत्व की हमेशा प्रशंसा की है एवं समाज-विरोधी तत्व से हमेशा दूर रहने की कोशिश की है। कबीरदास हमेशा व्यक्ति को सुधरने का उपदेश देते हैं। उनके विचार से अहंकार से समाज का पतन होता है। इसी कारण वे कहते हैं कि -

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की साँस सों, सार भसम ह्वै जाय॥

कबीरदास समाज में सुधार लाने के लिए लोकमंगल की कामना करते हुए कहते हैं कि

कबिरा खड़ा बजार में, मांगे सबकी खैर।
ना कहू सों दोस्ती, ना काहू सों बैर॥

(3) प्रगतिशील दृष्टिकोण : कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण प्रगति की ओर उन्मुख दिखाई देता है। वे हिंदू और मुसलमान दोनों की जड़ता के विरोधी थे। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि "कबीरदास का पंडित वह पत्राधारी अधकचरा ब्राह्मण है, जो ब्राह्मण मत के अत्यंत निचले स्तर का नेता है। वह स्वर्ग और नरक के सिवा और कुछ जानता ही नहीं, जाति-पाँति और छुआ-छूत का अंध-उपासक है, तीर्थ स्थान और व्रत-उपवास का ठूँठ समर्थक है, तत्व-ज्ञान हीन, आत्म-विचार विवर्जित, विवेक-बुद्धि हीन अहंकारी गँवार।" कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीरदास ने ऐसे ही पंडित का विरोध किया है। इसी प्रकार उन मुल्ला मौलवियों को भी कबीर ने लताड़ा जो नमाज और रोजा के मूल अर्थ को नहीं जानते और इनसे जुड़े पाखंड का प्रचार करते हैं।

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि कबीरदास उच्च कोटि के समाज सुधारक थे। वे सामाजिक विसंगति और जड़ता के कारणों की तह तक गए और डाल-पात को धो कर नहीं, बल्कि जड़ को सींच कर समाज रूपी वट-बृक्ष के पोषण का सच्चा प्रयत्न किया। उन्होंने व्यक्ति और समाज को पृथक-पृथक नहीं माना है। वे कहते हैं कि समाज के सुधार में सबसे बड़ा हाथ व्यक्ति का होता है।

विवेचनात्मक टिप्पणी

कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार करते समय यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि समाज के सभी वर्गों की खुलकर आलोचना करने के लिए उनका समाज सुधारक रूप इतना अधिक प्रखर हो उठता है कि कुछ विचारकों का ध्यान उनके कवित्व की ओर बिल्कुल ही नहीं जाता। यह द्वंद्व आज भी अनसुलझा है कि वे समाज सुधारक पहले थे या कवि। उनके कवित्व को ओझल करने में उनके ऐसे अनुयायियों का भी हाथ है जिन्होंने उन्हें अवतार बनाकर पूजने की वस्तु बना दिया। लेकिन जब आप कबीर की रचनाओं का गहराई से अध्ययन करेंगे तो पाएँगे कि वे भावों और विचारों को अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ बेहद सहज कवि हैं। लंबे समय तक उनकी काव्यगत विशेषताओं की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया था। इसमें कुछ हाथ स्वयं कबीर की इस उक्ति का भी रहा होगा कि मैं तो निरक्षर हूँ और मैंने कागज, कलम, दवात को छुआ तक नहीं है। लेकिन कबीर का काव्य इस बात की गवाही देता है कि निरक्षर होना अज्ञानी होने का पर्याय नहीं है। हिंदी के कई आचार्यों ने इस ओर साहित्य जगत का ध्यान अपने-अपने ढंग से आकर्षित किया है। इन आचार्यों में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'भारत डिस्कवरी' के अनुसार-

> "कबीर को जाहिलों की खोह में से निकाल कर विद्वानों की पाँत में बैठाने का काम आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ही किया था। कबीर के काव्य रूपों, पदावली, साखी और रमैनी का जो ब्यौरा, विस्तार और विश्लेषण आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने परोसा है और ढूँढ़-ढूँढ़ कर परोसा है, वह आसान नहीं था।"

उन्हीं के काम को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आगे बढ़ाया और 'अक्खड़-फक्कड़ कबीर' को 'कवि कबीर' के रूप में प्रतिष्ठित किया। आचार्य द्विवेदी ने तो उन्हें 'भाषा का डिक्टेटर' तक घोषित कर दिया। अगर भाषा की बात करें तो कबीर ने जिस सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया जनभाषा के रूप में वह खड़ी बोली के बहुत करीब बैठती है। अगर यह कहा जाए कि कबीर की हिंदी आधुनिक काल की मिश्रित हिंदी की पूर्वज है तो ज़्यादती नहीं होगी। वे जानते थे कि शुद्धता का आग्रह भाषा की संप्रेषणीयता को कम करता है। इस लिहाज से वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ संप्रेषकों में एक हैं। यही कारण है कि बाबूराम सक्सेना ने कबीर को 'अवधी भाषा के प्रथम संत कवि' माना है, तो वासुदेव सिंह भाषा की दृष्टि से कबीर को 'सच्चे लोकनायक' मानते हैं।

यह तो हुई भाषा की बात। अब अगर कबीर की वैचारिकता के बारे में कुछ कहना हो तो सबसे पहले यह मानना होगा कि वे अपने समय के जबरदस्त क्रांतिकारी थे। इस कारण कबीर के साहित्य में खंडन-मंडन और उपदेश की प्रवृत्ति बेहद मुखर प्रतीत होती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कबीर केवल एक बहिर्मुख लोकनायक भर थे। बल्कि वे एक ऐसे भक्त थे जिन्हें अपनी अनुभूति से आत्मज्ञान की उपलब्धि हुई थी। इस आत्मज्ञान को वे तमाम तरह के पुस्तकीय ज्ञान पर तरजीह देते हैं। पुस्तकीय ज्ञान का स्रोत पोथियाँ थीं जिन्हें उन्होंने वेद-कतेब कहा है। वेद अर्थात् हिंदू धर्म के दिव्य ग्रंथ (चारों वेद)। कतेब अर्थात् इस्लाम धर्म का दिव्य ग्रंथ (पवित्र कुरान)। इन दोनों ही प्रकार के ग्रंथों के ज्ञान को वे तब तक निरर्थक मानते हैं, जब तक साधक के मन में प्रेम का भाव प्रकट नहीं होता। प्रेम और भक्ति उनके लिए परस्पर पर्याय हैं। अपने प्रेम पात्र (जो परमात्मा है) को रिझाने के लिए वे अपने आप को कभी उसका कुत्ता बना लेते हैं तो कभी बहुरिया। कबीर कितने कोमल और भावप्रवण रहे होंगे कि यह कह सके-

> मैं तो अपने राम का पालतू कुत्ता (भक्त का प्रतीक) हूँ। मेरा नाम मोती (मुक्त आत्मा का प्रतीक) है। मेरा और मेरे राम का संबंध यह है कि मेरे गले में प्रेम (भक्ति) की रस्सी बंधी है और मेरा मालिक राम मुझे जिधर भी खींचता है, उधर ही चला जाता हूँ।

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर उन्होंने परमात्मा को पति और स्वयं (आत्मा) को पूर्णतः समर्पित पत्नी के रूप में दर्शाया है। यही उनका रहस्यवाद है। अत्यंत गद्गद भाव से कबीर कहते हैं कि राम मेरे प्रियतम है और मैं उनकी विवाहिता पत्नी हूँ।

अंततः यह भी कहना जरूरी है कि कवित्व की दृष्टि से कबीर का रूपक निर्माण अद्वितीय है। आत्मा और परमात्मा के संबंध को तो वे रूपक के सहारे समझाते ही है, जीव और जगत के संबंध को भी अनेक प्रकार के रूपकों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इस दृष्टि से उनका यह पद अत्यंत मार्मिक है जिसमें उन्होंने मानव शरीर को 'चदरिया' के रूपक द्वारा व्यक्त किया है-

झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥

काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ॥

कुल मिलाकर, कबीर निर्गुण भक्ति धारा के सबसे समर्थ संत कवि हैं। भक्ति, समाज सुधार और कवित्व तीनों ही दृष्टियों से वे अपना सानी नहीं रखते।

1.4 पाठ-सार

हिंदी साहित्य के इतिहास के दूसरे काल अर्थात् भक्ति काल को कबीरदास ने एक नया मोड़ दिया। कबीरदास संत काव्य धारा के प्रमुख कवि के रूप से जाने जाते हैं। वे समाज सुधारक थे। सभी में एकता स्थापित करना उनके काव्य का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने समाज में कुरीतियों को मिटाने की कोशिश की। कबीर जाति-पाँति, अमीर-गरीव में भेदभाव नहीं करते थे। वे सादा जीवन व्यतीत करते थे। राम-रहीम के नाम पर लोगों में बढ़ती हुई खाई को मिटाने की कोशिश हमेशा करते थे। वे एक महान क्रांतिकारी भी थे। हमेशा निडर होकर अपने विचार को लोगों के सामने रखते थे। उन्होंने समाज में व्याप्त हर प्रकार के अंधविश्वास को दूर करने का प्रयास किया। कबीरदास अपने समय के सबसे बड़े दार्शनिक थे। पर्यटन करना उनको बहुत पसंद था। इसलिए वे सभी भाषाओं के शब्दों को अपना सके। उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' अथवा 'पंचमेल खिचड़ी' कहा गया है। आज भी उनके रचे हुए दोहे प्रासंगिक माने जाते हैं।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

निर्गुण संत कवि कबीरदास पर केंद्रित इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. कबीरदास भारत के भक्ति आंदोलन की एक उत्कृष्ट उपलब्धि हैं।
2. कबीरदास का संपूर्ण जीवन भक्ति और विद्रोह के समन्वय का प्रतीक है।
3. कबीरदास ने अपने जीवन और अपनी 'वाणियों' द्वारा सामाजिक एकता का उपदेश दिया।
4. कबीर यद्यपि साक्षर नहीं थे, लेकिन सच्चे ज्ञानी अवश्य थे।
5. संत कबीर निर्गुण भक्ति की ज्ञानश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने संत मत को अपार लोकप्रियता प्रदान की।

1.6 शब्द संपदा

1. अंधारी	= अँधेरा
2. अद्वैतवाद	= आत्मा-परमात्मा की एकता का संबंध
3. अहिंसा	= किसी को दुःख न देना
4. आध्यात्मिक	= परमात्मा से संबंध रखने वाला

5. औपचारिक = जो दिखाने भर के लिए हो
6. जुलाहा = कपड़ा बुनने वाला, बुनकर
7. देहांत = मृत्यु
8. नम्रता = विनयशीलता
9. पर्यटन = भ्रमण
10. रुचिकर = पसंद
11. शीश = सिर
12. श्रुति = वेद

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. कबीरदास की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
3. बाह्य आडंबरों के प्रति कबीर की धारणा को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास की रचनाओं पर चर्चा कीजिए।
2. हिंदी साहित्य में कबीरदास का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. कबीर की समाज सुधार भावना को स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. कबीरदास के पालनकर्ता पिता का क्या नाम था? ( )
   (अ) शेख तकी (आ) नीरू (इ) नीमा (ई) कमाल

2. कबीरदास की भाषा को क्या कहा जाता है? ( )
   (अ) कूट भाषा (आ) ब्रज भाषा (इ) उलट बांसी (ई) सधुक्कड़ी

3. कबीरदास की मृत्यु किस जगह पर हुई थी? ( )
   (अ) काशी (आ) अयोध्या (इ) मगध (ई) मगहर

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. कबीरदास का जन्म .... ई. में हुआ था।
2. कबीरदास के गुरु के नाम .... था।
3. कबीरदास के रचना संग्रह का नाम .... था।
4. कबीरदास के मुख्य शिष्य का नाम .... था।
5. ढाई आखर प्रेम का पढै, सो …………….. होय।

III सुमेल कीजिए।

1. बीजक	(अ) सद्‌गुरु के उपदेश
2. कबीरदास	(आ) 800
3. रामानंद	(इ) धर्मदास
4. साखी	(ई) 1398
5. सबद	(उ) वैष्णव

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं.नगेंद्र.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल.
3. हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियाँ, शिवकुमार शर्मा.
4. प्राचीन कवि, विश्वंभर ‘मानव’.

इकाई 2 : उद्बोधन

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मूल पाठ : उद्बोधन
    (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
    (ख) अध्येय कविता
    (ग) विस्तृत व्याख्या
    (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
2.4 पाठ सार
2.5 पाठ की उपलब्धियाँ
2.6 शब्द संपदा
2.7 परीक्षार्थ प्रश्न
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की पूर्व मध्यकालीन कविता का मुख्य स्वर भक्ति का है। इसलिए इस काल को भक्ति काल भी कहते हैं। भक्ति काल की दो मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। इनकी भी दो-दो शाखाएँ हैं। निर्गुण भक्ति के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा तथा सगुण भक्ति के अंतर्गत कृष्ण भक्ति और राम भक्ति। निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि संत कबीरदास (1440-1518) हैं। कबीर की रचनाएँ 'बीजक' नामक ग्रंथ में संगृहीत हैं। इसके तीन भाग हैं - रमैनी, सबद और साखी। कबीर के दोहों को साखी कहते हैं। जिस प्रकार दोहे में 13-11 के विश्राम से 24 मात्राएँ होती हैं, वैसे ही साखी में भी होता है। 'साखी' शब्द 'साक्षी' का ही तद्भव रूप है जिसका अर्थ 'प्रत्यक्ष ज्ञान' है। यह ज्ञान पुस्तकों से नहीं, अनुभव से होता है। इन साखियों या दोहों में कबीरदास ने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग, हठयोग आदि विषयों को बहुत सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। उनके अनेक दोहे उद्बोधनपरक हैं। उद्बोधन का अर्थ है किसी पाठक या श्रोता को संबोधित करते हुए उसको जीवन के प्रति सचेत करना। कवि इन दोहों से जन साधारण को सलाह देते हैं कि उन्हें जीवन, जगत और ईश्वर के प्रति गंभीरता से विचार करना चाहिए।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप कबीर की कुछ साखियों (दोहों) का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- दोहों में व्यक्त कबीर के विचारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कबीर की भाषा, शैली और आलंकारिकता पर विचार व्यक्त कर सकेंगे।
- कबीर की भक्ति भावना, प्रेम, दार्शनिक विचार आदि को समझ सकेंगे।
- संत काव्य धारा में कबीर के स्थान का बोध प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 मूल पाठ : उद्बोधन

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

कबीर दास के दोहों को 'कबीर ग्रंथावली' में संग्रह किया गया है। वहाँ विषयों के अनुसार इनको विभिन्न उपशीर्षकों में रखकर प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए गुरु भक्ति और उसके महत्व को प्रतिपादित करने वाले दोहों को 'गुरु कौ अंग' कहकर प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार से यहाँ कबीरदास द्वारा रचित कुल छह दोहों को 'उद्बोधन' शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। इन दोहों के प्रतिपाद्य विषय अलग-अलग हैं किंतु स्वर एक ही है। ये दोहे पाठक या श्रोता को सचेत करते हैं। यौवन, माया, जीवन की क्षण भंगुरता, नश्वरता और ईश्वर की सर्वव्यापकता जैसे विषयों के प्रति चेताने वाले ये दोहे कबीरदास के रचना संसार को भी प्रस्तुत करते हैं।

(ख) अध्येय कविता

i. कबीर कहा गरबियो, इस जोबन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास॥

ii. माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिष्णा नाँ मुई, यों कहै दास कबीर॥

iii. केसौं कहा बिगाड़िया, जो मुंडे सौ बार।
मन कौ काहे न मूँडिए, जामै विषै विकार॥

iv. पाँच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नाउं।
चारि दिवस के पाहुने, बड़ बड़ रूँधई ठाउं॥

v. माली आवत देखि के, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि गई, कालि हमारी बार॥

vi. ज्यों तिल माहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझी में, जाग सके तो जाग॥

निर्देश : इन दोहों का, अर्थ पर ध्यान केंद्रित करते हुए मौन वाचन कीजिए।
इन दोहों का एक एक करके सस्वर वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

कबीर कहा गरबियो, इस जोबन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास॥

शब्दार्थ : कहा = क्या। गरबियो = घमंड करना। जोबन = यौवन, जवानी, युवावस्था। चारि= चार। खंखर = सूखा पेड़, ठूँठ।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको 'उद्बोधन' शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : इस दोहे के द्वारा कवि ने यौवन पर घमंड करने वालों को एक उदाहरण देते हुए चेतावनी दी है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि यौवन पर गर्व करना व्यर्थ है। यह क्षणभंगुर है। टेसू अथवा पलाश के फूल के समान इसकी बहार थोड़े दिनों के लिए है। जैसे यह फूल थोड़े ही दिनों में मुर्झा कर गिर जाता है, वैसे ही जवानी की प्रफुल्लता भी अल्प दिनों की होती है। कुछ दिनों के पश्चात जैसे पलाश पत्र-पुष्प-विहीन होकर ठूँठ मात्र रह जाता है, वैसे ही यह शरीर भी यौवन-विहीन होकर कंकाल मात्र रह जाता है।

विशेष : दृष्टांत अलंकार का प्रयोग है ।

बोध प्रश्न

1. कबीर क्या चेतावनी देते हैं ?
2. यौवन पर गर्व क्यों नहीं करना चाहिए?
3. मनुष्य यौवन पर गर्व करने की भूल क्यों कर बैठता है?

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिष्णा नाँ मुई, यों कहै दास कबीर॥

शब्दार्थ : मुई = मरी, मिट गई। मुवा = मरा, मिट गया। मरि मरि = बार बार मरना। आसा= आशा। त्रिष्णा = तृष्णा, प्यास।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको 'उद्बोधन' शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : संत कवियों ने प्रायः 'माया' को आधार मानकर काव्य रचना की है। कबीर ने लगातार इस विषय को प्रस्तुत किया है। कबीर ने माया को महा ठगिनी भी कहा है। जब तक इससे छुटकारा नहीं मिलता, मानव का कल्याण नहीं होता। किंतु इससे छुटकारा प्राप्त करना कठिन है।

व्याख्या : संसार में रहते हुए न कभी माया मरती हैं और न मन। शरीर न जाने कितनी बार मरता है, किंतु आशा और तृष्णा की मृत्यु कभी नहीं होती। कबीर यह बात बार-बार कहते हैं। इनका इसे दोहराना इसलिए है क्योंकि वे इन सभी अवगुणों को मानव मात्र के लिए हानिकारक समझते हैं। इनके त्याग ने से कोई भी श्रेष्ठ जीवन जी सकता है। माया से यहाँ तात्पर्य उस अनुभूति से है जिसे विद्वान मिथ्या और झूठ समझते हैं और यह मानते हैं कि इस माया ने समस्त संसार को अपने वश में करके उन्हें गलत रास्ते पर डाल दिया है। माया से वे ही बच सकें हैं जो प्रभु के दास हैं। प्रभु के भक्त ही माया के दुष्प्रभाव से बचे रहते हैं। इसी प्रकार से आशा तथा तृष्णा भी नहीं मिटती। मनुष्य सदैव भविष्य के प्रति आशान्वित होकर भगवान को भूल जाता है। इसे सदा लालच या तृष्णा भी घेर कर रखती है। कुछ मिल जाने पर कुछ और, और 'कुछ और' मिल जाने पर बहुत कुछ की आशा और तृष्णा करना मनुष्य आजन्म नहीं छोड़ता। शरीर छूट जाता है किंतु माया-मोह और आशा-तृष्णा से पिंड नहीं छूट पाता। भक्ति से ही यह संभव है, पर भक्ति हो नहीं पाती।

विशेष : 'म' की आवृत्ति होने के कारण यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

बोध प्रश्न

4. माया से क्या तात्पर्य है?
5. मनुष्य माया मोह और आशा तृष्णा को छोड़ क्यों नहीं पाते?
6. माया के बंधन से मुक्त होने का क्या उपाय है?

केसौं कहा बिगाड़िया, जो मुंडे सौ बार।
मन कौ काहे न मूँडिए, जामै विषै विकार॥

शब्दार्थ : केसौं = केशों ने, बालों ने। कहा = क्या। बिगाड़िया = बिगाड़ा। मुंडे = मूँडना, मुंडन करना। काहे = क्यों। जामै = जिसमें। विषै विकार = विषय विकार।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको 'उद्बोधन' शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : कबीरदास समाज सुधारक के रूप में धार्मिक रूढ़ियों के प्रति उपहास का भाव रखते हैं। मंदिरों में भक्तों के द्वारा भगवान के सामने अपने बालों का अर्पण करने वालों के प्रति कबीर असहमति का भाव रखते हैं और समझाते हैं।

व्याख्या : कबीरदास का मत है कि जो लोग अपने केश अनेक बार भगवान को अर्पित करके पुण्य कमाने का ढोंग करते हैं, वे भ्रमित हैं। ईश्वर इस प्रकार की भेंट लेकर प्रसन्न नहीं हो सकता। यदि किसी को ईश्वर के समक्ष कुछ अर्पण करना ही है, तो उसे अपने मन को अर्पण करना

चाहिए। मन भी ऐसा होना चाहिए जिसको पहले ही समस्त विषय विकारों से मुक्त कर लिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्मल और पवित्र मन को अपने ईश के सम्मुख अर्पण के सामने केश का अनेकानेक बार अर्पण करना व्यर्थ है।

विशेष : इस दोहे को कबीर ग्रंथावली में 'भेष को अंग' उपशीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। कबीर वेश भूषा और ऊपरी शृंगार को महत्वहीन मानते हैं। उनका संदेश है कि हमें धर्म के क्षेत्र में फैले पाखंड को समझकर उसे त्यागना होगा।

'म' और 'क' आदि वर्णों से प्रारंभ होने वाले शब्दों का अनायास प्रयोग - अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग है।

बोध प्रश्न

7. भ्रमित कौन हैं?
8. कवि किसकी निर्मलता की ओर संकेत कर रहा है?
9. इस दोहे के द्वारा कवि समाज की किस कुरीति पर चोट करता है?

पाँच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नाउं।
चारि दिवस के पाहुने, बड़ बड़ रूँधई ठाउं॥

शब्दार्थ : पाँच तत्व = पंच तत्व (पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल)। पूतरा = पुतला। धरिया = रखा। नाउं = नाम। पाहुने = अतिथि, मेहमान। ठाउं = स्थान, जगह।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको 'उद्बोधन' शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : मानव जीवन की नश्वरता और उसका उद्दंड व्यवहार इस दोहे के माध्यम से संकेत में प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या : सब जानते हैं कि कोई मनुष्य पाँच तत्वों से बनता है। आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि नामक पाँच तत्वों से बने इस शरीर का नाम ही मनुष्य है। और इस मनुष्य की इस धरती पर निवास करने की सीमा भी कुछ दिन भर की है। वह अजर अमर नहीं। चार दिन का मेहमान है, अतिथि है। अतिथि होने पर भी मनुष्य बढ़ चढ़ कर सब जगहों पर अधिकार जमाना चाहता है। वह घमंड में चूर होकर गगन चुंबी अट्टालिकाओं का निर्माण करता चला जाता है। इन पंचमहाभूतों से बने शरीर को अंत में इनमें ही विलीन हो जाना है। इसलिए इस नश्वर शरीर का घमंड नहीं करना चाहिए।

विशेष : तुलसीदास भी इस शरीर के लिए कहते हैं - क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व अति अधम सरीरा॥

‘नाम’ के लिए ‘नाऊँ’ और ‘ठाह’ (स्थान) के लिए ‘ठाउं’ जैसे शब्द प्रयोग कबीर की भाषा को समाज की आम आदमी की भाषा बनाते हैं।

बोध प्रश्न

10. पाँच तत्व कौन-कौन से हैं?
11. चार दिन का मेहमान कौन है?
12. अतिथि को क्या नहीं करना चाहिए?

माली आवत देखि के, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि गई, कालि हमारी बार॥

शब्दार्थ : माली = बाग का रखवाला (यहाँ ईश्वर का प्रतीक)। कलियाँ = कली (यहाँ जीव या प्राणियों का प्रतीक)। फूली फूली = पूरी तरह खिली हुई (यहाँ ऐसे प्राणियों का प्रतीक जिनकी आयु पूरी हो चुकी)।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको ‘उद्बोधन’ शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : मनुष्य को यह ज्ञान प्रायः होता ही है कि उसे इस संसार में सदा नहीं रहना है। जीवन की नश्वरता और उसकी अवश्यंभावी मृत्यु को माली (ईश्वर) और कली (मनुष्य) के रूपक से प्रस्तुत कर कबीरदास पाठक को सावधान रहने की शिक्षा देते हैं।

व्याख्या : माली को उपवन में आते हुए देखकर, वहाँ उपस्थित अनेक कलियाँ पुकार उठती हैं कि आज माली ने आकर उन कलियों को चुन चुन कर तोड़ लिया है जो फूल बन गई। कलियों को यह देखकर अब अपनी चिंता हो रही है क्योंकि कल जब वे फूल बन कर तैयार होंगी तो उनकी बारी आ जाएगी। वे भी तोड़ लिए जाने की चिंता से अभी से मरणासन्न सी हो गई हैं।

विशेष : यहाँ माली और कलियों पर घटित होता घटनाक्रम मनुष्य पर संकेतित है। इसलिए यहाँ अन्योक्ति अलंकार (अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध) है ।

बोध प्रश्न

13. माली उर कली किस के लिए प्रयुक्त किए गए शब्द हैं?
14. फूली फूली चुनना का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
15. कबीर क्या संदेश या शिक्षा देना चाहते हैं?

ज्यों तिल माहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझी में, जाग सके तो जाग॥

शब्दार्थ : ज्यों = जैसे। माहि = में। चकमक = एक पत्थर, जिसे रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। साईं = स्वामी, परमात्मा।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा भक्ति काल के निर्गुण संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। इसको 'उद्बोधन' शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है।

प्रसंग : कबीर निर्गुण ब्रह्म को मानने वाले ज्ञान मार्गी भक्त कवि हैं। इस उद्बोधनात्मक दोहे में मानव मात्र को जगाने के निमित्त कवि एक नहीं दो-दो उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर प्रत्येक मनुष्य के अंतरतम में बसा हुआ है।

व्याख्या : जिस प्रकार तिल में तेल होता है और चकमक नामक पत्थर में आग होती है, किंतु उसको कोई देख नहीं सकता। इसी प्रकार ईश्वर सर्वव्याप्त है, उसे देखा नहीं, विद्यमान पाया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक सावधान मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह इस सत्य को पहचानकर सचेत हो जाए। अपने साई को इधर उधर मंदिर- मस्जिद में खोजने के स्थान पर अपने मन में उसको खोजने की चेष्टा करें। ईश्वर को अगम और अगोचर कहकर शास्त्रों में भी उसकी स्तुति की गई है। यहाँ कबीरदास उसी भगवान को खोजने का सहज मार्ग बता रहें हैं। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए इससे आसान उपाय और क्या हो सकता है।

विशेष : इस दोहे के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले अनेक पद कबीर ने लिखे हैं, जैसे - मोको कहाँ ढूँढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।

बोध प्रश्न

16. ईश्वर की सर्वव्यापकता का क्या अर्थ है?
17. सर्वव्यापकता के लिए एक उदाहरण दीजिए।
18. 'तेरा' शब्द किसके लिए प्रयोग किया गया है?

काव्यगत विशेषताएँ

कबीर का काव्य ईश्वरीय भक्ति के साथ-साथ समाज सुधार, बाह्य आडंबर का विरोध, हिंदू-मुस्लिम एकता, नीति आदि का प्रतिपादन करता है। कबीर की भाषा पचमेल या खिचड़ी है। इसमें हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, बुंदेलखंडी आदि भाषाओं के शब्द भी हैं। कबीर संत थे, इसलिए सत्संग और भ्रमण के कारण उनकी भाषा का यह रूप सामने आया। कबीर के काव्य में भाषा की अपेक्षा भावों पर अधिक जोर दिया गया है। यह सही है कि कबीर की कविता का भावपक्ष जितना सबल है, उतना कलापक्ष नहीं। कबीर की मान्यता ही है कि 'का भाखा का संसकिरत, भाव चाहिए संग'। कबीर ने भाव के अनूठेपन पर जोर दिया। उनकी भाषा का प्रश्न है तो यह मानना पड़ेगा कि अपनी पंचमेली भाषा से जो भी चाहा कहलवा दिया। सत्य

है कि वे भाषा के डिक्टेटर थे, जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'भाषा का जबर्दस्त डिक्टेटर' बतलाया है ।

कबीर का भक्त रूप और समाज सुधारक रूप अधिक प्रबल है किंतु उनका कवि रूप भी इतना दबा हुआ नहीं है। जब कोई कवि चाहे कलम हाथ में ले या न ले फिर भी वह लिखता है तो कविताई करेगा अवश्य। 'भाषा बहता नीर' कहकर कबीर शब्दों के अर्थ परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। न तो कबीर में 'कविता' की कोई कमी है और न ही रस और अलंकार की। कबीर की कविता में भक्ति, शृंगार (वियोग और संयोग), वात्सल्य, शांत, वीर, हास्य आदि विभिन्न रसों का यथोचित परिपाक मिलता है। कबीर अलंकार शास्त्र से चाहे परिचित न हों, किंतु उनके काव्य में अलंकार आते अवश्य हैं। कबीर ने अलंकारों का प्रयोग न ही केवल 'प्रयोग' के लिए किया, और न ही कविता के बाह्य सौंदर्य के लिए। उपमा, रूपक, मानवीकरण अलंकार का प्रयोग कबीर के अनेक दोहों में देखा जा सकता है। वे अन्योक्ति का प्रयोग अभिव्यक्ति को और अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए करते थे। कबीर की बहुआयामी भाषा पर विचार करते हुए रामचंद्र तिवारी ने कहा है - जिस प्रकार कबीर का व्यक्तित्व निराला है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी विशिष्ट और विरल है। यह जीवित भाषा है। यह वह भाषा है जो मानव को उसके जीवन मूल्य से परिचित कराती है और उसके स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करती है। यह क्रांति की भाषा है।

माली आवत देखकर, ज्यों तिल माही तेल और माया मरी न मन मरा आदि दोहों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर रहस्यवादियों की तरह अपने मत को अत्यंत सुबोध और सरल रीति से प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। यह क्षमता उसी कवि में हो सकती है जिसका भावों और शब्द प्रयोगों पर पूर्ण अधिकार हो। कबीर काव्य में भाव और भाषा का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।

फिर भी कई बार कबीर का भक्त और समाजसुधारक रूप इतना प्रबल हो गया लगता है कि उनके कवि रूप और काव्य कौशल की प्रतिष्ठा कम रही है। आचार्यगण उन्हें धर्मगुरु मानते रहे और उनके काव्यत्व को घलुए (मुफ्त) में मिली वस्तु। यह सही भी है कि काव्यशास्त्रीय ज्ञान परंपरा से कबीर का कोई संबंध नहीं है। हाँ, कबीर में 'कविता' की कोई कमी नहीं है। कोई यदि कबीर की कविता का शोधपूर्ण दृष्टि से अध्ययन करता है तो कबीर की कविता में रस, अलंकार, छंद, प्रतीक, बिंब आदि महत्वपूर्ण काव्यांगों को आसानी से पहचाना जा सकता है, भले ही उन्होंने उनका प्रयोग सायास न किया हो।

बोध प्रश्न

19. कबीर का काव्य किसका प्रतिपादन करता है?

20. आचार्यगण कबीर और उनके काव्य को क्या मानते हैं?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

कबीरदास का जन्म कब हुआ और किन परिस्थितियों में हुआ, यह ठीक से किसी को पता नहीं। कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए और उन्हें नीरू-नीमा नामक पति-पत्नी लहरतारा (काशी) के तालाब के पास से उठा लाए। यह सन 1398 की बात बताई जाती है। बचपन में कबीर रामानंद के शिष्य बन गए। कबीर को भक्ति का संस्कार उन्हीं से मिला। कबीर ने 'राम' नाम का गुरुमंत्र लिया पर आगे चलकर कबीर के 'राम' गुरु रामानंद से भिन्न हो गए। कबीर ने दूर-दूर तक अनेक स्थानों की यात्रा की। हठयोगियों और सूफियों और फकीरों का संग-साथ लिया। इसलिए धीरे-धीरे वे निर्गुण निराकार के उपासक हो गए। सूफियों से 'प्रेमतत्व' लिया और सबको मिलाकर अपना एक पंथ चलाया। कबीर ने मगहर में जाकर प्राण त्यागे क्योंकि वे इस अंधविश्वास पर चोट करना चाहते थे कि मगहर में मरने वाला नरक जाता है। सन 1518 ईस्वी में कबीर की मृत्यु हुई ।

कबीर के माता-पिता नीरू-नीमा हो गए और उनकी पत्नी लोई। दो संतानें - कमाल और कमाली। पूरे गृहस्थ भी, और साधू-संत भी अव्वल दर्जे के। न कागज पर कलम रखी और न किसी प्रकार की पारंपरिक शिक्षा ली। फिर भी गुरु को गोविंद से बड़ा कहा, उसके महत्व को रेखांकित किया। कबीर को बाहरी आडंबर, ढोंग, अंधविश्वास और पाखंड से चिढ़ थी। मौलवियों और पंडितों के बहकावे में वे न आते थे और उनके पीछे मानो हाथ धोकर पड़े थे। मस्जिदों में नमाज़ पढ़ना, मंदिरों में घंटे-घड़ियाल बजाना, तिलक लगाना, मूर्ति पूजा करना, रोज़ा या उपवास रखना उन्हें व्यर्थ लगता था। इन सब बातों को समझने समझाने के लिए कबीर ने साखियों की रचना की, उन्हें सुनाया। बनावट से खबरदार करने का यह तरीका उन्हें बहुत प्रसिद्धि दे गया। उन्हें लोग उपदेशक समझने लगे। किसी ने ठीक ही कहा है कि कबीरदास सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्ति के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर व्यक्ति थे।

यह तो रही कबीर के व्यक्तित्व की बात। अब यहाँ दिए गए दोहों के आधार पर कबीर की अध्यात्मिकता, रहस्यवाद और उनकी कविता में विविध धर्मों, संप्रदायों और दर्शन ग्रंथों के प्रभाव को देखा जाए। विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छंद, पद आदि के प्रयोग में कबीर पूर्ण रूप से भारतीय हैं। कबीर की विचारधारा पर सूफी मत, एकेश्वरवाद, बौद्धों की महायान परंपरा, योग साधना और रामानंद की भक्ति पद्धति का प्रभाव है।

कबीर का लक्ष्य जिस प्रकार कविता करना नहीं था, उसी प्रकार दर्शन की गुत्थियाँ सुलझाना भी उनका लक्ष्य नहीं था। किंतु भक्ति में प्रेम की विविध भाव व्यंजनाओं के साथ-साथ

ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के संबंध में उनके स्पष्ट विचार हैं। ये विचार यहाँ आपके द्वारा अभी पढ़े गए दोहों में भी हैं। उदाहरण के लिए ईश्वर को मन में होने का भाव 'ज्यों तिल माहि तेल है' में व्यक्त किया गया है - तिल में जैसे तेल स्थित है, वह है पर दिखाई नहीं देता, वैसे ही ईश्वर अपने अंदर है। यही जान लेना जागना है। कबीर ने इसी परमात्मा को अनेक नाम दिए हैं। इसी प्रकार माया के द्वारा समस्त संसार को अपने वश में करने का प्रयत्न है। माया के फंदे से बचना बहुत कठिन है। कबीर के अनेक दोहों में माया से दूर रहने के लिए चेताया गया है। यह भी बार-बार बताया है कि जीवन का कोई भरोसा नहीं, यौवन पर गर्व न करें और ईश्वर का नाम स्मरण किए बिना यह मिथ्या संसार, माया से भरी दुनिया से पार नहीं पाया जा सकता। मन को साफ रखना होगा। लोभ, मोह, अहंकार का त्याग करना होगा। तभी जीवन सफल होगा।

कबीर : मिश्रित संस्कृति के प्रतिनिधि

संत कबीर ने अपने समय के समाज के अंतर्द्वंद्वों को भली प्रकार समझा था। वे यह जान गए थे कि धार्मिक भेदभाव, वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा और प्रदर्शन प्रियता भारतीय समाज को खंडित करने वाली बुराइयाँ हैं। इसलिए उन्होंने आत्मज्ञान की सर्वोपरिता का उपदेश दिया। जगत की क्षणभंगुरता और नश्वरता के बारे में बताने का उनका उद्देश्य मोह माया से मुक्त होने की प्रेरणा देना था। उन्होंने मानव मूल्यों के प्रति गहरी आस्था का संदेश दिया और समाज को टुकड़े-टुकड़े होने से बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को ही यह समझाने का प्रयास किया कि बाहरी कर्मकांड के द्वारा वे ईश्वर या अल्लाह की उपासना नहीं करते, बल्कि अपने-अपने अहंकार की पुष्टि करते हैं। परमात्मा तो एक ही है, लेकिन वह आंतरिक साधना से प्राप्त होता है। उन्होंने साफ-साफ कहा कि हिंदू यह कहते हैं कि हमें राम प्यारा है। दूसरी ओर मुस्लिम यह कहते हैं कि हमें रहमान प्यारा है। लेकिन कबीर कहते हैं कि ये दोनों अपने-अपने राम और रहमान के लिए आपस में लड़ कर मर जाते हैं, फिर भी दोनों में से किसी को भी परम तत्व का ज्ञान नहीं हो पाता। दरअसल इस तरह की उक्तियों के द्वारा कबीरदास धर्म के आधार पर उस समय के समाज में व्याप्त आपसी भेदभाव और दुश्मनी को मिटाना चाहते थे। कबीरदास अगर सैंकड़ों साल बाद आज भी प्रासंगिक हैं, तो इसका एक बड़ा कारण उनकी यह सामाजिक दृष्टि है। वास्तव में संत कबीर भक्ति आंदोलन के एक युग चेता, युग द्रष्टा तथा लोकधर्मी रचनाकार थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में यह सही ही लिखा है कि 15वीं शताब्दी का वह संक्रमण काल, धर्मगुरुओं की कट्टरता से हिंदू और मुसलमानों के बीच खाई के बढ़ते जाने का समय था। उस समय ऐसे एक मार्ग की आवश्यकता थी, जो इन दोनों धर्मों के बाहरी झगड़ों का उन्मूलन करके पंडितों और काजियों को मानव धर्म की ओर ले जाने में समर्थ होता। इसके लिए उन्होंने अपने गुरु रमानंद का अनुसरण

करते हुए भक्ति को सभी प्रकार की संकीर्णताओं से मुक्त किया। उनका भक्ति मार्ग सबके लिए सुलभ है, इसलिए वे भारतीय मिश्रित संस्कृति के प्रतिनिधि कवि सिद्ध होते हैं। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि कबीर कवि बाद में और समाज सुधारक पहले थे।

बोध प्रश्न

21. कबीर की विचारधारा पर किस किसका प्रभाव है?
22. कबीर ने भक्ति को किससे मुक्त किया?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! संत कबीरदास द्वारा रचित इन दोहों का अध्ययन करते हुए आपने ध्यान दिया होगा कि ये सभी दोहे किसी श्रोता या पाठक को सामने रखकर उसे जगाने की चेष्टा करते हुए रचे गए हैं। कबीर की कालजयी लोकप्रियता का यह एक बड़ा कारण है कि वे कभी भी अपने लक्ष्य श्रोता को नहीं भूलते। आपको पता ही है कि वे हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ संप्रेषकों (बेस्ट कम्युनिकेटर्स) में गिने जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ संप्रेषक वही हो सकता है जो सदा इस बात का ध्यान रखे कि वह किसके लिए अपना संदेश दे रहा है। कबीर इसका ध्यान हमेशा रखते हैं। जब उन्हें संतों से बात करनी होती है तो उनके संबोधन अलग प्रकार के होते हैं। जैसे साधो, संतो आदि। लेकिन जब उन्हें जनसाधारण से बात करने होती है तब वे 'भाई' का प्रयोग करते हैं। ऐसे अवसरों पर उनकी कथन शैली बेहद आसान हो जाती है। वे समाज को जब संबोधित करते हैं तो उसके आस पास के जीवन से उदाहरण और दृष्टांत उठाते हैं। सीधे-सीधे समझाते हैं कि गर्व नहीं करना चाहिए। यह लगभग वैसा ही है जैसे मुहावरे में कहा जाए कि घमंडी का सिर सदा नीचा होता है।

कबीरदास अपने समय के समाज को बदलना चाहते थे। उन्होंने देखा कि समाज धन संपत्ति और विलासिता के पीछे दौड़ रहा है। इसे उन्होंने माया के चक्र के रूप में दर्शाया और लोगों को इससे बचने की सलाह दी। वे माया को ठगनी मानते हैं। इसके आकर्षण से बचने के लिए वे मन को साधने की सलाह देते हैं। कहा जा सकता है कि अपने ऐसे दोहों में कबीरदास गीता के अनासक्ति और कर्मयोग जैसे जटिल विषयों को अत्यंत सरल रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। मन को साधना ही तो योग है। कबीर इस मन को ही वश में रखने का उपदेश देते हैं, ताकि वह माया के मोह में न पड़े।

कबीर ने देखा कि समाज में अध्यात्म की साधना के स्थान पर तरह-तरह के पाखंड प्रचलित हो गए हैं। इन पाखंडपूर्ण क्रियाओं का न तो कोई तार्किक आधार था और न ही इनका भक्ति से ही कोई संबंध था। हम आज भी देखते हैं कि लोग भक्ति के नाम पर मुंडन कराते हैं और मन्नत पूरी होने पर केशों को भगवान के चरणों में या पवित्र नदी में विसर्जित करते हैं। कहना न होगा कि इस तरह के आचरण पूरी तरह अज्ञान पर आधारित है। ऐसी रूढ़ियों का खंडन करने में कबीर बड़े चतुर हैं। वे किसी अबोध बच्चे की तरह सवाल करते हैं कि केशों ने तुम्हारा क्या

बिगाड़ा है जो इन्हें काटकर भक्ति का पाखंड करते हो? इस अबोध प्रश्न का आज भी कोई उत्तर नहीं है। इसीलिए कबीर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने भक्तिकाल में थे।

कबीर के इन दोहों को पढ़ते हुए आपने यह अवश्य महसूस किया होगा कि अपनी बात को समझाने के लिए वे शास्त्र ज्ञान और लोक ज्ञान दोनों का समन्वय करते चलते हैं। शास्त्र ज्ञान तो यह कहता है कि मनुष्य के शरीर सहित यह सारा जगत पंच तत्वों से बना है। आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी- इन पाँच तत्वों के मिलने से इस जगत की सृष्टि होती है। और जब इन पंच तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है तो प्रलय हो जाती है। व्यक्तिगत जीवन में इसका अर्थ यह है कि जब तक पंच तत्वों का संतुलन रहता है तब तक व्यक्ति जीवित रहता है। और जैसे ही एक भी तत्व अलग हो जाता है, वैसे ही शरीर निर्जीव हो जाता है। इस एक तत्व के अलग होने को समझाने के लिए कबीर शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा लोक के अनुभव का सहारा लेते हैं। लोक के अनुभव से वे बताते हैं कि जिस प्रकार अतिथि स्थायी नहीं होता उसी प्रकार जीव भी स्थायी नहीं है। इस प्रकार वे जीवन को 'पंच तत्व का पाहुना' कहकर जगत की क्षणभंगुरता का बोध कराते हैं।

लोग प्रायः आश्चर्य करते हैं कि सर्वथा अपढ़ होने के बावजूद कबीर की वाणी में इतनी शक्ति कहाँ से आई कि वे आज अनेक शताब्दियों बाद भी जीवित हैं! इसका उत्तर यह है कि कबीर ने सत्संग और देशाटन द्वारा शास्त्र और लोक दोनों की ज्ञान परंपराओं का गहरा अध्ययन किया था। ऐसा लगता है कि वे सारे शास्त्रों को घोंटकर पी चुके हैं। साथ ही लोक में जो कुछ भी मंगलकारी है उस सबको भी उन्होंने आत्मसात किया है। इसीलिए तो उन्हें ऐसी ऐसी अन्योक्तियाँ सूझती हैं कि जिन्हें श्रोता कभी भूल नहीं पाता। मृत्यु और जीवन को लेकर माली और कली के माध्यम से उन्होंने जो बात कह दी वह आज भी हर साधारण और विशिष्ट के हृदय को बेधने में समर्थ है। इस कल्पना को क्या कहिए कि माली को आते देखकर कलियाँ पुकार उठती हैं! जो कलियाँ खिल गईं, उन्होंने अपने अस्तित्व का चरम पा लिया। अब टूटना ही उनकी नियति है। जो शेष हैं, अभी अधखिली हैं, वे कल खिल जाएँगी। कली खिली, फूल बनी, सुगंध उड़ी, पराग फैला तो अस्तित्व का चरम प्राप्त हो गया। इसलिए हर कली को एक न एक दिन खिलकर माली के हाथों टूटना ही है। यही अस्तित्व, विकास और मृत्यु का सत्य है। इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। यह जगत अनित्य और क्षणभंगुर है। इस जटिल सत्य को कबीर कितनी आसानी से समझा देते हैं!

तब सवाल उठता है- सत्य क्या है? नित्य क्या है? जो सदा बना रहे वही सत्य है, वही नित्य है। वही वह मूल तत्व है जिसके कारण शरीर जीवित रहता है। इस दार्शनिक तथ्य को कबीर 'तिल में तेल' और 'चकमक में आग' के छिपे होने के दृष्टांत से इस तरह समझाते हैं कि आप एक बार समझ लें तो कभी भूले नहीं।

2.4 पाठ-सार

यहाँ आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत किए गए कबीरदास के कुछ दोहे कबीरदास की कविता के उदाहरण तो हैं ही, इन दोहों के द्वारा वे अपने विचार भी व्यक्त करते हैं। कबीर का समाज सुधारक रूप भी इन दोहों में स्पष्ट झलकता है। कबीर हमें माया के फंदे से बचाने के लिए सचेत करते हैं। शरीर की नश्वरता और मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता की ओर हमारा ध्यान दिलातें हैं। वे यह भी कहते हैं कि न तो हमें अपने यौवन पर गर्व करना चाहिए और न ही इस नाशवान शरीर का अभिमान। सार यह है कि हमें सदाचारी जीवन जीना चाहिए और व्यर्थ के आडंबरों और कुविचारों को छोड़कर ऐसा जीवन जीना चाहिए जिसमें बेकार के काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारों के लिए कोई स्थान न हो।

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए -

1. कबीर के काव्य का मुख्य स्वर समाज सुधार और उद्बोधन का स्वर है।
2. कबीर की भाषा-शैली सहज बोधगम्य है।
3. कबीर के दोहों में काव्य के सभी तत्व उपस्थित हैं, लेकिन वे अनायास आ गए हैं।
4. कबीर की भक्ति भावना में ज्ञान और प्रेम का समन्वय दिखाई देता है।
5. संत काव्य धारा में कबीर सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं।

2.6 शब्द संपदा

1. एकेश्वरवाद = बहुत-से देवताओं की अपेक्षा एक ही ईश्वर को मानना ।

2. माया = तीन तत्व अनादि अनंत शाश्वत हैं-एक ब्रह्म, एक जीव, एक माया।

3. ब्रह्म = (भगवान) और जीव (आत्मा) के अलावा जो बचा वो माया है, माया अज्ञान का प्रतीक है। संसार को जब माया कहा गया तो इसका अर्थ हुआ कि यह संसार झूठा है।

4. रहस्यवाद = वह भावनात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें कोई व्यक्ति या रचनाकार उस अलौकिक, परम, अव्यक्त सत्ता से अपना प्रेम प्रकट करता है जो संपूर्ण सृष्टि का आधार है। वह उस अलौकिक तत्व में डूब जाना चाहता है।

5. सूफी-मत = सूफी संतों द्वारा प्रतिपादित प्रेममूलक साधना पद्धति।

6. हठ-योग = बल पूर्वक चिंतन मनन करके अनुशासन में रहना ।

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. 'कबीर कवि से अधिक समाजसुधारक और नीति-निरूपक थे।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. कबीर के दोहों से उदाहरण लेकर उनकी भाषा पर विचार व्यक्त कीजिए।
4. कबीरदास को पढ़ने से जीवन के प्रति क्या दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है? बताइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'जाग सके तो जाग' कहकर किस नींद से जागने के लिए कहा जा रहा है और क्यों?
2. कबीर के राम और दशरथ के पुत्र राम में कबीर क्यों और कैसे भेद करते हैं?
3. क्या माया के वश में रहने से कोई हानि होती है?
4. माली को आता देखकर कलियों का घबरा जाना किस ओर संकेत करता है?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. कबीरदास का जन्म हुआ था – ( )
   (क) काशी में (ख) मगहर में (ग) प्रयागराज में
2. कबीर के जन्मदाता माता-पिता थे – ( )
   (क) कमाल-कमाली (ख) नीरू-नीमा (ग) पता नहीं
3. कबीर को कहते हैं – ( )
   (क) सगुण भक्त कवि (ख) निर्गुण भक्त कवि (ग) स्वच्छंद कवि
4. कबीर के गुरु थे – ( )
   (क) परमानंद (ख) तुलसीदास (ग) रामानंद
5. 'भाषा के डिक्टेटर' का अर्थ है - ( )
   (क) भाषा का आदर करने वाला (ख) भाषा का मनमर्जी प्रयोग करने वाला (ग) भाषा-प्रेमी

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. कबीर ने अपनी कविता के लिए सूफियों से .... लिया।
2. .... जान लेना जागना है।
3. पाँच तत्व .... हैं।
4. कबीर के दोहों को .... भी कहते हैं ।
5. कहते हैं कि कबीर ने आश्चर्यजनक रूप से.................... वर्ष की आयु प्राप्त की ।

III सुमेल कीजिए।

i) माया	(अ) प्रेम
ii) सूफी	(आ) एक
iii) एकेश्वरवाद	(इ) भ्रम

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर ग्रंथावली, (सं) श्यामसुंदरदास.
2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी.

इकाई 3 : भक्ति निरूपण

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूल पाठ : भक्ति निरूपण
   (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
   (ख) अध्येय दोहे
   (ग) विस्तृत व्याख्या
   (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
3.4 पाठ सार
3.5 पाठ की उपलब्धियाँ
3.6 शब्द संपदा
3.7 परीक्षार्थ प्रश्न
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के चार कालों में से एक भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहते हैं। कबीर इस युग के प्रतिनिधि कवियों में से एक हैं। बताया जाता है कि कबीर का जन्म काशी में सन 1398 और मृत्यु सन 1518 में मगहर में हुई। कबीर को नीरू-नीमा नामक दंपति ने पाला, पत्नी का नाम लोई और पुत्र-पुत्री का नाम कमाल और कमाली था। कबीर का कोई प्रामाणिक जीवन वृत्त नहीं मिलता। बहुत सी किंवदंती हैं। मगहर में मरने वाला नरक जाता है यह सुनकर कबीर ने मगहर में जाकर प्राण त्यागे।

कबीर भक्त कवि हैं। सच्ची मानवीयता की उद्घोषक भक्ति का उत्तर भारत में प्रसार दक्षिण भारत के द्वारा हुआ। दक्षिण के आलवार और नयनार संतों की वाणी में भक्ति है। ईसाइयत का प्रभाव, राजनीतिक उलट फेर की प्रतिक्रिया, समाज में व्याप्त निराशा, आदि कारणों के साथ ही निम्नलिखित दोहा भी भक्ति, भक्ति आंदोलन और भक्त कवियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है -

भक्ति द्रविड़ ऊपजी, लाए रामानंद।
प्रगट करी कबीर ने, सप्त द्वीप नव खंड॥

हिंदी का यह दोहा भक्ति के दक्षिण में उत्पन्न होने, और वहाँ से कबीर के गुरु रामानंद द्वारा उत्तर भारत में लाए जाने तथा संत कवि कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित करने की ओर संकेत करता है। कबीर की रचनाओं में जो भक्ति है वह सूरदास और तुलसीदास की भक्ति से भिन्न है। कबीर को ज्ञानमार्गी निर्गुण संत कवि कहते हैं।

कबीर की भक्ति में व्याकुल मन के विरह का जो वर्णन है वह इतना स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी है कि लगता है कबीर ने सब कुछ समर्पित कर दिया है। उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में उस पुरुष परमात्मा से मिलने की जो व्याकुलता शब्दबद्ध की है वह सीधे मन में समा जाती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के छह दोहों (साखियों) के द्वारा आप कबीर की निर्गुण भक्ति के स्वरूप की झलक प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई का अध्ययन करके आप -

- संत कवि कबीर के भक्ति विषयक दोहों की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- कबीर की पंचमेल (मिली जुली, खिचड़ी) भाषा का बोध कर सकेंगे।
- कबीर के दोहों में व्यक्त भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को समझ सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के लोकपक्ष से परिचित हो सकेंगे।

3.3 मूल पाठ : भक्ति निरूपण

(क) अध्येय कविता का परिचय

निर्गुण भक्त संत कवि कबीरदास की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके तीन भाग किए गए हैं - रमैनी, सबद और साखी। कबीर की वाणी को 'निर्गुण बानी' कहा जाता है। इनमें वेदांत तत्व, हिंदू मुसलमानों को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेम साधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की व्यर्थता, हज, नमाज़, व्रत-आराधना की गौणता इत्यादि प्रसंग हैं। कबीर पर भक्ति का संस्कार गुरु रामानंद द्वारा बचपन में ही डाल दिया गया था। पर बाद में कबीर के राम धनुर्धर साकार राम के स्थान पर ब्रह्म के पर्याय हो गए। इसलिए इनके भक्ति के पद और दोहे अनूठे हैं।

'भक्ति' विषयक इन दोहों में कबीरदास ने गुरु की महिमा, ईश्वर के नाम स्मरण का महत्व, प्रेम का सच्चा स्वरूप जैसे कई विषयों को प्रस्तुत किया है। कबीर की भक्ति भावना, दार्शनिक विचार, रहस्यवाद, समाज सुधार की प्रवृत्ति, काव्य कला, साखियों का महत्व, कबीर की भाषा आदि विषयों का बोध इन दोहों की पाठ सामग्री है। इनके पाठ द्वारा कबीर की कविता के मर्म को सरलता से समझा जा सकेगा।

(ख) अध्येय दोहे

i. सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार

ii. कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ।।

iii. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
    सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे घर माहि ।।
iv. प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
    राजा प्रजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ।।
v. अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल ।
    जिन थैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ।।
vi. नैनो की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाइ ।
    पलकों की चिक डारिके, पिया को लिया रिझाइ॥

निर्देश : इन दोहों का सस्वर वाचन कीजिए ।
दोहों को एक-एक करके इस प्रकार मन ही मन पढ़िए कि अर्थ स्पष्ट होने लगे।

(ग) विस्तृत व्याख्या

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार॥

शब्दार्थ : महिमा = गौरव, महानता। अनंत = अंतहीन, असीम, ईश्वर। लोचन = नेत्र, आँख। उघाड़िया = खोलना। दिखावणहार = दर्शन करने वाला।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्त कवि संत कबीरदास द्वारा रचित है और इसे 'भक्ति निरूपण' उपशीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रसंग : कबीर ने संत परंपरा के अनुसार गुरु के महत्व और महिमा का अनेक दोहों में वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि इस संसार में गुरु जैसा कोई अपना नहीं है।

व्याख्या : कबीर ने गुरु को बहुत महत्व दिया है। वे मानव जीवन में गुरु की सीख को आवश्यक मानते हैं। कबीरदास इस दोहे में कहते हैं कि यह इस कारण है क्योंकि सतगुरु की महिमा अपरम्पार है, उन्होंने मेरा बहुत उपकार किया है। उन्होंने मेरी बाहरी आँखों को नहीं बल्कि ज्ञान की आँखें खोल दी हैं। मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की है। इस अलौकिक दृष्टि के कारण मुझे अनंत ब्रह्म के दर्शन हो सके हैं। इसलिए मैं अपने गुरु के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

गुरु के प्रति आभार प्रकट करते हुए कवि कबीर कविता भी यहाँ अच्छी करते हैं और इस प्रकार गुरु भक्ति का यह दोहा (साखी) उसके पाठकों को भी अपने अपने गुरु के प्रति वैसे ही भाव रखने का ज्ञान देकर स्वयं भी गुरु के स्थान पर आ जाते हैं।

विशेष : इस दोहे में अनंत शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है। अनंत- अनंत । लोचन अनंत -ज्ञान चक्षु, प्रज्ञा रूपी नेत्र। अनंत - ब्रह्म। कबीर ग्रंथावली में यह दोहा 'गुरु को अंग' उपशीर्षक से संगृहीत है।

बोध प्रश्न

1. कबीर ने किसकी महिमा को ‘अनंत’ कहा है?
2. उसकी महिमा अनंत क्यों है?
3. ‘लोचन अनंत’ से क्या तात्पर्य है?

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल॥

शब्दार्थ **:** सुमिरण = स्मरण, परमात्मा को निरंतर याद करना। सकल = सब कुछ, समूचा। आदि अंति = आरंभ और अंत, जन्म और मृत्यु। सोधिया = खोजा।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्त कवि संत कबीरदास द्वारा रचित है और इसे ‘भक्ति निरूपण’ उपशीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रसंग : कबीरदास ईश्वर के नाम स्मरण को बहुत महत्व देते हैं। इस दोहे में भी वे इस नाम स्मरण को अति महत्वपूर्ण और अन्य सभी सांसरिक वस्तुओं को व्यर्थ बताते हैं।

व्याख्या : कबीर का मत है कि प्रभु का नाम लेना, ईश्वर का पल पल नाम स्मरण करते रहना ही इस जीवन का सार तत्व है। यही इस जीवन का उद्धेश्य है। अन्य सब बातें मनुष्य को बंधन में जकड़ने वाली हैं। कबीरदास कहते हैं कि उन्होंने संसार की सब बातों को अच्छी तरह छानबीन करके देख लिया है और वे इस बात को ज़ोर देकर पूरे विश्वास से कह सकते हैं कि भगवान के नाम के अतिरिक्त सभी बातें और वस्तुएँ विनाशकारी हैं, नष्ट होने वाली हैं।

यह बात ज्ञानमार्गी संत बार बार कहते रहें हैं कि यह संसार जंजाल है अर्थात् बंधन है और मनुष्य का जीवन नाशवान है। कबीर भी अन्य संतों की तरह ही संसार और यहाँ के समस्त व्यापार को बंधन मानकर उस बंधन से मुक्त होने का एक सरल उपाय बताते हैं और वह है - ईश्वर के नाम का बार बार उच्चारण। यह संतों और सामान्य जनता के लिए बहुत सीधा-सच्चा मार्ग भी है। इसमें कोई धन भी नहीं लगता और मन की एकाग्रता भी बढ़ती है।

विशेष : कबीर ग्रंथावली में यह दोहा ‘सुमिरन को अंग’ उपशीर्षक से संग्रहीत है।

बोध प्रश्न

4. कबीर के अनुसार जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या है?
5. इस निष्कर्ष पर कवि कैसे पहुँचता है?
6. कौन सी वस्तुएँ विनाशकारी हैं और क्यों?

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे घर माहि॥

शब्दार्थ : खाला = माँ की बहन, मौसी। सीस = शीश, सिर। भुई = भूमि, धरती। पैठे = प्रवेश करना।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्त कवि संत कबीरदास द्वारा रचित है और इसे 'भक्ति निरूपण' उपशीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रसंग : इस साखी में प्रेम के महत्व को और उसकी चुनौती को व्यक्त करते हुए मनुष्य को स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रेम रूपी घर में प्रवेश आसान नहीं है। प्रेम और समर्पण में साहस और निर्भीकता के साथ अहंकार का परित्याग भी आवश्यक है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं - यह प्रेम का घर है, किसी खाला या मौसी, बुआ या चाची का नहीं, वही इसके अंदर पैर रख सकता है, जो अपना सिर उतारकर धरती पर रख सके। सीस अर्थात् अहंकार का त्याग कर दे। जैसे कोई बालक अपनी खाला के घर में बेरोकटोक कभी भी आ जा सकता है, वैसा इस घर में नहीं हो सकता। सिर को उतारकर जमीन पर रख देना शूर-वीरता और निरहंकारिता को व्यक्त करता है। प्रेम के पवित्र साम्राज्य में प्रवेश की पात्रता के लिए एक ही शर्त है और वह है अहंकार का परित्याग। प्रेम चाहे किसी व्यक्ति से यो या ईश्वर से दोनों ही पूर्ण समर्पण, प्रतिबद्धता और अखंड विश्वास चाहते हैं।

विनयशीलता, अहंकार या घमंड का परित्याग, आत्मसमर्पण और ईश्वर के प्रति आस्था की सीख देने वाली कबीर की इस साखी में 'सिर को उतारकर धरती पर रख देना' एक बड़ी चुनौती है जिसको कोई आम भक्त सुनते ही घबरा जाएगा। वह ईश्वर के प्रासाद या घर में आने का इतना बड़ा मूल्य नहीं दे सकेगा। इसलिए कबीर भगवान की भक्ति का दिखावा करने वालों को यहाँ चेतावनी दे रहें हैं। उनके कथन को गंभीरता से लेने वाले ही इस ओर आने का विचार करें।

विशेष : 'सूरातन का अंग' उपशीर्षक से कबीर ग्रंथावली में सम्मिलित है।

बोध प्रश्न

7. 'खाला का घर' कहने से क्या तात्पर्य है?
8. प्रेम के घर में प्रवेश की शर्त क्या है?
9. 'सिर उतारकर धरती पर' रखने का प्रतिकार्थ क्या है?
10. 'अहंकार' के लिए यहाँ किस शारीरिक अंग को प्रतीक बनाया गया है?

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिन थैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल॥

शब्दार्थ : अंबर = आकाश। कुंजाँ = क्रोंच पक्षी, तालाब के किनारे रहने वाले सारस जाति का एक पक्षी। कुरलियाँ = विलाप। ताल = तालाब। गोबिंद = परमात्मा। बीछुटे = बिछुड़े।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्त कवि संत कबीरदास द्वारा रचित है और इसे 'भक्ति निरूपण' उपशीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रसंग : कबीरदास यहाँ एक उदाहरण द्वारा भक्ति और ईश्वर के प्रति प्रेम को प्रस्तुत करते हुए जीव और ब्रह्म के आपसी संबंध पर प्रकाश डालते हैं। प्रिय से वियोग और उससे फिर मिलने की वेदना में व्याकुल भक्त का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : आकाश में क्रोंच पक्षी अपनी प्रिया की विरह वेदना में विलाप कर रहा है। अपने इस व्यथापूर्ण विलाप से उसने सब तालों को गुंजायमान करते हुए अपने अश्रुजल से उन्हें भर दिया है। जब केवल एक रात के वियोग से एक पक्षी की यह अवस्था हो जाती है तो उस जीव का क्या हाल होगा जो अनेक जन्मों से अपने प्रभु से बिछड़ा हुआ है।

भारतीय दर्शन में जीव और ब्रह्म का परस्पर संबंध और जीव की ब्रह्म से मिलने की छटपटाहट का वर्णन बार बार आता है। यहाँ बड़े ही काव्यात्मक ढंग से और राजस्थानी भाषा के शब्द और कहन पद्धति से जीव की इस वेदना को शब्द बद्ध किया है। कबीर की भक्ति का यह अनोखा रूप है।

विशेष : निर्गुण भक्त कवि कबीरदास की यह विशेषता है कि वे राम, गोपाल, गोविंद, आदि प्रभु के अनेक नामों का प्रयोग करते तो हैं किंतु उनके 'गोविंद' कोई व्यक्तिविशेष नहीं हैं। ये नाम भर हैं और निराकार ईश्वर के लिए प्रयोग किए गए हैं।

बोध प्रश्न

11. आकाश में क्रोंच पक्षी क्या कर रहा है?
12. इस दोहे का संदेश क्या है?
13. कबीर की भक्ति इस दोहे में क्या रूप लेती है?

नैनो की करि कोठारी, पुतली पलंग बिछाइ।
पलकों की चिक डारिके, पिय को लिया रिझाइ॥

शब्दार्थ : नैनो = आँखों। बिछाई = बिछा कर। चिक = बाँस की तीलियों का बना हुआ पर्दा। पिय = प्रिय, ईश्वर। लिया रिझाइ = प्रसन्न कर लिया।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्त कवि संत कबीरदास द्वारा रचित है और इसे 'भक्ति निरूपण' उपशीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में कबीर ईश्वर या ब्रह्म और उसके अंश जीव की एक बहुत सुंदर रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

व्याख्या : जिस प्रकार कोई प्रेयसी अपने प्रियतम को प्रसन्न करने के लिए सुखसेज बिछाकर आतुरता से उसकी प्रतीक्षा करती है और उसके आगमन पर उसे अपनी मोहक भंगिमा से प्रसन्न भी कर लेती है उसी प्रकार से नेत्रों की कोठरी में उस पुतली का पलंग बिछाकर जिस पर पलकों का पर्दा लगा हुआ है भक्त ने अपने भगवान को रिझा लिया। नेत्रों को कोठरी, पुतली को पलंग, पलकों को चिक या पर्दे के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने भक्त की मनोदशा और आतुरता का सुंदर चित्र उपस्थित किया है।

विशेष : सगुण भक्त की भावुकता का मार्मिक चित्रण है। कबीर का यह प्रेम तत्व सूफी मत और भारतीय प्रेम दृष्टि का संगम है। माधुर्य भाव है। 'प' वर्ण की बार बार आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार अनायास ही आ गया है।

बोध प्रश्न

14. कबीर इस साखी में कहना क्या चाहते हैं?
15. प्रिया और प्रियतम वस्तुतः कौन हैं?

काव्यगत विशेषताएँ

कबीरदास पढ़े लिखे नहीं थे। किंतु वे बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। उनकी प्रखर प्रतिभा का इतना प्रभाव रहा कि उनकी हर बात को चमत्कारपूर्ण माना जाता है और यह है भी। वास्तव में 'कबीर पढ़े लिखे नहीं थे', 'उन्हें सुनी-सुनाई बातों का ज्ञान था', 'वे मूलतः समाज सुधारक थे' - ऐसी उक्तियाँ आज के समय में अप्रासंगिक हैं। शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करके ही कोई कवि या लेखक नहीं बनता। कबीर के गुरु रामानंद बड़े पंडित और विद्वान थे और उन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं किंतु लोग कबीर की कविता के दीवाने हैं, उनके गुरु के नहीं। अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा जो उन्होंने कहा, वह नया न होने पर भी अपने वाग्वैचित्र्य के कारण सबको चकित कर देता है। जीवन की पाठशाला से उन्होंने कविता करना सीखा था। इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है, "कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था, कविता तो उन्हें सेंत-मेंत में मिली वस्तु थी, उनका लक्ष्य लोक हित था।" कुछ लोग कबीर की कविता की भाषा को खिचड़ी और अनगढ़ कहते हैं। दूसरों की दृष्टि में यह अनगढ़ता ही सहज विशेषता है। उन्होंने स्वयं अपनी भाषा को 'पूरबी' कहा है। कबीर की कविता में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, संस्कृत, अरबी, फारसी के शब्दों का मिश्रण

मिलता है। इसी कारण उनकी भाषा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान 'सधुक्कड़ी' और 'पंचमेल खिचड़ी' कहते हैं। भक्ति के उपरोक्त दोहों की भाषा भी ऐसी ही है। इनकी शैली उपदेशात्मक, व्यंग्यात्मक और भावात्मक है। इसमें अद्भुत प्रवाह, स्वाभाविकता और भावात्मकता है। अलंकारों का प्रयोग जहाँ भी हुआ है वह स्वाभाविक है। अनुप्रास, रूपक, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति और दृष्टांत आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से भक्ति के इन दोहों की शोभा बढ़ाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, "भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर कबीर की उक्तियों में कहीं कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है, प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी इसमें संदेह नहीं।"

बोध प्रश्न

16. रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को क्या माना?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

कबीरदास या संत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत हैं। वे हिंदी साहित्य में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिंदी प्रदेश को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं - साखी, सबद (पद), रमैनी ।

साखी : संस्कृत 'साक्षी' शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियाँ दोहों में लिखी गई हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद : गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है; क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी : चौपाई छंद में लिखी गई है। इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

भक्ति काल के प्रायः सभी संत और कवियों में कुछ बातें समान मिलती हैं। जप, कीर्तन, और नाम की महत्ता को कबीर सभी रसायनों में उत्तम समझते हैं। गुरु की मान्यता कबीर के लिए गोविंद से भी बढ़कर है। भक्ति भी कबीर की ऊँची है। वे ज्ञान का विरोध नहीं करते पर भक्ति विरोधी ज्ञान का खंडन अवश्य करते हैं। कबीर ने प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करते हुए पोथियों के ज्ञान को निरर्थक कहा है। अहंकार का त्याग भी भक्ति का एक दूसरा रूप है। साधु संगति की महिमा बखानते और जाति-पांति का विरोध करते हुए कबीर ने जीवन के साधारण धर्म को माना। इनकी भाषा स्वतंत्र और आडंबर रहित है। कबीर ने काव्य शास्त्र या पिंगल पाठ

की कभी चिंता नहीं की। भावावेश में इन्हें जो रुचिकर लगा, बिना काव्य-रूढ़ियों की परवाह किए हुए उसे कविता में व्यक्त कर दिया।

कबीर की कविता की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है क्योंकि उन्होंने अपनी कविता अपने युग की संवेदना से निर्मित की। कबीर में कविता के बहुत से रंग हैं और भक्ति का उनका रंग तुलसीदास और सूरदास से भिन्न है। कबीर नाथपंथी योगी परिवार में पले-बढ़े थे। ये नाथ पंथी हिंदू और मुसलमान दोनों थे। कबीर उस परंपरा के कवि हैं जिसमें नामदेव, नानक, रैदास, दादू, आदि थे। वे उत्पीड़ित सामाजिक तबके से आए थे इसलिए उनकी भक्ति का आलंबन बहुत कुछ 'एकेश्वरवाद' के सिद्धांत पर आधारित है। इतिहासकार प्रोफेसर इरफान हबीब के शब्दों में, "कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं जिनमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परंतु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है और इस तरह वह कट्टर इस्लाम से बहुत आगे निकल गया है। कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना। इसलिए वहाँ शुद्धता और छुआछूत की प्रथा को संपूर्ण रूप से, स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है।"(सांप्रदायिकता और संस्कृति के सवाल, पृ. 23)।

कबीर ने पाँच सौ साल पहले कहा था-दुनिया के दो मालिक कहाँ से आए? यह हो ही नहीं सकता। यह भ्रम हमें नहीं ही रखना चाहिए। अल्लाह, राम और रहीम अलग-अलग कैसे हो सकते हैं। जिस प्रकार एक सोने से सब जेवर बनाए गए है - वही महादेव है, वही मुहम्मद। कोई हिंदू कहलाता है, कोई मुसलमान। लेकिन रहते सब एक ही जमीन पर हैं। एक वेद पाठी है, पुराण पढ़ता है दूसरा खुतबा पढ़ता है, कुरान पढ़ता है। एक मौलाना कहलाता है और एक पंडित, नाम अलग-अलग रख लिए हैं, वैसे बर्तन सब एक ही मिट्टी के हैं। कबीर का दर्शन उनके काव्य में इस प्रकार आ गया है कि चिंतन व चेतना का कबीर, भाव व भावना का कबीर, शेर और गीत का कबीर आज भी जिंदा है। इसलिए कबीर को पढ़ना आसान है और उन्हें समझना भी। किंतु उनके बताए हुए रास्ते पर चलना आसान नहीं है।

कबीर की भक्ति में किसी धार्मिक आंदोलन की अभिव्यक्ति न होकर तत्कालीन समाज की आर्थिक, धार्मिक और सांसारिक असंगतियों की अभिव्यक्ति है। कबीर की भक्ति में यह बात बार बार उभरकर आती है कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य समान हैं, फिर चाहे वे ऊँची जाति के हों या नीची कही या मानी जाने वाली जातियों के हों। दूसरे शब्दों में कबीर की कविता में पुरोहित वर्ग और जाति प्रथा की मनमानी के विरुद्ध संघर्ष करने वाली आम जनता के व्यापक हितों को प्रस्तुत किया गया है। उर्दू के प्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक अली सरदार जाफरी ने 'कबीर वाणी' नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में कहा है कि "कबीर की बानियों (साखियों और पदों में) में दिखावटी धर्म से विद्रोह और वास्तविक धर्म के प्रचार का वास्तविक पहलू यह था कि उसने मध्य युग के मनुष्य को आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दिया और मनुष्य को

मनुष्य से प्रेम करना सिखाया। संतों और सूफियों के पास उतनी ताकत तो थी नहीं कि वे उस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ सकें जिनका केंद्र शाही दरबार और अमीरों के महल थे। इसलिए उन्होंने उनकी तरफ से बड़े तिरस्कार के साथ मुँह फेर लिया और संतोष और धीरज का उपदेश दिया। संतोष का अर्थ वैराग्य नहीं था बल्कि बादशाहों, दरबारियों और अमीरों से विमुख होकर व्यापार और शारीरिक श्रम से रोजी कमाना था जिसका आदर्श कबीर ने पेश किया। उस युग में व्यापार को राजसेवा के मुकाबले तुच्छ समझा जाता था। इसलिए व्यापार और शिल्प की आमदनी पर संतोष करना और ईश्वर का उपकार मानते हुए जीवन व्यतीत करना ही सबसे बड़ा संतोष था।" (कबीर वाणी, पृ 34)

कबीर ने शास्त्रीय ग्रंथों और पोथियों (पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोऊ) के ज्ञान को अस्वीकार किया और सारे धार्मिक मतवादों, साधना पद्धतियों, उपासना मार्गों, कर्मकांडों और बाहरी आचरणों का खंडन कर आत्म चेतना की प्रतिष्ठा पर बल दिया। कबीर ने धर्म और जीवन को एक माना और जीवन की सात्विक अभिव्यक्ति के लिए उसका प्रयोग करके कविता की। अनुभव को आधार माना - आंखिन देखि - और भक्ति के नए रूप को प्रस्तुत किया।

कबीर की भक्ति वह नहीं है जो वैष्णवों की है, हठयोगियों की है । कबीर तो संतों का ज़िक्र करते हुए भी उनके चार लक्षणों में - किसी से बैर न रखना, किसी भी चीज की कामना न करना, परम तत्व रूपी स्वामी से प्रेम और विषय वासना का त्याग - को बताते हैं। स्पष्ट है कि कबीर के भक्ति में स्त्री पुरुष संबंध, पति पत्नी संबंध, माँ-बेटे का संबंध आदि संबंध प्रेमाभिव्यक्ति के प्रतीक मात्र हैं। कबीर ने 'प्रेमभक्ति' के सर्वथा नए स्वरूप की कल्पना की। ज्ञान, योग और भक्ति को नया आयाम दिया। संक्षेप में कबीर की भक्ति को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. शास्त्रीय ग्रंथों और पोथियों के ज्ञान का पूर्ण बहिष्कार।
2. ज्ञान, योग और भक्ति का सम्मिलन।
3. भक्ति में मानव मात्र के प्रति समानता की भावना।
4. किसी भी धार्मिक बाह्याचार या धार्मिक कर्मकांड का विरोध।
5. ईश्वर तत्व और मानव प्रेम की अभिन्नता।

कबीर का प्रेम

कबीर भक्तिकाल की स्वच्छंदतावादी धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। भक्ति की परंपरावादी धारा के साथ टकराव भी उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। इस टकराव के फलस्वरूप उनका भक्तिमार्ग परस्पर विरोधी प्रतीत होते वाले तत्वों के समन्वय का भी सुंदर उदाहरण बन गया है। उनके भक्तिमार्ग में 'निर्गुण उपासना और प्रणय भावना की एक साथ उपस्थिति' इसी

समन्वय का प्रतीक है। डॉ. तारक नाथ बाली ने अपनी पुस्तक 'आलोचना, प्रकृति और परिवेश' में लिखा है कि, "कबीर सगुण को अस्वीकार कर सिर्फ निर्गुण को मान्यता देते हैं क्योंकि उनका सरोकार किसी एक धर्म या धारा की मर्यादाओं से नहीं है, वरन मानव मात्र की मर्यादा से है। इसीलिए आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने कबीर वाले निर्गुण (निरपेक्ष सत्य) को ही माना है, क्योंकि कबीर के समान ही उनका सरोकार भी मानव मात्र की अस्मिता से है जिसे किसी एक धर्म या विचारधारा की संकीर्णता से नहीं बाँधा जा सकता।"

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि कबीर का समय समाज में मूल्यहीनता का समय था। व्यक्ति, जाति, धर्म और संस्कृतियाँ अपने संकीर्ण अहंकार के कारण संघर्षरत थीं। कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म और सहज मार्ग को प्रेम पर आधारित करके एक ऐसे संस्कार का निर्माण किया, जिसने इस देश के दीन-हीन, शोषित, अशिक्षित, परंतु शांति चाहने वाले साधारण लोगों को गहराई तक प्रभावित किया। कबीरदास अपने सहज मार्ग द्वारा समाज की पिछली पंक्ति तक पहुँच सके, इसका कारण उनके उस 'प्रेम' भाव में विद्यमान है, जो ईश्वर के घर में प्रवेश की पहली शर्त व्यक्ति के अहंकार की समाप्ति को मानता है। अहंकार से मुक्त इस प्रेमाभक्ति का प्रचार करते हुए कबीरदास ने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और लोगों को यह समझाया कि ईश्वर को पाने का मार्ग 'वेद और कतेब' से प्राप्त नहीं होता; बल्कि उसके लिए तो 'प्रेम का ढाई आखर' पढ़ लेना काफी है। यही प्रेम कबीर के रहस्यवाद का भी आधार है, जिसमें आत्मा प्रेमिका है और परमात्मा उसका परम प्रेमी है।

बोध प्रश्न

17. कबीर की भक्ति में किसकी अभिव्यक्ति हुई है?
18. कबीर के रहस्यवाद का आधार क्या है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! भक्ति निरूपण पर केंद्रित संत कबीरदास के इन दोहों का अध्ययन करने से आपके मन में यह विचार स्पष्ट हो गया होगा कि कबीर अपने आराध्य के प्रति गहरा लगाव रखने वाले पूर्णतः समर्पित भक्त थे। आम तौर से यह सवाल उठाया जाता है कि कबीर कवि पहले थे या समाज सुधारक। लेकिन कवि और समाज सुधारक होना बाद की बात है। गहराई से देखे तो कबीर का भक्त रूप उनके इन दोनों रूपों पर हावी है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' के 'निर्गुण भक्ति का साहित्य' विषयक अध्याय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस समस्या का निराकरण करते हुए लिखा है कि –

> "कबीरदास मुख्य रूप से भक्त थे। वे उन निरर्थक आचारों को व्यर्थ समझते थे, जो असली बात को ढँक देते हैं और झूठी बातों को प्राधान्य दे देते हैं। उनके प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। जो प्रेम या भक्ति पद-पद पर भक्त को भावविह्वल कर

देती है, मन और बुद्धि का मंथन करके मनुष्य को परवश बना देती है और जो उन्मत्त भावावेश के द्वारा भक्त को हतचेतन बना देती है, वह कबीर को अभीष्ट नहीं। प्रेम के क्षेत्र में वह गलदश्रु भावुकता को कभी बर्दाश्त नहीं करते। बड़ी चीज का मूल्य भी बड़ा होता है। भगवान-जैसे प्रेमी को पाने के लिए भी मनुष्य को बड़े-से-बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। और अपने-आपको देने से बढ़कर मनुष्य और कौन सा मूल्य चुका सकता है?”

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि भक्ति के ज्ञान मार्ग और प्रेम मार्ग एक-दूसरे के विरोधी हैं। विशेष रूप से निर्गुण भक्ति की शाखाओं के रूप में इन्हें अलग-अलग देखने से यह भ्रम होना स्वाभाविक है। कबीर के भक्ति विषयक दोहों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि ज्ञान और प्रेम एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। बल्कि प्रेम के बिना ज्ञान अधूरा है। क्योंकि भक्ति अपने मूल रूप में प्रेम ही तो है। अपने आराध्य के प्रति ‘परम प्रेम’ ही भक्ति का आधार है। ज्ञान तो अपने आराध्य को पहचानने के लिए आवश्यक है। पहचान होने पर प्रेम से ही उसे रिझाया जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ में इस विषय को बहुत अच्छी तरह समझाया है। दरअसल कबीर की भक्ति किसी एक पद्धति की सीमाओं में बंधी हुई नहीं है। बड़ी हद तक वह उस समय तक उपलब्ध विविध भक्ति धाराओं का सुंदर समन्वय है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में -

“सारांश यह कि जो ब्रह्म हिंदुओं की विचार पद्धति में ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया। उनकी बानी में ये अवयव स्पष्ट लक्षित होते हैं।”

अभिप्राय यह है कि वैदिक विचार पद्धति के अनुसार ‘ब्रह्म’ ज्ञान का विषय है। कहा भी गया है कि गंगा और समुद्र आदि में स्नान करने से कुछ नहीं होता, व्रत और अनुष्ठान से भी कुछ नहीं होता। दान और यज्ञ से भी कुछ नहीं होता; इन सबसे मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति तो केवल ज्ञान से ही मिलती है। ‘ज्ञान’ इस अनुभव का नाम है कि ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। कबीर ने इस ब्रह्म को सूफियों की भाँति प्रेम अथवा भक्ति का विषय बना दिया। लेकिन साधना पद्धति के रूप में उन्होंने अपने समय में प्रचलित गोरखनाथ आदि गुरुओं द्वारा प्रवर्तित हठयोग को स्वीकार किया। इतना ही नहीं कबीर की भक्ति पद्धति पर बौद्धों के सहजयान का भी कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य रहा। इस प्रकार कबीर अपने समय की विभिन्न साधना पद्धतियों का मेल कराने वाले संत हैं। इन पद्धतियों में भारतीय ब्रह्मवाद, सूफी भावात्मक रहस्यवाद, गोरखपंथी, साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णव मत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शरणागति सब कुछ एक साथ शामिल हैं।

कहा जा सकता है कि कबीर की अपार लोकप्रियता का आधार यह समन्वित भक्ति पद्धति भी है।

3.4 पाठ-सार

इस पाठ का शीर्षक 'भक्ति' है। 'भक्ति' शीर्षक से यहाँ प्रस्तुत छह दोहों (साखियों) में कबीर ने एक एक करके सतगुरु की महिमा, नाम स्मरण की महत्ता, अहंकार का परित्याग, ईश्वर से साक्षात्कार की ललक, और उसको रिझाने के उपक्रम आदि विषयों को प्रस्तुत किया है। कहा जाता है कि कबीर ने राम नाम की दीक्षा रामनंद से ली थी। अपने गुरु के प्रति आदर भाव के साथ ही कबीर ने अपनी तरह से भगवान की भक्ति की और उसका स्वरूप निर्धारित किया। वे निराकार के उपासक होने के बाद भी उसके प्रति प्रेम का प्राकट्य करने के लिए प्रिया-प्रियतम का रूपक रचते हैं ।

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए –

1. कबीर की भक्ति का आराध्य निर्गुण ब्रह्म है।
2. कबीर की भक्ति में आत्मा और परमात्मा का संबंध प्रेमिका और प्रियतम के समान है। यही उनके रहस्यवाद का आधार है।
3. कबीर के रहस्यवाद में परमात्मा से भिछुड़ने अर्थात् विरह की तीव्र अनुभूति शामिल है।
4. परमात्मा को पाने के लिए कबीर निरंतर उसके स्मरण को ज़रूरी मानते हैं।
5. कबीर की निर्गुण भक्ति में ज्ञान और प्रेम का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

3.6 शब्द संपदा

1. आडंबर = दिखावा, अनावश्यक
2. उत्पीड़ित = जिसे दबाया गया हो, जिसे पीड़ा दी गई हो
3. परिमार्जित = जिसका परिमार्जन किया गया हो या हुआ हो, स्वच्छ किया या सुधारा हुआ
4. परिष्कृत = साफ़ किया हुआ, सुधारा हुआ
5. सधुक्कड़ी = साधुओं का-सा या साधुओं की तरह का। आचार्य रामचंद्र शुल्क ने कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी कहा है ।
6. सेंत-मेंत = मुफ़्त में; फ़्री में। बिना कुछ किए या दिए; नाहक।

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए

1. संत काव्य धारा के प्रमुख कवि के रूप में कबीर का मूल्यांकन कीजिए।
2. कबीर की भक्ति की उदाहरण देकर विवेचना कीजिए।
3. पठित दोहों के आधार पर कबीर की भाषा पर प्रकाश डालिए।
4. 'कबीर में कई तरह के रंग हैं' - स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'भक्ति' के अंतर्गत संकलित दोहों का प्रतिपाद्य लिखिए।
2. कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
3. किसी दोहे को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कबीर के ईश्वर के प्रति प्रेम को समझाइए।
4. कबीर के अनुसार नाम स्मरण बहुत महत्वपूर्ण है, क्यों?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. कबीर का जन्म किस स्थान पर हुआ था – ( )
   (अ) प्रयागराज (आ) काशी (इ) मगहर
2. कबीर के गुरु थे – ( )
   (अ) शेख तकी (आ) रामानंद (इ) परमानंद
3. कबीर की भाषा कैसी है - ( )
   (अ) परिमार्जित (आ) मानक (इ) खिचड़ी
4. कबीर का काव्य किस मार्ग का प्रतिनिधि है? ( )
   (अ) भक्ति काव्य धारा (आ) निर्गुण ज्ञानमार्गी काव्य धारा (इ) प्रेम मार्गी काव्य धारा

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. गुरु की मान्यता कबीर में .... से भी बढ़कर है।

2. हम सब एक ही मिट्टी के बर्तन हैं, चाहे वह .... हो या पंडित।

3. कबीर ने सामाजिक .... का डटकर विरोध किया।

4. कबीर की भाषा में .... भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण है।

III सुमेल कीजिए।

i) कबीर (अ) दोहा

ii) बीजक (आ) रहस्यवादी

iii) भाषा (इ) साखी, सबद, रमैनी

iv) छंद (ई) खिचड़ी

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर ग्रंथावली, (सं) डॉ. श्याम सुंदर दास.

2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी.

3. सांप्रदायिकता और संस्कृति के सवाल, इरफान हबीब.

4. कबीर वाणी, अली सरदार जाफरी.

5. कविता के पक्ष में, ऋषभदेव शर्मा एवं पुर्णिमा शर्मा.

इकाई 4 : झीनी झीनी बीनी चदरिया

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मूल पाठ : झीनी झीनी बीनी चदरिया
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
4.4 पाठ सार
4.5 पाठ की उपलब्धियाँ
4.6 शब्द संपदा
4.7 परीक्षार्थ प्रश्न
4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आप सभी ने संत कबीरदास का नाम सुना भी होगा और उनके दोहों या पदों का अध्ययन भी किया होगा। कबीर हिंदी साहित्य के मध्ययुग के विशिष्ट कवि थे। हिंदी साहित्य के इस मध्ययुग को भक्तिकाल भी कहा जाता है और यह युग हिंदी साहित्य के इतिहास का स्वर्ण युग भी है। इस युग को स्वर्ण युग बनाने में इस युग के कवियों का विशेष योगदान रहा है, जिनमें से कबीरदास भी एक हैं। आप यह भी जानते होंगे कि कबीरदास निर्गुण भक्ति की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि थे। उन्होंने अपने समय के समाज में व्याप्त बाह्याचार, अंध रूढ़ियों एवं पाखंड पर प्रहार किया तथा आत्मानुभूति पर आधारित उपासना व साधना के मार्ग को प्रशस्त किया। समाज में व्याप्त जातिगत भेद-भाव को दूर करते हुए हिंदू-मुस्लिम के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास भी कबीरदास ने किया है। अपनी रचनाओं में कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के संबंधों को उद्घाटित करते हुए परमतत्व की प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य बताया है। प्रतीकों के प्रयोग से कबीर ने चमत्कार उत्पन्न कर आध्यात्मिक कथन को संप्रेषित किया है। इसीलिए उन्हें रहस्यवादी कवि भी कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में सम्मिलित पद 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' कबीर के प्रतीकात्मक प्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप भक्तिकाल की निर्गुण धारा के प्रमुख कवि संत कबीरदास के पद 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- कबीरदास की रचना-प्रकृति को जान सकेंगे।
- कबीर के अनुसार मानव और ईश्वर के बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त करते हुए आत्मा-परमात्मा जैसे शब्दों के वास्तविक अर्थ को समझ सकेंगे।
- प्रस्तुत पद में निहित कबीर के रहस्यवादी तत्व से साक्षात्कार कर सकेंगे।
- जीवन की नश्वरता, माया, मोह जैसी विचारधाराओं को आत्मसात कर सकेंगे।
- भारतीय परंपरा में निहित भक्ति भावना के साधनात्मक स्वरूप तथा आध्यात्मिक अनुभूति का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कबीरदास की भाषा एवं शैलीगत विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- जुलाहा व्यवसाय से संबंधित प्रतीकात्मक शब्दों से अवगत हो सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : झीनी झीनी बीनी चदरिया

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' पद में कबीर ने प्रतीकों के प्रयोग से शरीर और आत्मा के महत्व को दर्शाया है। जुलाहा वृत्ति से प्राप्त प्रतीकों का प्रयोग करते हुए वे कहते हैं कि ईश्वर ने बड़ी कुशलता एवं सूक्ष्मता के साथ इस मानव शरीर का निर्माण किया है। जिस प्रकार महीन धागों से सुंदर तथा उत्कृष्ट चादर की बुनावट होती है, उसी प्रकार उस परमतत्व ने इस शरीर को आत्मा की चादर के रूप में बनाया है। यह शरीर आत्मा का रक्षक है, अत: बड़े जतन से उसे संभालकर रखना चाहिए। किंतु हम उस चादर रूपी शरीर को महत्व नहीं देते, तथा उसे गंदा कर देते हैं। इस पद के अर्थ को यदि हम ध्यान से समझने की कोशिश करें तो पता चलता है कि कबीर ने कितनी सूक्ष्मता से गहरी और मार्मिक बात कह दी है। वे ईश्वर द्वारा निर्मित इस जीवन की पवित्रता एवं उसके महत्व को इस पद में प्रतिपादित करते हैं। जीवन में बाह्य शरीर एवं अंतर्मन में निहित आत्मा - दोनों को बड़े जतन से रखना अनिवार्य है।

(ख) अध्येय कविता

झीनी झीनी बीनी चदरिया॥
काहे कै ताना काहै कै भरनी,
कौन तार से बीनी चदरिया ॥1॥
इडा पिंगला ताना भरनी,
सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥2॥

आठ कँवल दल चरखा डोलै,
पाँच तत्व गुन तीनी चदरिया ॥3॥
साँ को सियत मास दस लागे,
ठोंक ठोंक कै बीनी चदरिया ॥4॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,
ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया ॥5॥
दास कबीर जतन करि ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥6॥

निर्देश : इस कविता का सस्वर वाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

झीनी झीनी बीनी चदरिया॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी,
कौन तार से बीनी चदरिया॥

शब्दार्थ : झीनी-झीनी = बारीक परत। बीनी = बुनना, बुनावट। चदरिया = चादर, शरीर, जीव (प्रतीकात्मक शब्द)। काहे = क्यों, कैसे। तार = धागा (प्रस्तुत पद में नाडि)।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्तिकाल के प्रसिद्ध संत कवि कबीरदास द्वारा रचित पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से ली गई हैं। इस पद से कबीर शरीर की बुनावट कैसे हुई है, इस पर सवाल करते हैं ।

प्रसंग : कबीर आध्यात्मिक चिंतन के साथ-साथ मानव जीवन के मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों की सदा परवाह करते थे। वे मानव शरीर के महत्व को समझते थे। इसलिए, इस शरीर की सूक्ष्मता एवं इसकी रचना पर विचार करते हुए कवि सवाल करते हैं कि महीन चादर रूपी यह शरीर कैसे बना और क्यों बना?

व्याख्या : संत कवि कबीर शरीर में बने प्रत्येक अंग की सूक्ष्मता को देखते हुए कहते हैं कि यह शरीर इतनी झीनी चादर के समान है कि उसे किसी मंजे हुए जुलाहे ने बुना होगा। चादर के निर्माण में जुलाहा बारीक व महीन धागे का प्रयोग करता है और पूरी तन्मयता एवं ध्यान मग्न होकर उसे बुनता है। यह शरीर भी बिलकुल उसी तरह बारीकी से बना हुआ है। अत: कबीर सवाल करते हैं कि शरीर रूपी इस चादर को किन तारों से बनाया होगा? वह धागा कितना महीन होगा और उसे जुलाहे ने कितनी तन्मयता से इसकी बुनावट की होगी? यह धागा इतनी

महीन होती है कि एक दूसरे से उलझ सकते हैं, अत: कोई मंजे हुए जुलाहा ही इस प्रकार का चादर बुन सकता है। इस प्रकार के सवाल करते हुए कबीर इस शरीर के महत्व को प्रतिपादित करते हैं तथा मानव को सोचने पर मजबूर करते हैं।

विशेष : शरीर की बुनावट का वर्णन करते हुए कबीर जुलाहों के कार्य कौशल का परिचय भी इस पद के माध्यम से देते हैं। चादर की बुनावट में जुलाहे को एक साधक बनना पड़ता है। शरीर भी तन्मयता और साधना का फल है। 'झीनी' शब्द इस शरीर की सूक्ष्मता को इंगित करता है। प्रतीकात्मक शैली में जीवन की अभिव्यक्ति है। जुलाहे व्यवसाय से प्रतीकों को लिया गया है। सामान्य एवं व्यावहारिक शब्दों से आध्यात्मिक चिंतन के मर्म को उजागर किया गया है।

बोध प्रश्न

1. कबीर ने किसकी बुनावट की बात कही है?
2. किन-किन सवालों पर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है?
3. शरीर की तुलना किससे की गई है?
4. इन पंक्तियों में निहित अर्थ को स्पष्ट करें।

इडा पिंगला ताना भरनी,
सुखमन तार से बीनी चदरिया॥

शब्दार्थ : इडा = बाईं ओर की नाड़ी, जिसमें साँस का प्रवाह होता है। पिंगला = दाईं ओर की नाड़ी, जिसमें साँस का प्रवाह होता है। सुखमन = सुषुम्ना नाड़ी (मुख्य नाड़ी है, इसी से ऊर्जा रीढ़ में उठती है। अध्यात्म में कहा जाता है कि रीढ़ में 7 ऊर्जा केंद्र हैं जिन्हें चक्र कहा जाता है।)

संदर्भ : उपर्युक्त पंक्तियों को भक्तिकाल के प्रसिद्ध संत कवि कबीरदास के पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से लिया गया है। इस पद में कबीर समझाते हैं कि शरीर रूपी इस चादर की बुनावट किन धागों से हुई है।

प्रसंग : मानव शरीर जिसे कबीर जीवात्मा मानते हैं उसकी बुनावट बड़ी ही सूक्ष्मता से एवं महीन धागों से हुई है। कबीर चकित होकर सवाल भी करते हैं कि न जाने किस महीन धागे से इस सुंदर शरीर की बुनावट हुई है । सवाल करते-करते वे उसका जवाब भी स्वयं ही देते हैं। वे कहते हैं कि इड़ा और पिंगला नाड़ी से शरीर की बुनावट हुई है।

व्याख्या : कबीर ईश्वर द्वारा रचित इस शरीर की बुनावट पर चकित होते हैं और इसकी बुनावट के रहस्य को उद्घाटित करते हैं। ईश्वर की तुलना उस जुलाहे से करते हैं जो महीन धागों से चादर का निर्माण करता है। कबीर यह मानते हैं कि यह शरीर आत्मा का कवच है और इसे ईश्वर ने बड़े ही नाजुक धागों और तन्मयता से निर्मित किया है। कबीर जब सोचते हैं कि किस प्रकार के धागे से इस शरीर की बुनावट हुई होगी, तब अपनी आध्यात्मिक चिंतन के बल पर उत्तर के रूप

में वे कहते हैं कि इस शरीर का निर्माण दो ऐसी नाडियों से हुआ है जिन्हें इड़ा और पिंगला कहा जाता है। ये दो ऐसी नाड़ियाँ हैं जिनके जरिए प्राण का संचार होता है। योगियों के अनुसार शरीर में 72,000 नाडियाँ हैं पर जिनका कोई भौतिक रूप नहीं है। इन्हें समझने के लिए निरंतर साधना की आवश्यकता होती है। इनमें से सुषुम्ना (सुखमन) एक ऐसी नाड़ी है जिसके माध्यम से ऊर्जा रीढ़ में उठती है। आध्यात्मिक चिंतन में कहा जाता है कि रीढ़ की हड्डी के भीतर 7 ऊर्जा केंद्र हैं, जिन्हें चक्र कहा जाता है। कबीर एक ऐसे साधक थे, जो शरीर की बुनावट के इस रहस्य को जानते थे। प्रस्तुत पद में उन्होंने इसी रहस्य का उद्घाटन किया है।

विशेष : प्राण के बिना हाड़-माँस का यह शरीर पत्थर के समान है। अत: इस शरीर में प्राण वायु का होना अनिवार्य है। शरीर में प्राण फूँकने का कार्य ये नाड़ियाँ करती हैं। अध्यात्म से संबंधित शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रथम दो पंक्तियों में जो सवाल उठाया गया है, उसका जवाब इन पंक्तियों में मिलता है। कबीर बाह्य शरीर की बात नहीं करते हैं। शरीर के अंदर जो चलता है, जिसका हमें ज्ञान नहीं है और उसके लिए निरंतर आत्मानुभूति की जरूरत होती है, वे उसी का खुलासा कर रहे हैं।

बोध प्रश्न

5. शरीर का निर्माण किन-किन धागों से हुआ है?
6. शरीर में प्राण का संचार कैसे होता है?
7. योगियों के अनुसार शरीर में कितनी नाड़ियाँ हैं और उनमें से प्रमुख कौन-कौन सी नाड़ी हैं?

आठ कँवल दल चरखा डोलै,
पांच तत्व गुन तीनी चदरिया॥

शब्दार्थ : कंवल दल = मूलाधार चक्र जो कँवल के समान है, चरखा = प्रतीकात्मक शब्द, सूत कातने का औजार, शरीर की बुनावट के लिए परमतत्व ने आठ कंवल दल को चरखा बनाया है जो घूम (डोलै) रहा है।

संदर्भ : यह काव्यांश कबीरदास के पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से लिया गया है। इस पद के माध्यम से कबीर ईश्वर द्वारा बनाए गए इस शरीर की विशेषता को बताते हैं। ईश्वर ने इस शरीर को केवल सूक्ष्म तारों से ही नहीं अपितु पाँच तत्व एवं तीन गुणों से भी सिंचित किया है।

प्रसंग : चरखे से सूत कातने के कुछ तरीके होते हैं और बुनावट एक कला है जिसमें निपुणता एवं ज्ञान की आवश्यकता होती है। बुनावट के कुछ नियम भी होते हैं। उसी प्रकार ईश्वर ने भी जब इस शरीर रूपी चादर की बुनावट की है उसके लिए चरखे का प्रयोग किया है और उसे तत्व एवं गुण से संपन्न बनाया है। इसी का कथन इन पंक्तियों में निहित है।

व्याख्या : जिस प्रकार जुलाहा बिना चरखे के सूत नहीं कात सकता है, उसी प्रकार इस शरीर रूपी चादर की बुनावट भी ईश्वर चरखे के बिना कैसे कर सकते हैं? कबीर कहते हैं कि अष्टदल कमल का अर्थात् आठ पंखुड़ियों वाले कमल का चरखा चल रहा है जिससे पाँच तत्वों की पूनियों से तीन गुण वाले तार यथा सत्व, रजस और तमस खींचे जा रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार नदी में भंवर होता है, उसी प्रकार शरीर के अंदर जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसके आठ चक्र हैं, जिसे अष्टदल कमल कहा गया है जो भंवर की तरह घूम रहा है। परमसत्य की प्राप्ति का अर्थ है, पूरे कमल का खिलना। अत: अंतस की ऊर्जा की चेतनता आवश्यक है।

विशेष : प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। मन, मस्तिष्क, चेतनावस्था जैसे आंतरिक तत्वों को प्रतीकों के माध्यम से उजागर किया गया है। आध्यात्मिक तथ्यों का साधारणीकरण हुआ है। संक्षिप्त एवं कम शब्दों में गंभीर विषय का प्रतिपादन किया गया है। जुलाहा उद्योग से संबंधित शब्दों का सटीक प्रयोग हुआ है। चरखा ऊर्जा का प्रतीक है। पंच तत्व हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। तीन गुण हैं - सत्व, रजस और तमस। पूनी चरखे में काते जानेवाले कपास के रेशों को कहा जाता है। कबीर ने पूनी के रूप में पाँच तत्वों की बात कही है।

बोध प्रश्न

8. अष्टदल कमल किसका प्रतीक है?
9. शरीर रूपी चादर की बुनावट कैसे की गई है?
10. पंच तत्वों के नाम लिखिए।
11. 'पूनी' के अर्थ को स्पष्ट करें।

साँ को सियत मास दस लागे,
ठोंक ठोंक कै बीनी चदरिया॥

शब्दार्थ : साँ = सांईं, परमतत्व। सियत = सिलाई करना, बुनना। मास = महीने। लागे = लगना। ठोंक-ठोंक = ठुँसा-ठुँसाकर या घुसा-घुसाकर या बुनने के अर्थ में।

संदर्भ : प्रस्तुत पद्य-अंश को कबीरदास के पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से लिया गया है। इन पंक्तियों में कबीर कहते हैं कि ईश्वर को शरीर रूपी चादर बनाने के लिए दस महीने लगते हैं।

प्रसंग : कबीर कहते हैं कि ईश्वर ने बड़ी ही बारीकी से रेशे-रेशे को जोड़कर, उसमें ऊर्जा एवं चेतना का संचार कर जिस शरीर की बुनावट की है, वह सामान्य कार्य नहीं है। यह भी सत्य है कि एक शरीर की बनावट दूसरे से बिलकुल भिन्न है। आंतरिक शरीर की क्रिया को कवि इस पद में अभिव्यक्त करते हैं।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि जीवात्मा रूपी चादर की बुनावट ईश्वर ने की है, उसके निर्माण में ईश्वर को भी समय लगता है। उनका कहना है कि एक शरीर की बुनावट के लिए परमतत्व को

पूरे दस महीने लगे क्योंकि उसने जो बुनावट की है, वह बहुत अमूल्य है। एक शरीर दूसरे से हर दृष्टि से भिन्न है। अर्थात्, ईश्वर ने प्रत्येक जीवात्मा को अनोखा एवं विशिष्ट बनाया है। तार-तार को जोड़कर जिस प्रकार जुलाहा महीन चादर बुनता है जो एक दूसरे से रंग, आकार आदि हर दृष्टि से भिन्न होता है, ईश्वर की यह रचना भी इसी प्रकार भिन्न है। ठोंक-ठोंक कर इस चादर को तैयार करने में पूरे दस महीने लगे।

विशेष : ईश्वर ने एक शरीर के निर्माण में जो समय लगाया है, वह अमूल्य है। इसे बनाना इतना आसान नहीं है। ठोंक-ठोंक कर बनाया गया है। ठोंक-ठोंक - पुनरुक्ति शब्द है, जिससे मेहनत और काम की बारीकी का पता चलता है। यह भी स्वयं सिद्ध है कि माँ के गर्भ से शिशु के जन्म लेने के लिए दस महीने लगते हैं।

बोध प्रश्न

12. इस शरीर रूपी चादर की बुनावट में कितना समय लगता है?
13. उपर्युक्त दो पंक्तियों की विशेषता स्पष्ट करें।

सो चादर सुर नर मुनि ओढी,
ओढि कै मैली कीनी चदरिया॥

श्ब्दार्थ : सो = इस प्रकार। नर = मनुष्य। मुनि = तपस्वी, साधक। ओढि = ओढ़ना। मैली = गंदा। कीनी = करना।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को कबीर के पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से लिया गया है। कबीर शरीर एवं आत्मा की स्वच्छता की बात करते हैं।

प्रसंग : कबीरदास कहते हैं कि प्रत्येक शरीर की बुनावट के लिए परमतत्व को दस महीने लगते हैं। अत: यह शरीर अत्यंत मूल्यवान है। इसके महत्व को समझते हुए इसे बड़े ही जतन से रखने की आवश्यकता है। किंतु मूढ़ मानव इस चिंता से मुक्त है तथा उसे अपने शरीर और आत्मा की कद्र नहीं है, जिसके कारण वह मैली हो जाती है।

व्याख्या : ईश्वर ने जिस चादर रूपी शरीर (आंतरिक एवं बाह्य) की बुनावट की है, उसके सम्मुख कोई भी वस्तु मूल्यवान नहीं हो सकती। इसलिए इस अमूल्य संपदा की कद्र हमें करनी चाहिए। प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग करते हुए कबीर दुखी होकर कहते हैं कि ईश्वर द्वारा बुनाई गई इस चादर को सुर, नर और मुनियों ने ओढ़ ली है, किंतु किसी ने उसकी रक्षा नहीं की है। सभी ने उसे मैली कर दी है। अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले देवता भोग से इसे मैले करते हैं। मुनि, तपस्वी अपने त्याग से इसे मैले कर देते हैं। कहा जाता है कि त्याग और भोग में अधिक अंतर नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन दोनों के बीच में मनुष्य है जो त्याग और भोग दोनों से इसे नष्ट कर रहा है। वह दिन के चौबीस घंटों में कई बार त्याग और भोग के बीच मंडराता रहता है।

कबीर का विश्वास है कि शरीर आत्मा का रक्षा कवच है। जब शरीर मैली हो जाती है तो आत्मा भी मैली होने लगती है। अत: शरीर को शुद्ध रखना अनिवार्य है।

विशेष : सुर का अर्थ है - स्वर्ग में रहने वाले देवता। देवता भोगने के शुद्ध प्रतीक हैं। वे सिर्फ़ भोगते हैं। स्वर्ग वास्तव में भोग स्थल है। वासना में डूबकर देवता चादर को मैले कर देते हैं। जहाँ भोगी सोने को सोना कहता है, वहीं पर त्यागी सोने को मिट्टी कहता है, किंतु बात तो दोनों ही सोने की ही करते हैं। नर अर्थात् मनुष्य दोनों ओर डावांडोल होता रहता है। उपर्युक्त पंक्तियों में कबीर का आत्मविश्वास और पौराणिक मान्यताओं का स्वीकार दिखता है। पौराणिक कथनों में ऐसी कई कहानियाँ मिलती हैं जिसमें देवता एवं मुनियों के चरित्र पर संदेह किया जाता है। इसलिए कबीर ने कहा है कि सभी ने इस चादर को मैले कर दिया है।

बोध प्रश्न

15. कबीर के अनुसार चादर क्यों मैली हो गई है?

> **दास कबीर जतन कर ओढी,**
> **ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥**

शब्दार्थ : जतन करि = सावधानी से। ज्यों की त्यों = जैसे था वैसे ही। धर दीनी = सहेजकर रखना।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को कबीरदास के पद झीनी झीनी बीनी चदरिया से लिया गया है। इन पंक्तियों में कबीर का आत्मविश्वास झलकता है।

प्रसंग : जो शरीर इतना मूल्यवान है, उसको सहेजकर रखना आवश्यक है। किंतु सुर, नर, मुनि सभी उस चादर को ओढ़कर उसे मैले कर देते हैं। इसको मैले होने से बचाना चाहिए।

व्याख्या : उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से कबीरदास बड़े ही आत्मविश्वास के साथ कहते हैं कि सुर, नर, मुनि चाहे कोई भी इस चादर को मैली कर दें किंतु कबीरदास ने जो चादर ओढ़ ली है, उसे बड़े जतन से संभालकर रखेंगे और उसकी रक्षा करेंगे तथा उसे उसी रूप में बचाकर रखेंगे जिस रूप में ईश्वर ने उसकी बुनावट की है।

विशेष : कबीर के आक्रामक स्वर का बोध होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि कबीर ने इस पद में बिना घमंड के ऐलान किया है कि आत्मा और शरीर को शुद्ध रखना ही वास्तव में सच्ची सेवा है। इन पंक्तियों में कबीर का दंभ झलकता है, आक्रामक तर्क झलकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि “सुर-नर-मुनि को उंगली दिखाकर कहना और उनकी तुलना में अपने-आप को बैठा देना और फ़िर प्राय: चिढ़ाने वाली बात होने पर भी, कबीर ने कटुता या प्रत्याक्रमण की चिंता के साथ बिल्कुल नहीं कही है।” इस प्रकार सपाट-बयानी कबीर की विशेषता है।

बोध-प्रश्न

16. कबीर ने चादर को कैसे रखने के लिए कहा है?
17. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की अभिव्यक्ति के बारे में क्या कहा है?

काव्यगत विशेषताएँ

कहा जाता है कि कबीर अनपढ़ थे, किंतु उनमें विलक्षण प्रतिभा विद्यमान थी। कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था, लेकिन काव्य करने की कला उनके अंदर इस प्रकार समाहित थी कि अनायास ही वे जो भी कहते उसमें काव्य तत्व निहित होते थे। सपाट-बयानी उनके काव्य की विशेषता रही है। वे निर्गुण ईश्वर के उपासक थे। नाथ एवं सिद्धों के साधना मार्ग से प्रभावित थे। मुख्यत: नाथों की साधना पद्धति का उन पर प्रभाव था, जिसका नाम हठयोग साधना है।

कबीरदास की प्रस्तुत रचना को समझने के लिए इस साधना पद्धति की जानकारी का होना आवश्यक है। इस सिद्धांत के अनुसार महाकुंडलिनी नामक एक शक्ति है जो संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। कुंडलिनी और प्राण-शक्ति को लेकर ही जीव माँ के गर्भ में प्रवेश करता है। जीव की तीन अवस्थाएँ होती हैं - जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न। इन्हीं अवस्थाओं में कुंडलिनी शक्ति द्वारा शरीर की धारणा का कार्य होता है। कमलदल चक्र, इडा (इंगला), पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी आदि शरीर को चेतनता प्रदान करते हैं।

कबीर का प्रस्तुत पद हठयोग के सिद्धांत पर खरा उतरता है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' पद में साधना के इन्हीं तत्वों को समाहित किया गया है। बचपन से ही जुलाहा परिवार में रहकर जुलाहों की कार्य-प्रणाली को कबीर ने नजदीक से देखा है। अतः जुलाहों की जीवन शैली से संबंधित शब्दों को प्रतीकात्मक रूप में कबीर ने प्रयोग किया है। आध्यात्मिक तत्वों को प्रस्तुत करने के लिए कबीर ने अधिकतर प्रतीकों का प्रयोग किया है।

यह पद शरीर की बनावट एवं शरीर की कार्य प्रणाली का बयान करता है। बाह्य शरीर ही नहीं, बल्कि आंतरिक शरीर भी जिसमें प्राण वायु का संचार होता है।कबीर का यह पद शरीर के महत्व को प्रतिपादित करता है।

कबीर की भाषा को अधिकांश विद्वानों ने सधुक्कडी भाषा माना है क्योंकि उसमें अनेक भाषाओं के शब्दों का मेल है। जैसे पूर्वी हिंदी, खड़ी बोली, राजस्थानी, ब्रजभाषा, पंजाबी आदि। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाथपंथियों की परंपरागत भाषा में काव्य रचना की है जिसमें पश्चिमी बोलियों का अधिक प्रभाव दिखता है। उनकी भाषा अनुभूति प्रधान है। इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है ।

प्रस्तुत पद की भाषा को यदि ध्यान से देखें तो हम इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि कबीर वाणी के प्रयोग में कितने सक्षम थे। गंभीर तत्व एवं सत्व युक्त बातों को उन्होंने अत्यंत

सरल शब्दों में कह डाली। भाषा का अक्खड़पन उन्हें विरासत में मिली थी। यही अक्खड़पन प्रस्तुत पद में दिखाई पड़ता है जिसमें उन्होंने सुर, नर और मुनि किसी को नहीं भक्शा। उनकी अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप दिखती है। उनकी दृष्टि की तीक्ष्णता एवं तीव्रता उनकी अभिव्यंजना शैली में प्रतिबिंबित होते थे। ठोंक-ठोंक कै बीनी चदरिया, ओढि कै मैली कीनी चदरिया में उनकी दृष्टि की तीक्ष्णता एवं अभिव्यंजना कौशल का परिचय मिलता है।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के संत कवि कबीर उन कवियों में अग्रगण्य हैं जो निर्गुण ईश्वर के उपासक होने के साथ-साथ वैष्णव भक्ति में निहित प्रेम तत्व को अपनी भक्ति पद्धति में समाहित किए हुए थे। उनके निर्गुण ब्रह्म पर भारतीय अद्वैतवाद तथा मुस्लिम एकेश्वरवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका राम अनादि, अनंत, त्रिगुणातीत एवं सत्य स्वरूप है। वे न जन्म लेते हैं, न मृत्यु को प्राप्त करते हैं। वे अविनाशी एवं पूर्ण हैं। ईश्वर से मिलने की बात वे निरंतर अपनी रचनाओं के माध्यम से कहते रहते हैं। उस अज्ञात सत्ता को कबीर ने पति परमेश्वर के रूप में तथा जीवात्मा को प्रेयसी के रूप में मानकर जो संबंध निरूपित करते हैं, उससे रहस्यवाद का संचार होता है।

सामान्यत: रहस्यवाद के दो भेद माने जाते हैं - साधनात्मक रहस्यवाद एवं भावात्मक रहस्यवाद। साधनात्मक रहस्यवाद में योग, साधना, कुंडलिनी, षट्चक्र आदि का उल्लेख होता है। कबीर अपने पदों में कुंडलिनी योग का वर्णन करते हुए साधनात्मक रहस्यवाद का परिचय देते हैं। झीनी झीनी बीनी चदरिया पद भी कबीर के रहस्यवादी तत्वों को उद्घाटित करता है। अन्य स्थानों पर अवधू, निरंजन जैसे शब्द उनकी भाषा को और रहस्यात्मक बनाते हैं। कबीर ने उलटबाँसियों के माध्यम से भी आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। प्रतीकों के द्वारा अदृश्य, अगोचर, अप्रस्तुत को प्रस्तुत, गोचर एवं दृश्य बनाकर कबीर काव्य में लाते हैं, जिनसे काव्य की सुंदरता अपने आप ही बढ़ जाती है। उन्हें आध्यात्मिक अनुभूतियों को बोधगम्य बनाने के लिए प्रतीकों का सहारा लेना पड़ा है।

न केवल आध्यात्मिक दर्शन किंतु कबीर का सामाजिक चिंतन या दर्शन भी श्रेष्ठतम है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया है। हिंदू-मुसलमान दोनों के पाखंड का खंडन किया है। वे केवल शास्त्र ज्ञान की बात ही नहीं, बल्कि आचरण शुद्धि की बात भी करते हैं। कबीर की यही विचारधारा प्रस्तुत पद में झलकती है। इस पद में आत्म शुद्धि या आचरण शुद्धि की बात निहित है।

कबीरदास का लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, अत: इस जाति के परंपरागत विश्वासों से वे प्रभावित थे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जुलाहों की जीवन शैली उनके रग-रग में बसी हुई थी। अत: उनके जीवन से संबंधित शब्दों को प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग करते हुए कबीर ने गहन आध्यात्मिक तथ्यों का उद्घाटन किया है। इस शरीर में प्राण वायु को वहन करने के लिए कई नाड़ियाँ हैं, जिनमें से कुछ का आभास हम साँस लेते समय पाते हैं। जो नाड़ी बाईं ओर है उसे इडा और जो दाहिनी ओर है उसे पिंगला कहते हैं। कबीर ने अनुप्रास मिलाने के लिए इंगला-पिंगला का प्रयोग किया है। इन दोनों के बीच सुषुम्ना (सुखमन) नाड़ी है। वैसे तो शरीर में 72 हजार नाड़ियाँ हैं, पर सुषुम्ना नाडि सबसे विशिष्ट नाड़ी हैं, बाकी सब सहायक नाड़ियाँ हैं।

उपर्युक्त तथ्यों को समझने के लिए साधना की आवश्यकता होती है। लेकिन कबीर ने बड़े ही सामान्य, लचीले व जीवन के निकटतम शब्दों का प्रयोग कर इस तथ्य को सामान्य व्यक्ति की झोली में डाल दिया है। इस प्राण-वायु के संचार के बिना जीव मृत समान है। अत: जीव के इस महत्वपूर्ण पक्ष की जानकारी होना आवश्यक है। कबीर ने इस पद के माध्यम से इसी जैविक रहस्य का उद्घाटन करते हैं।

इसी अनुभूति के साथ यदि प्रस्तुत पद का अध्ययन किया जाय तो पद का अर्थ अपने-आप खुलता जाएगा।

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! कबीरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन के अलावा उनकी उद्बोधन, भक्ति और ज्ञान विषयक रचनाओं को पढ़कर अब तक आपकी समझ में यह बात भली प्रकार आ गई होगी कि कबीर अपने समय अर्थात् पंद्रहवीं शताब्दी के सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे। यह बात अलग है कि वे बेहद साधारण नागरिक थे। कोई राजपुरुष नहीं थे। बाद में उनके नाम पर कबीर पंथ अवश्य चला। लेकिन अपने समय में उन्होंने अपना कोई मठ या पंथ नहीं बनाया। वे तो सामान्य गृहस्थ थे। परिश्रम करके कपड़ा बुनते और उसे बेचकर आजीविका चलाते थे। अपनी इस साधारणता के बावजूद वे असाधारण और विशिष्ट बन सके, क्योंकि उन्होंने अपने समय की नब्ज पहचानी। और समाज को मूढ़ आग्रहों तथा पाखंडों से निकालकर एक मिश्रित साधना पद्धति दी।

कबीर की महानता का संकेत उनके इस पद में बहुत सरलता से देखा जा सकता है। कबीर महान हैं, क्योंकि उन्होंने अपने आचरण द्वारा निर्लिप्तता और अनासक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। यह आदर्श वही व्यक्ति स्थापित कर सकता है जिसकी कथनी और करनी में भेद न हो। कबीर अगर माया को ठगनी कहते हैं तो उससे दूर रहने का उदाहरण भी अपने जीवन से पेश

करते हैं। इस ठगनी माया के फेर में न पड़ने के कारण ही यह संभव हुआ कि वे तमाम पाखंडियों को एक पंक्ति में खड़ा करके फटकार सके। इससे उन्हें यह आत्मविश्वास मिला कि वे कह सके कि इडा, पिंगला और सुषुम्ना रूपी तीन तारों से बुनी हुई इस जीवन रूपी अत्यंत झीनी चादर को मनुष्यों, मुनियों और देवताओं ने ओढ़ा है। ओढ़ ओढ़कर खूब मैला किया है। लेकिन मैंने इसे इतने यत्नपूर्वक ओढा है कि अंतिम समय में इसे बेदाग समेटकर रख रहा हूँ। यह आत्मविश्वास ही वह पारदर्शिता प्रदान करता है जो ब्रह्म अथवा आत्म तत्व के साक्षात्कार के लिए जरूरी है।

कबीर को यह आत्मविश्वास बड़ी हद तक उस परिवेश से प्राप्त हुआ था, जो उन्हें पंद्रहवीं शताब्दी के भारत में काशी जैसे स्थान पर जन्म लेने से उपलब्ध हुआ था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं -

> "असंभव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर-विरोधी कोटियों का मिलन-बिंदु भगवान को अभीष्ट होता है। कबीरदास ऐसे ही मिलन-बिंदु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व; जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा; जहाँ एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना; उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर-विरुद्ध दिशा में गए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवद्-दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग किया।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 76)।

अंततः यह कहना आवश्यक है कि जब कबीर स्वयं को अपने से पहले के सुर-नर-मुनि से अलग बताते हैं, तो यह उनकी गर्वोक्ति नहीं है। बल्कि उस साधक का आत्मविश्वास है जिसने प्रेम का ढाई आकर मात्र पढ़ा है और जीवन की चादर पर माया-मोह का कोई दाग नहीं लगने दिया है।

4.4 पाठ-सार

झीनी झीनी बीनी चदरिया आध्यात्मिक व रहस्यात्मक अनुभूति प्रदान करने वाला पद है। इस पद में कबीर शरीर की बुनावट को महीन चादर के समान कहते हैं जिसे एक कुशल जुलाहा चरखे पर सूत कात कर बनाता है। यहाँ कबीर ने जुलाहा शब्द का प्रयोग उस परमतत्व के लिए किया है, जिसने दस महीनों की अवधि में इस जीव का सृजन किया है जो अप्रतिम एवं अनमोल है। जुलाहा तार से रंग-बिरंगी चादर बनाता है और ईश्वर ने भी एक दूसरे से भिन्न, अनोखे जीव राशि को बुना है जिसमें न केवल बाह्य शरीर बल्कि आंतरिक अवयव भी चमक उठा है। शरीर की आंतरिक चेतना की अनुभूति इस पद में होती है। यह सोचने वाली बात है कि

72 हजार नाड़ियों का सही जुड़ना अनिवार्य है, अन्यथा जीवन असफ़ल हो जाता है। कबीर उस साधक की तन्मयता पर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं कि इस चादर रूपी शरीर के महत्व को समझें तथा उसे मैली न करें। अब तक हम उसे मैले करते आए हैं। सुर, नर एवं मुनि सभी ने उसे मैला कर दिया है। कबीर उसे मैले होने से रोकना चाहते हैं।

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध होते हैं-

1. कबीर परमतत्व द्वारा निर्मित इस शरीर को उसकी सूक्ष्म रचना मानते हैं।
2. कबीर ने रहस्यात्मक तथा आध्यात्मिक चिंतन को लोक प्रचलित प्रतीकों द्वारा सुग्राह्य बना दिया है।
3. कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों से जुलाहा जीवन की कार्यप्रणाली का पता चलता है।
4. कबीर को अपने आचरण की शुद्धता पर पक्का भरोसा था।

4.6 शब्द-संपदा

1. अद्वैतवाद = एक दर्शन। इसके अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।
2. आत्मानुभूति = आत्म साक्षात्कार (स्वयं को समझना)
3. एकेश्वरवाद = एक मत जिसमें इस जगत के निर्माता को एक माना जाता है।
4. जुलाहा = कपड़े बुनने वाला। फ़ारसी शब्द।
5. निर्गुण ईश्वर = जिसका कोई रूप, आकार नहीं है। निराकार ब्रह्म या ईश्वर
6. बाह्याचार = ढकोसलापन
7. रहस्यवाद = ईश्वर और सृष्टि के परम तत्व पर आश्रित तथा सात्विक अनुभूति
8. साधारणीकरण = रस निष्पत्ति की तादात्म्यपरक स्थिति (एक होना) से संबद्ध सिद्धांत
9. हठयोग साधना = योग का एक प्रकार। आसन, ध्यान आदि से बाह्य विषयों से हठकर अंतर्मुखी होना। नाथपंथ की साधना पद्धति

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास का परिचय देते हुए समाज के लिए उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।
2. कबीर के रहस्यवाद पर विचार कीजिए।
3. 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' पद के कथ्य को स्पष्ट कीजिए।
4. अध्येय पद के आधार पर कबीरदास के व्यक्तित्व पर विचार व्यक्त कीजिए।

5. कबीरदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए ।

1. कबीरदास के काव्य पर जुलाहा जीवन का कैसा असर रहा?
2. 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' पद का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी ....ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया' - इन पंक्तियों का भावार्थ लिखिए।
4. कबीरदास क्यों कहते हैं कि चादर को मैले होने से बचाना है? तर्क सम्मत उत्तर दीजिए ।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. कबीरदास का लालन-पालन इस परिवार में हुआ था - ( )

   (अ) कुम्हार (आ) जुलाहा (इ) ब्राह्मण

2. विद्वानों के अनुसार कबीर की भाषा .... है। ( )

   (अ) ब्रज (आ) भोजपुरी (इ) सधुक्कडी

3. कबीरदास इस ईश्वर के उपासक थे। ( )

   (अ) निर्गुण (आ) सगुण (इ) दोनों

4. पिंगला इसे कहते हैं - ( )

   (अ) बाईं ओर की नाड़ी (आ) बीच की नाड़ी (इ) दाईं ओर की नाड़ी

5. योगियों के अनुसार शरीर में इतनी नाड़ियाँ हैं ( )

   (अ) 72,000 (आ) 73,000 (इ) 71,000

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. झीनी झीनी बीनी छदरिया में चादर ....का प्रतीक है।
2. सत्व, ...और तमस ये तीन गुण हैं।
3. रहस्यवाद के ....भेद माने गए हैं।

III सुमेल कीजिए।

(1) चादर	(अ) नाथपंथ
(2) हठयोग साधना	(आ) हजारीप्रसाद द्विवेदी
(3) वाणी के डिक्टेटर	(इ) शरीर

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी.

2. मध्ययुगीन काव्य के आधार स्तंभ, तेजपाल चौधरी.

3. हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी.

4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी.

5. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी.

इकाई 5 : सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उदेश्य
5.3 मूल पाठ : सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व
5.3.1 सूरदास का जीवन परिचय
5.3.2 सूरदास की रचनाएँ
5.3.3 रचनाओं का परिचय
5.3.4 हिंदी साहित्य में महत्व
5.4 पाठ सार
5.5 पाठ की उपलब्धियाँ
5.6 शब्द संपदा
5.7 परीक्षार्थ प्रश्न
5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य के इतिहास को चार काल खंडों में विभाजित किया गया है- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल। इनमें भक्तिकाल, को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा गया है। भक्तिकाल की चार शाखाएँ हैं - ज्ञानाश्रयी शाखा, सूफी प्रेमाश्रयी शाखा, राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा। सूरदास हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। 'भक्ति' शब्द संस्कृत के 'भज' धातु से संबद्ध है। इसका अर्थ है - 'सेवा करना'। इसमें 'क्ति' प्रत्यय है। यहाँ 'क्ति' का आशय है - 'प्रेमपूर्वक'।

इस प्रकार भक्ति का आशय है - 'प्रेमपूर्वक सेवा'। सेवा मानवीय गुणों में सर्वोपरि गुण है, तो प्रेम मानव मन की श्रेष्ठ भावना है। कृष्ण भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति के निरूपण का काव्य है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में भी कृष्ण भक्ति काव्य की समृद्ध परंपरा रही है। सूरदास तथा उनके समकालीन कृष्ण भक्तों ने हिंदी में उसका आगे विकास किया। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के मुख्यतः बाल रूप तथा गोपाल रूप का वर्णन किया है। कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में अष्टछाप कवियों का विशेष महत्व रहा है। इन्होंने भक्ति काल को विशेषतः प्रभावित किया है। इन कवियों के सत्प्रयासों से ही पूरा भारत कृष्ण भक्ति के रंग में रंग गया था। वास्तव में अष्टछाप वल्लभ संप्रदाय का साहित्यिक रूप है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान अद्वितीय है। सूरदास ने कृष्ण भक्ति को नया रूप प्रदान किया। कृष्ण की बाल लीलाओं का ऐसा वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास अपनी बंद

आँखों से वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए हैं। हिंदी साहित्य में सूरदास का स्थान महत्वपूर्ण है। सूरदास के बिना कृष्ण काव्य की चर्चा ही नहीं हो सकती। उन्हें हिंदी साहित्य के आकाश का सूर्य माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम उनके ही जीवन और साहित्य पर चर्चा करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- प्रमुख कृष्ण भक्त कवि सूरदास के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में जान सकेंगे।
- सूरदास के साहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे।
- सूरदास के वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति के रूप से अवगत हो सकेंगे।
- भ्रमरगीत परंपरा के प्रतिष्ठापक के रूप में सूरदास के महत्व को समझ सकेंगे।
- सूरदास के दार्शनिक भाव की अभिव्यक्ति को समझ सकेंगे।

5.3 मूल पाठ : सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

भारतीय ऋषि एवं महात्मा प्राचीनकाल से ही भक्त, परोपकारी, ज्ञानी एवं वैरागी रहते आए हैं। उनके नाम को लोकप्रियता अथवा यश प्राप्त हो, इसकी चिंता उन्होंने कभी नहीं की। अतः अपनी रचनाओं में अपना परिचय देना उन्होंने आवशयक नहीं समझा। आत्म प्रदर्शन की भावना से तो वे कोसों दूर थे। वास्तव में ये प्रत्यक्ष से नहीं, परोक्ष से प्रेम करते थे। ये अपने आराध्य देव की गाथा गाते-गाते उनके प्रेम में इतने निमग्न हो जाते थे कि इन्हें अपने विषय में कुछ कहने का स्मरण ही नहीं रहता था। फलतः इनके जीवन-वृत्त के विषय में प्रामाणिक रूप में कुछ भी कहना बहुत कठिन हो जाता है। ठीक यही बात महात्मा सूरदास के जीवन-वृत्त के संबंध में चरितार्थ होती है।

5.3.1 सूरदास का जीवन परिचय

किसी भी कवि की जीवनी के संबंध में कुछ जानने के लिए मुख्य रूप से दो साधन प्रयोग में लाए जाते हैं - 1) अंतः साक्ष्य और 2) बाह्य साक्ष्य। अंतः से तात्पर्य उस सामग्री से है, जो स्वयं कवि द्वारा अपनी रचनाओं में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में कही गई हो। बाह्य साक्ष्य के अंतर्गत उस कवि के समय के तथा कुछ बाद के साहित्यकारों के कथन आते हैं, जो उन्होंने उस कवि के विषय में कहें हों। कभी-कभी कुछ सामग्री विश्वस्त जनश्रुतियों से भी प्राप्त हो जाती है। इन्हीं साधनों का आधार लेकर, सूरदास के जीवन-वृत्त पर प्रामाणिक रूप से प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

जन्म तिथि

जन्म तिथि के संबंध में स्वयं सूरदास ने तो कुछ कहा ही नहीं है। इसका उल्लेख किसी ग्रंथ में भी नहीं है। 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' के दो पदों के आधार पर विद्वानों ने इनकी जन्मतिथि पर काफी विचार विमर्श किया है। हालाँकि इस पर मतभेद है, तो भी अधिकांश विद्वान सूर का जन्म 1478 ई. में मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूर का जन्म सं. 1540 (1483 ई.) में माना है।

जन्म स्थान

सूरदास के जन्म स्थान के संबंध में भी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान मथुरा और आगरा के बीच स्थित रुनकता नामक गाँव को इनका जन्म स्थान बताते हैं, किंतु इसके लिए उनके पास पुष्ट प्रमाणों का अभाव है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', जो सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है, उसके अनुसार सूरदास का जन्म 'सीही' नामक गाँव में हुआ था। 'सीही' को कई विद्वान पहले मथुरा के समीप मानते थे, किंतु अब सभी विद्वान दिल्ली के आसपास मानते हैं। विद्वानों का बहुमत सीही के पक्ष में ही है। इस मत को अधिक समीचीन समझना चाहिए।

वंश परंपरा

सूरदास के वंश परिचय के संबंध में 'साहित्य लहरी' के साक्ष्य को प्रामाणिक मानते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास को चंदबरदाई का वंशज माना है। सूरदास के पिता का नाम न तो उनके जीवन संबंधी ग्रंथों में प्राप्त होता है और न वंश परिचय के द्योतक 'साहित्य लहरी' के पद में है। 'आईने अकबरी' में ग्वालियर निवासी रामदास व उनके पुत्र सूरदास का नाम अवश्य मिलता है। इसी आधार पर कुछ विद्वान सूर को अकबर का दरबारी कवि होना तथा रामदास को इनका पिता होना मान लेते हैं। इस ग्रंथ में रामदास को वैरागी कहा गया है। सूर भी भक्त होने के कारण वैरागी ही थे।

अतः कुछ विद्वानों ने रामदास को इनका पिता मानने में संकोच नहीं किया है, किंतु सूर के जीवनवृत्त पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये अकबर के दरबारी कवि नहीं थे। वार्ता के अनुसार सूरदास को अकबर ने दरबार में गाने के लिए बुलाया था। लेकिन इसका अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता।

बोध प्रश्न

1. सूरदास की जन्मतिथि का उल्लेख किन ग्रंथों में मिलता है?
2. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार सूरदास का जन्मस्थान कहाँ है?
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास को किसका वंशज माना है?

नेत्रहीनता

इस बात को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि सूरदास अंधे थे। लेकिन वे अंधे जन्म से थे अथवा बाद में हुए, इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। सूर के काव्य में हाव-भाव, जीवन और शरीर के सूक्ष्म व्यापारों तथा प्रकृति के विविध क्रियाकलापों का वर्णन देखकर तो ऐसा लगता है कि सूर जन्म से अंधे नहीं थे, किंतु इस तर्क का खंडन विद्वानों ने यह कह कर किया है कि कवि एवं महात्माओं को दिव्य नेत्रों से सब कुछ दिख जाता है।

इसके अतिरिक्त 'राम रसिकावली', 'भक्त विनोद' आदि ग्रंथों की कुछ पंक्तियाँ सूर को जन्मान्ध घोषित करती है। इनके समकालीन कवि श्रीनाथ भट्ट, प्राणनाथ आदि भी इन्हें जन्मान्ध ही बताते हैं। प्रभुदयाल मीतल ने अपने 'सूर निर्णय' नामक ग्रंथ में भी कुछ पद खोज कर उद्धृत किए हैं, जिनसे इनके जन्म से ही अंधे होने का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। अतः सूर के जन्म से अंधे होने वाली बात पर अधिक विश्वास किया जा सकता है, क्योंकि बाद में अंधे होने के विषय में काव्य के अनेक तथ्यों का आधार लेकर जो अनुमान लगाया जाता है, वह प्रमाणों से अपुष्ट है।

प्रारंभिक जीवन एवं गुरु दीक्षा

कहा जाता है कि सूरदास 6 वर्ष की आयु में ही घर त्यागकर चले गए थे और गाँव के बाहर जाकर एक कुटी में रहने लगे थे। जनश्रुति है कि इन्होंने उस अल्प आयु में ही अपने पिता की खोई हुई मुहरों का पता बतला दिया था, जिससे इस विषय में इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। कुछ दिनों के बाद ये मथुरा चले गए और वहाँ गऊघाट पर रहने लगे। सन 1510 ई. के आसपास वहीं उन्हें श्री वल्लभाचार्य का दर्शन हुआ। आचार्य ने जब इनसे कुछ पद सुनाने की इच्छा प्रकट की तो इन्होंने निम्न दो पद सुनाए -

1. प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।
   और पतित सब दिवस चारि के हौं तो जनमत ही कौ॥
2. मो सम कौन कुटिल खल कामी।
   जेहि तनु दियो ताहि विसरायौ ऐसौ नमकहरामी॥

इन पदों को सुनकर वल्लभचार्य बहुत प्रभावित हुए, किंतु उन्हें दैन्य की ये भावनाएँ रुचिकर नहीं लगीं। उन्होंने आदेश दिया कि "सूर है कै ऐसो काहे को घिघियात है, कछु भगवत्लीला वर्णन करि।" उन्होंने इसके पश्चात सूर को पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण लीला से अवगत कराया।

दीक्षा के पश्चात

वल्लभाचार्य सूर को अपने साथ गोकुल ले गए और वहाँ इन्हें नवनीत-प्रिय श्रीकृष्ण के दर्शन कराए। यहाँ सूर ने 'सोभित कर नवनीत लिए' जैसे पद गाए। यहीं पर आचार्य जी ने भागवत् की सारी लीलाएँ सूर के हृदय में स्थापित कर दीं। कुछ दिन यहाँ रहने के पश्चात्

आचार्य जी सूर को ब्रज ले गए और वहाँ गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ जी के दर्शन कराए। यहाँ भी सूर ने उन्हें कुछ पद सुनाए।

आचार्य जी ने प्रसन्न होकर सूर को इस मंदिर का कीर्तन भार सौंप दिया। यहाँ सूर ने श्रीनाथ जी का कीर्तन करते हुए सहस्त्रों पदों की रचना की। अब इनकी प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई। तत्कालीन महान मुगल शासक अकबर ने भी इनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। कहा जाता है कि सूर अकबर से मिले और इन्होंने कई पद सुनाए।

वल्लभाचार्य के निधन के पश्चात् पुष्टि संप्रदाय का आचार्यत्व गोस्वामी विट्ठलनाथ ने ग्रहण किया। 1565 ई. में इन्होंने अपने संप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवियों के समूह 'अष्टछाप' की स्थापना की। इन आठों में सूरदास जी का स्थान ही सर्वोच्च था।

अष्टछाप के अन्य कवि हैं- कुंभनदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास।

निधन

सूरदास का निधन-संवत भी अत्यधिक विवाद ग्रस्त है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल सूर का जन्म सं.1540 (1483 ई.) में मानकर अनुमान से निधन-संवत 1620 (1563 ई.) ठहराते हैं। मुंशीराम शर्मा कुछ प्रमाणों के आधार पर इनका संवत 1628 तक जीवित रहना मानते हैं। अन्य विद्वानों ने उन्हें संवत 1640 (1583 ई.) तक जीवित माना है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि वे 'खंजन नैन रूप रस माते' पद की समाप्ति पर नश्वर शरीर को त्यागकर चले गए। उनका निधन पारसौली ग्राम में हुआ, जो गोवर्द्धन के निकट है। वहाँ सूरदास की समाधि स्थित है।

बोध प्रश्न

4. सूरदास के गुरु कौन थे? उन्हें अष्टछाप में किसने स्थान दिया?
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूर का जन्म और निधन किन वर्षों में माना है?

5.3.2 सूरदास की रचनाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने सूर संबंधी जो खोज की, उसके अनुसार सूरदास द्वारा रचित 16 रचनाएँ बताई जाती हैं। इन रचनाओं के नाम इस प्रकार है -

1. सूरसागर,	2. सूर सारावली,	3. साहित्य लहरी
4. गोवर्धन लीला,	5. दशम स्कंध टीका,	6. नागलीला
7. पद संग्रह,	8. प्राण प्यारी,	9. व्याहलो
10. भगवत भाषा,	11. स्फुट पद,	12. सूरसागर
13. एकादशी माहात्म्य,	14. नल दमयन्ती।	

इनमें से सूरदास के तीन ग्रंथ प्रसिद्ध और उपलब्ध हैं - सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी। ऐसा माना जाता है कि - 'सूरसागर' सवा लाख पदों का संग्रह था, पर अभी तक खोज से लगभग पाँच हजार पद प्राप्त हुए हैं। 'सूर सारावली' में छंदों की संख्या ग्यारह सौ सात हैं और 'साहित्य लहरी' में एक सौ अठारह पद पाए जाते हैं। 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्रतियों में से कुछ ही प्रतियाँ ऐसी हैं, जिनमें कठिनाई से 4 हजार पद होंगे।

जगन्नाथ दास रत्नाकर ने 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्रतियों का संकलन करके नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में समुचित संपादन करके प्रकाशित कराने का आयोजन किया था। रत्नाकर ने अपना परिश्रम पदों के अधिकाधिक संग्रह में ही लगाया। इनकी प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता की ओर इन्होंने अपना ध्यान नहीं दिया। थोड़ा सा ही अंश प्रकाशित हुआ था कि दुर्भाग्यवश वे संसार से चल बसे। इसके पश्चात आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने उनके कार्य को पूरा किया और 724 पृष्ठों की दो जिल्दों में 'सूरसागर' के 4936 पदों का वृहत ग्रंथ प्रकाशित किया।

5.3.3 रचनाओं का परिचय

1. सूरसागर : सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना 'सूरसागर' है। इसी एक रचना के कारण सूरदास को हिंदी साहित्य में बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। 'सूरसागर' के संबंध में यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि 'सूरसागर' कीर्तन के लिए रचे हुए प्रसंगहीन स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा का यह कथन इस विषय में विचारणीय है कि 'सूरसागर' में एक क्रमबद्ध प्रबंध काव्य जैसे गठन का अभाव होते हुए भी, उसके अंग रूप अनेक प्रसंग अत्यंत सुगठित और अप्रतिहत लघु प्रबंधों के रूप में रचे मिलते हैं। वस्तुतः यह श्रीमद्भागवत के आधार पर रचित काव्य है।

'सूरसागर' का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्य पूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है, जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य कहीं और नहीं मिलता। उद्धव अपने निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योगकथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरक्त करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी अपनी विवशता, तो कभी दीनता द्वारा खूब मजा छकाती हैं। सूर की गोपियों की वाक् पटुता यहाँ द्रष्टव्य है-

1. उर में माखन चोर गड़े।
   अब कैसेहुं निसकत नाहिं, ऊधौ तिरछे है अड़े॥
2. हरि काहे के अन्तर्यामी।
   जे हरि मिलत नहीं यह अवसर, अवधि बतावत लामी॥

'सूरसागर' में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन अनेक पदों में प्राप्त होता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार सूरदास को जब श्री वल्लभाचार्य ने दीक्षित किया था, तो उन्होंने

कृष्ण की बाल लीलाओं पर ही सूर का ध्यान अकृष्ट कराया था। सूरदास बाल मनोविज्ञान के महान परखी थे। उनकी रचना में बाल स्वभाव की एक भी बात नहीं छूट पाई है। बाल मनोविज्ञान के अद्‌भुत ज्ञान ने वात्सल्य रस के वर्णन में उनकी बहुत सहायता की है।

महात्मा सूरदास ने श्रीकृष्ण के बाल वर्णन के अंतर्गत उनका रूप वर्णन भी किया है। सूरदास न कृष्ण के कई रूपों का वर्णन करते हुए, ऐसी उपमाएँ दी हैं कि पाठक के नेत्रों के सम्मुख कृष्ण के रूप सौंदर्य का चित्र साकार आ जाता है। कृष्ण ने सुंदर वस्त्र-आभूषण धारण किए हुए हैं। उन्हें देखकर यशोदा के ह्रदय में सुख का सागर हिलोरें मारता है-

आँगन स्याम नचावहिं, जसुमति नंदरानी।
तारी दै-दै गाँवहिं, मधुर मृदु बानी॥
पायन नुपुर बाजई, कटि किंकिनी कूजे।
नन्हीं एड़ियन अरुनता, फल बिंब न पूजै॥

सूरदास बाल मनोविज्ञान के पंड़ित कहे जाते हैं। बाल लीलाओं का अद्वितीय वर्णन सूर ने किया है। बालकृष्ण को नींद नहीं आ रही, यशोदा लोरी गाकर बालकृष्ण को सुलाने का प्रयास कर रही है-

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोई सोई कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावै॥

वही बाल कृष्ण को नींद नहीं आ रही और वे पलक झपका रहे हैं-

कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं,
कबहुं अधर फरकावै॥

प्रिय छात्रो! सूरसागर के एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंश के रूप में 'भ्रमर गीत' का उल्लेख आवश्यक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भ्रमर गीत संबंधी सूर के पदों का 'भ्रमर गीत सार' नाम से संग्रह किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके आरंभिक वक्तव्य में यह सूचित किया है कि 'भ्रमर गीत' सूरसागर के भीतर का एक सार रत्न है। समग्र सूरसागर के इस अंग को उन्होंने सूर के ह्रदय से निकली हुई अपूर्व रसधारा माना है।

'भ्रमर गीत' का प्रसंग कृष्णकथा में अत्यंत रोचक है। कृष्ण जब गोकुल से मथुरा चले गए, तो राजकाज की व्यस्तताओं के कारण वे कभी फिर गोकुल लौट कर नहीं आ सके। इसके बावजूद वे कभी न तो ब्रज को भूल सके, न ब्रजवासियों को। मथुरा में उनके एक अभिन्न मित्र थे उद्धव। उद्धव कृष्ण जैसे ही रूप स्वरूप वाले थे लेकिन उनकी आस्था निर्गुण ब्रह्म और योग मार्ग में थी। कृष्ण चाहते थे कि उद्धव भक्ति मार्ग और प्रेम का अनुभव प्राप्त करें। इसलिए उन्होंने उद्धव को अपने दूत के रूप में गोकुल भेजा। उद्धव ने गोकुल पहुँचकर गोपियों को निर्गुण भक्ति और योग

मार्ग का उपदेश दिया। गोपियों पर उनके इस उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि वे कृष्ण के प्रेम में डूबी हुई थीं। वे उद्धव को सीधे-सीधे यह उपदेश देने से मना नहीं कर सकती थी, क्योंकि वे उनके अतिथि थे और कृष्ण के सखा भी, इसलिए उन्होंने संयोगवश वहाँ आ गए एक भ्रमर को संबोधित करके अपनी बातें कही। इसीलिए इस प्रसंग को 'भ्रमर गीत' कहा जाता है। प्रेम योगिनी गोपिकाओं ने भँवरे के माध्यम से ऐसे ऐसे प्रश्न उद्धव से किए कि वे निरुत्तर रह गए, जैसे –

निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति सांच न हांसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो सौ, सूर सबै मति नासी॥

इस प्रकार सूरदास ने बड़े सहज ढंग से 'निर्गुण' पर 'सगुण' की विजय दर्शाई है। कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम को देख कर उद्धव पूरी तरह प्रेमाभक्ति के रंग में रंग जाते हैं। इसीलिए मथुरा लौटने पर वे स्वयं कृष्ण से यह कहते हैं कि -

कहां लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसें दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृसगात।
परमदीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गन बिनु पात॥
जो कहुं आवत देखि दूरि तें पूंछत सब कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं मग जात॥

2. सूर सारावली : सूर सारावली की कोई भी हस्तलिखित प्रति आज तक प्राप्त नहीं हुई है। इसकी रचना का उल्लेख न तो 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में ही कहीं दिखाई देता है और न 'भाव प्रकाश' में श्री हरिराय जी ने इसका कोई संकेत दिया है। वेंकटेश्वर प्रेस से 'सूरसागर' का जो संस्करण निकला था, उसके साथ ही यह रचना संलग्न मिलती हैं। यह किस हस्तलिखित प्रति के आधार पर छापी गई है, इसका कोई पता नहीं चलता। इसका पूरा नाम इस प्रकार छपा है- श्री सूरदास जी द्वारा रचित 'सूरसागर', 'सारावली' तथा सवा लाख पदों का सूची पत्र। इसके अतिरिक्त इसकी भाषा एवं शैली और विचारधारा में भी 'सूरसागर' से पर्याप्त भिन्नता है। काव्य की दृष्टि से भी इस रचना का कोई मूल्य नहीं दिखाई देता है। आरंभ में तो 'सूरसागर' के प्रारंभ

का एक गेय पद है। शेष सारी रचना सार और सरसी दो छंदों में हुई हैं। इन दोनों छंदों के हिसाब से इसमें कुल 1107 छंद हैं।

3. साहित्य लहरीः सूरदास का तीसरा प्रमुख ग्रंथ 'साहित्य लहरी' है। इसका विषय 'सूरसागर' से कुछ भिन्न दिखाई देता हैं। इसके विषय में भी कोई तारतम्य दिखाई नहीं देता। इसमें कृष्ण की बाललीलाओं से संबंधित पद भी हैं और नायिका भेद के रूप में राधा के मान आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसमें संयोगिनी विलासवती स्त्री का वर्णन है और वियोगिनी प्रोषितपतिका का भी। इसमें स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्रौढ़ा, धीरा, विदग्धा आदि सभी प्रकार की नायिकाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अनेक अंलकारों का भी उल्लेख मिलता है। 'साहित्य लहरी' के दो उदाहरण देखें-

1. सारंग समकर नीक नीक सम, सारंग सरस बखाने।
   सारंग बस भय, भय बस सारंग, सारंग विषमै माने॥
2. जब तें हौं हरि रूप निहारौ।
   तब ते कहा कहूँ री सजनी, लागत जग अँधियारो॥

अन्य ग्रंथ

जैसा कि पहले भी बताया ज्ञाया है, उपर्युक्त तीन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाएँ भी सूरदास की कही जाती हैं। परंतु उनके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं।

5.3.4 हिंदी साहित्य में महत्व

हिंदी साहित्य में सूरदास का स्थान अद्वितीय है। भक्तिकाल के यश्स्वी कवि सूरदास का साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। उनके काव्य में भक्ति भावना की अधिकता है और इनकी भक्ति सखा भाव की है। कृष्ण के वे अनन्य भक्त थे। उनके हृदय के विविध भाव उनके काव्य में प्रतिबिंबित हुए हैं।

सूरदास ने कृष्ण की सूक्ष्म से सूक्ष्म बाल लीलाओं तथा प्रेम क्रीड़ाओं का बड़ी बारीकी से वर्णन किया है, जिन्हें पढ़ने के बाद स्वाभाविक रूप से आम जन के हृदय में भक्ति भावना उत्पन्न हो जाती है। ब्रज भाषा में रचे गए काव्य सहज, मधुर और प्रभावोत्पादक हैं। इनके काव्य के पदों को गाया जा सकता है और इनमें भावुकता एवं संगीत है। इनके पदों में संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्द भी हैं। सूरदास को बाल्यवस्था का वर्णन करने में महारत हासिल है। उनकी वाणी वात्सल्य वर्णन खुले शब्दों में करती है। यह कहना गलत न होगा कि सूरदास के काव्य में भगवान कृष्ण की बाल्यावस्था का वर्णन बहुत कुशलता से किया गया है।

सूरदास के काव्य में शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों ही रूप मिलते हैं। राधा-कृष्ण के मिलन, वियोग आदि का सूरदास ने बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। सूरदास ने 'भ्रमरगीत' के माध्यम से निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन किया है। सूरदास को वात्सल्य

रस का सम्राट कहा जाता है। सूरदास हिंदी साहित्याकाश के सूर्य हैं। उनके लिए यह कथन सर्वथा उपयुक्त है-

सूर सूर तुलसी शशि, उडुगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

बोध प्रश्न

6. नागरी प्रचारिणी सभा के अनुसार सूरदास की कुल कितनी रचनाएँ हैं?
7. 'सूरसागर' के कितने पदों का अनुमान लगाया जाता है, अभी तक खोज से कितने पद प्राप्त हुए हैं?
8. नंददुलारे वाजपेयी ने 'सूरसागर' को कितने पृष्ठों और पदों में प्रकाशित किया?
9. 'सूर सारावली' में छंदों की संख्या कितनी है?
10. 'साहित्य लहरी' में कितने पद पाए जाते हैं?
11. सूरदास की भक्ति भावना किस प्रकार की है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! 'कृष्ण भक्ति का जहाज' माने गए सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार करते समय यह बुनियादी सवाल किसी भी साहित्य प्रेमी को परेशान करता है कि सूरदास जन्म से अंधे थे या बाद में किसी कारण अंधे हुए। आम तौर से उन्हें जन्म से अंधा माना जाता है। लेकिन बड़े-बड़े आचार्यों के लिए भी यह तथ्य अचरजकारी रहा है कि यदि सूरदास जन्म से अंधे थे तो उनके प्रकृति वर्णन से लेकर कृष्ण की बाल लीलाओं तक के वर्णन इतने रंगारंग चित्रों से भरे हुए कैसे बन सके हैं कि पूरा दृश्य पाठक की आँखों के सामने सजीव हो उठता है।

इसका साधारण सा उत्तर हो सकता है कि सूरदास उम्र के किसी पड़ाव पर बाद में अंधे हुए होंगे, जन्म से नहीं। ऐसी कहानियाँ भी मिलती हैं कि उन्होंने किसी स्त्री के प्रेम में पड़कर धोखा खाया और खुद अपनी आँखें फोड़ ली। लेकिन यह कहानी सूरदास की नहीं, बिल्वमंगल की है, ऐसा भी माना जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -

> "यदि अनुश्रुतियों को प्रामाणिक माना जाए, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके अंग-प्रत्यंग से लावण्य की छटा छिटकती रहती थी। विधाता ने सब कुछ दिया था, सिर्फ आँखें नहीं दी थीं। अनुश्रुतियों की वह कहानी भी बहुत अधिक प्रसिद्ध है कि इस प्रकार किसी तरुणी के रूप से आकृष्ट होकर उन्होंने उसका अनुसरण किया और बाद में अपनी आँखें फोड़ या फुड़वा लीं। सूर होने के बाद वे दीर्घकाल तक भगवान को लेकर कातर भाव से पुकारते रहे, उस समय के उनके भजनों में दैन्य का स्वर है और आत्मग्लानि की पीड़ा है।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 103)

आम तौर पर यह मत अधिक प्रचलित है कि सूरदास जन्म से अंधे थे। लेकिन उनकी आंतरिक शक्तियाँ अत्यंत प्रबल थीं। इनके बल पर वे किसी भी सुनी हुई बात का अंतर्ज्ञान द्वारा

प्रत्यक्षीकरण कर सकते थे। इसीलिए उन्हें 'प्रज्ञाचक्षु' भी कहा जाता है। अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो आँखें न होते हुए भी अपनी प्रज्ञा द्वारा सब कुछ देख सकता हो। यह भी माना जाता है कि जब मथुरा में गऊ घाट पर आचार्य वल्लभ से उनकी भेंट हुई, उस समय तक वे अपने अंधत्व के कारण 'सूरदास' के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। इसीलिए आचार्य वल्लभ ने कहा था - 'सूर' होकर इस तरह घिघियाते क्यों हो? कुछ हरिलीला का वर्णन करो न!

कहने की जरूरत नहीं है कि यहाँ 'सूर' के कई अर्थ हैं - 1. अंधा परंतु प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति, 2. शूर अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति और 3. सूर्य अर्थात् तेजस्वी व्यक्ति। आचार्य वल्लभ ने सूरदास की प्रतिभा को पहचाना और उन्हें भागवत् का उपदेश दिया। अपनी प्रज्ञाचक्षु शक्ति के आधार पर सूर उसे चित्रों के रूप में ग्रहण करते गए होंगे। बाद में ये ही चित्र उन्होंने अपनी कविता में इस तरह उकेरे कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल को यह कहना पड़ा -

> "जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। इन दोनों क्षेत्रों में तो इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 116)।

इसके बावजूद अनेक विद्वान यह मानने को तैयार नहीं हैं कि 'सूरसागर' में वर्णित अत्यंत सजीव कृष्ण लीला की रचना करने वाला व्यक्ति जन्मांध हो सकता है। रोचक बात यह है कि वे स्वयं सूरदास की रचनाओं में प्राप्त जन्मांध होने के उल्लेख को अभिधा में ग्रहण करने के पक्ष में नहीं हैं। सूरदास भले ही कहते हों कि परमात्मा ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है कि जन्म से ही मुझे नेत्रहीन बनाया। लेकिन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे स्वीकार नहीं कर पाते। उनकी मान्यता है कि-

> "सूरसागर के भीतरी प्रयोगों को देखकर भी कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि ये जन्म के अंधे थे। श्री हरिराय के भावप्रकाश तथा श्रीनाथ भट्ट की संस्कृतवार्ता मणिमाला के अनुसार भी ये जन्मांध थे। परंतु सूरदास के प्राकृतिक शोभा और रूप-वर्णन को देखकर अधिकांश विद्वान यह नहीं मानना चाहते कि वे जन्मांध थे। सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए। यह मानसिक ग्लानि की अवस्था में कही गई बात है, जिसमें अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति काम करती रहती है। ... सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 102-103)।

आचार्य द्विवेदी की स्थापना तर्क पर आधारित होते हुए भी इस लोक परंपरा के अनुकूल नहीं है कि आम तौर से 'सूरदास' उसी व्यक्ति को कहा जाता है जो जन्म से अंधा हो। स्वयं सूरदास भी एकाधिक स्थानों पर यह कहते हैं कि मैं भाग्यवश जन्मांध हूँ। यथा -

1. सूरदास सों बहुत निठुरता नैननि हू की हानि।
2. नाथ मोहि अब की बेर उबारो।

करमहीन जनम को आँधो, मोते कौन न कारो।

अतः सूरदास को जन्म से अंधा मानना ही उचित लगता है।

यहाँ एक बात का उल्लेख जरूरी है। वह यह कि सूरदास अपने समय में इतने लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गए थे कि उनकी ख्याति सम्राट अकबर के कानों तक भी पहुँच गई थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से पता चलता है कि दिल्ली से आगरा जाते समय अकबर ने सूरदास से भेंट की थी। माना यह जाता है कि अपने नवरत्न एवं प्रसिद्ध गायक तानसेन से सूरदास का कोई पद सुनकर सम्राट अकबर इतने भाव विभोर हो उठे कि सूरदास के दर्शन की इच्छा बलवती हो गई। इस बारे में डॉ. हरवंश लाल शर्मा यह मानते हैं कि 1679 ई. में अजमेर यात्रा में फतेहपुर सीकरी से लौटते हुए रास्ते में अकबर ने मथुरा में संत कवि सूरदास से मुलाकात की थी। यह घटना सूरदास की अपार लोकप्रियता की सूचक है जो उन्होंने जीते जी अर्जित कर ली थी।

5.4 पाठ-सार

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आपने सूरदास के जीवन से संबंधित जानकारी प्राप्त की है। वल्लभाचार्य की प्रेरणा से सूर ने दास्य भाव की भक्ति को त्यागकर वात्सल्य भाव की भक्ति में काव्य रचना की। सूरदास को वात्सल्य रस का सम्राट कहा जाता है। सूरदास ने बाल मनोविज्ञान का अद्भुत चित्रण किया है। सूरदास का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ 'सूरसागर' है। सूरदास ने कृष्ण के बाल रूप का चित्रण किया है कि एक बालक किस तरह अपने दोस्तों से खेल में हार जाने के बाद रूठ जाता है। सूरदास अपनी बंद आँखों से वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए हैं। उन्होंने भ्रमरगीत के माध्यम से सगुण का मंडन एवं निर्गुण का खंडन किया है। सूर की गोपियाँ वाक् पटु हैं। उन्होंने उद्धव जैसे ज्ञानी को भी अपने तर्कों से मौन कर दिया था।

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं:

1. सूरदास हिंदी साहित्य के मध्यकाल में कृष्णभक्ति काव्यधारा के सर्वश्रेठ कवि हैं।
2. सूरदास के जन्मस्थान और जन्म काल के संबंध में एक से अधिक मत प्रचलित हैं। अतः निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।
3. एक मान्यता यह है कि सूरदास जन्म से अंधे थे। लेकिन कुछ विद्वान उनके काव्य में रंगों से लेकर क्रियाकलाप तक के सजीव चित्रण को देख कर यह भी मानते हैं कि वे बाद में अंधे हुए थे।
4. आरंभ में सूरदास विनय और दास्य भाव के पदों की रचना करते थे, लेकिन बाद में गुरु वल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण लीला के वर्णन की प्रेरणा दी।

5. सूरदास ने 'सूरसागर' नामक विशाल ग्रंथ की रचना की। परंतु उनके यश का आधार कृष्ण की बाल लीलाओं और भ्रमर गीत के पद हैं।
6. सूरदास का स्थान अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध आठ कृष्ण भक्तों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

5.6 शब्द संपदा

1. साक्ष्य = प्रमाण, गवाही
2. खंजन नयन = खंजन पक्षी के समान नेत्र
3. खद्योत = जुगनू
4. निंदरिया = नींद
5. निकसत नाहीं = निकलते नहीं
6. निहारौ = प्रेम से देखना
7. नुपुर = घुंघरू
8. मनोहरिणी = मन को हरने वाली
9. मल्हावै = लोरी गाना
10. वचन वक्रता = वक्रोक्ति, इशारों-इशारों में कहना, व्यंग्य
11. हरण = चुराना

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. सूरदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए?
2. सूर की मुख्य रचनाओं का परिचय दीजिए?
3. सूरदास के वात्सल्य वर्णन पर सोदाहरण चर्चा कीजिए?

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. सूर के अंधत्व पर विचार कीजिए?
2. सूरदास के कृतित्व का परिचय दीजिए?
3. हिंदी साहित्य में सूरदास का स्थान निर्धारित कीजिए?
4. 'सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्य पूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. सूरदास का जन्म किस गाँव में हुआ था? ( )
   (अ) सीही (आ) सोरों
   (इ) अयोध्या (ई) मथुरा

2. सूरदास के गुरु का नाम क्या है? ( )
   (अ) शंकराचार्य (आ) चैतन्य महाप्रभु
   (इ) रामानुजाचार्य (ई) वल्लभाचार्य

3. सूरदास किस काव्यधारा के कवि हैं? ( )
   (अ) निर्गुण भक्ति (आ) कृष्ण भक्ति
   (इ) शैव भक्ति (ई) रामभक्ति

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. सूरदास का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ ....है।
2. अष्टछाप की स्थापना ....ने की थी।
3. साहित्य लहरी के रचनाकार............ हैं।
4. सूरदास की भाषा...............थी।
5. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सूरदास की मृत्यु सन् ....में हुई थी।

III सुमेल कीजिए।

1. उद्धव	(अ) सगुण का खंडन
2. अष्टछाप	(आ) वात्सल्य वर्णन

3. भ्रमरगीत (इ) कृष्ण के मित्र

4. बाल लीला (ई) 8 कृष्णभक्त कवि

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य की भूमिका, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी.

2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल.

3. भ्रमरगीर, सूरदास.

4. सूरसागर, सूरदास.

इकाई 6 : विनय

रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मूल पाठ : विनय
    (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
    (ख) अध्येय कविता
    (ग) विस्तृत व्याख्या
    (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
6.4 पाठ सार
6.5 पाठ की उपलब्धियाँ
6.6 शब्द संपदा
6.7 परीक्षार्थ प्रश्न
6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

सूरदास के नाम से कौन परिचित नहीं है? महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जिस कृष्ण भक्ति का प्रचार किया उससे विशाल जन समुदाय तो प्रभावित हुआ ही, अनेक कवि भी प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए। उन्हीं की प्रेरणा से सूरदास ने भगवान के सगुण रूप का गान किया था। वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य ने जिस दार्शनिक मत को अपनाया था, वह 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है। इनके मार्ग को 'पुष्टिमार्ग' भी कहा जाता है। पुष्टि का अर्थ है 'पोषण'। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग को माननेवाले आठ कवियों को 'अष्टसखा' या अष्टछाप के नाम से जाना जाता है। वे हैं - सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंद स्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। इनमें पहले चार वल्लभाचार्य और अंतिम चार कवि विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इन अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है।

सूरदास का जन्म 1478 ई. में हुआ तथा 1583 ई. में देहावसान। वे जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए इस विषय में विवाद है, क्योंकि जब हम उनकी रचनाओं को पढ़ते हैं, उनके द्वारा किए गए बाल वर्णन, वात्सल्य वर्णन, प्रकृति वर्णन, रास लीला वर्णन आदि को देखते हैं तो यह विश्वास करना मुश्किल तो हो ही जाता है कि वे जन्म से ही अंधे थे और बिना अनुभव के ही उन्होंने कृष्ण लीलाओं का इतना सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। 'साहित्य लहरी' के एक पद में सूर ने यह स्वीकार किया कि वे पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंदबरदाई के वंशज थे। इस कुल के हरिचंद के सात पुत्रों में सबसे छोटे थे सूरजदास या सूरदास। सूरदास के तीन ग्रंथों का प्रमाण

मिलता है- सूरसागर, साहित्य लहरी और सूरसारावली। सूरसागर का ही एक खंड है 'भ्रमरगीत' जिसका हिंदी साहित्य में विशेष महत्व है।

6.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अंतर्गत आप महाकवि सूरदास के 'विनय के पदों' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- सूरदास की कृष्णभक्ति की प्रगाढ़ता को समझ सकेंगे।
- सूरदास की मान्यता रही कि भगवान के अनुग्रह से ही मनुष्य को सद्गति मिलती है। इससे परिचित हो सकेंगे।
- सूरदास की शुद्ध ब्रजभाषा को समझने और पढ़ने का अवसर प्राप्त करेंगे।

6.3 मूल पाठ : विनय

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

प्रिय छात्रो! सूरदास को हिंदी साहित्याकाश का 'सूर्य' माना जाता है, क्योंकि अपने आराध्य देव, अपने परम मित्र कृष्ण को लेकर जो कुछ उन्होंने लिखा बहुत तल्लीन होकर लिखा। प्रस्तुत इकाई में आप विनय के दो पदों का अध्ययन करेंगे। कवि ने प्रभु के चरणों की वंदना करते हुए इसका सूक्ष्म चित्रण किया है कि कृष्ण की कृपा प्राप्त हो जाने पर दुर्बल व्यक्ति सबल और निर्धन व्यक्ति धनी बन जाने की क्षमता पा जाता है। केवल धनी ही नहीं वह तो राजा के समान सर पर छाता लगाकर चलने भी लगता है। यह अपने आप में प्रभावशाली वर्णन है। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि कृष्ण की कृपा के सामने राजसत्ता भी तुच्छ दिखने लगती है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है- 'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं वज्र' अर्थात् जो भक्त मेरे ऊपर विश्वास रखकर अपना सर्वस्व मुझे सौंप देता है वही मेरी शरण पाता है। छात्रो! जब आप सूरदास के दूसरे पद का अध्ययन करेंगे तो आप पाएँगे कि सूरदास भी ऐसे ही भक्त कवि थे जिन्होंने अपनी तुलना 'जहाज के पक्षी' के साथ यूँ ही नहीं की थी, यह उनकी भक्ति की चरम पराकाष्ठा ही थी। उन्होंने कृष्ण को सखा रूप में भी देखा था परंतु मित्रता में भी वे अपनी सीमा को कभी नहीं भूले क्योंकि कृष्ण के सामने तो सूर स्वयं को दीन-हीन ही पाते थे।

प्रस्तुत इकाई के पद सुनने और पढ़ने में मधुर हैं। जगह-जगह पर कवि सूरदास ने अपनी कल्पनाशक्ति एवं रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अंलकारों के द्वारा कृष्ण महिमा का जो सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है वह अपने आप में अनोखा है।

(ख) अध्येय कविता

[1]

चरण कमल बन्दौं हरि राई।
जाकि कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्हरन को सब किछु दरसाई।।
बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रंग चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बन्दौं तोहि पाई।।

[2]

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, पुनि जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौं, दुरमति कूप खनावै।।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

> **निर्देश :** 1) इन पंक्तियों का सस्वर वाचन कीजिए।
> 2) इन पंक्तियों का मौन वाचन कीजिए और अर्थ को समझइए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

चरण कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्हरन के सब किछु दरसाई॥

शब्दार्थ : चरण = पैर। कमल = कमल का फूल/पंकज। बंदौ = वंदना। हरि राई = भगवान की/कृष्ण की। जाकी = जिसकी। कृपा = महिमा। पंगु = लंगड़ा। गिरि = पर्वत/पहाड़। लंघै = लाँघना। अन्हरन = अंधा। सब किछु = सब कुछ। दरसाई = दिखना।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश के रचयिता सूरदास हैं। सूर की कृष्ण भक्ति यों तो 'सख्य भाव' की है। लेकिन इस पद का संबंध 'विनय भक्ति' से है। सूरदास को हिंदी साहित्याकाश का 'सूर्य' माना जाता है। सूरदास का जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं - सूर सागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश में भक्त कवि सूरदास विनय भाव से अपने आराध्य श्रीकृष्ण के चरणों की वंदना कर रहे हैं।

व्याख्या : सूरदास हरि अर्थात् कृष्ण के चरणों की वंदना करते हुए कहते हैं कि मैं तो कृष्ण के कमल के समान सुंदर चरणों की वंदना करके स्वयं को धन्य समझता हूँ। इन चरणों की कृपा

पाकर लंगड़ा व्यक्ति पर्वत को लाँघने की शक्ति पा जाता है और अंधे व्यक्ति के नेत्रों की ज्योति वापस आ जाती है। अर्थात् वह इस संसार की सुंदरता को देखने की शक्ति पा जाता है।

विशेषता : इस पद में चरणों को कमल के समान न बताकर उन्हें कमल ही कहा गया है अर्थात् चरण और कमल में एकरूपता है। इसलिए इस पद में 'रूपक' अलंकार है। प्रस्तुत पद के साथ संस्कृत के निम्न पद की समानता है-

'मूकं करोति वाचालम् पंगुम् लंघै यते गिरिम्।
यत् कृपा तमहम् वन्दै परमानन्द माधवम्।।'

बोध प्रश्न

1. सूरदास किसकी वंदना कर रहे हैं?
2. किसकी कृपा मिलने पर लंगड़ा व्यक्ति पर्वत लाँघने की शक्ति पा जाता है?
3. प्रस्तुत पद में किन दो वस्तुओं के बीच में समानता है?
4. प्रस्तुत पद में रूपक अलंकार क्यों है?

बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बन्दौं तोहि पाई॥

शब्दार्थ : बहिरौ = बहरा/जो सुन नहीं सकता। मूक = गूँगा/जो बोल नहीं सकता। पुनि = फिर से। रंक = निर्धन। सिर = सर। छत्र = छाता। धराई = लगाकर। करुनामय = करुणा के सागर/दयालु। बन्दौ = वंदना कर रहा हूँ। तोहि = तुमको। पाई = पा सकूँ।

संदर्भ : ये पंक्तियाँ सूरदास के द्वारा रचित हैं। सूरदास का जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। सूरदास की तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद का संबंध विनय भक्ति से है। हरि यानी कृष्ण के चरणों की कृपा प्राप्त हो जाने पर असंभव कार्य भी संभव होने लगता है। यही प्रस्तुत पद का मुख्य विषय है।

व्याख्या : सूरदास कृष्ण के चरण कमलों की वंदना करते हुए कहते हैं कि इन चरण कमलों की कृपा प्राप्त हो जाने पर बहरा व्यक्ति पुनः सुनने लगता है, गूँगा व्यक्ति बोलने लग जाता है और गरीब राजा के समान सर पर छत्र धरकर चलने का सामर्थ्य पा जाता है। सूरदास कहते हैं कि 'मेरे स्वामी करुणा के सागर हैं। मैं चाहता हूँ बार-बार उनकी वंदना करने का अवसर मुझे मिलता रहे।'

विशेषता : सूरदास ने प्रस्तुत पद में अपने स्वामी कृष्ण को करुणा के सागर कहा है। कृष्ण चरणों की कृपा दृष्टि मिलने पर असंभव भी संभव बन जाता है। 'रंक चलै सिर छत्र धराई' यह उक्ति अपने आप में अद्‌भुत काव्य संरचना है।

बोध प्रश्न

5. कृष्ण के चरणों की वंदना करने से क्या प्राप्त होगा?
6. सूरदास बार-बार क्या करने का अवसर पाना चाहते हैं?

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, पुनि जहाज पर आवै॥

शब्दार्थ : मेरो = मेरा। अनत = दूसरी जगह। पावे = पाएगा। कौ = को। पुनि = फिर से। आवै = आता है।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'विनय के पद' से ली गई हैं। सूरदास का जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। उनकी की प्रमुख रचनाएँ सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी हैं ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विनय भक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। आत्म निवेदन प्रस्तुत पद की विशेषता है।

व्याख्या : सूरदास कृष्ण भक्ति में भाव विभोर होकर कहते हैं। मेरे मन को कहीं शांति नहीं मिलती है और न सुख मिलता है। मेरे मन की दशा जहाज के उस पक्षी के समान है जो सीमाहीन सागर में आश्रय की तलाश में जहाज को छोड़कर उड़ता तो है लेकिन कहीं और आश्रय न पाकर फिर से वापस जहाज में ही उसे वापस आना पड़ता है।

विशेषता : ऊपर दी गई पंक्तियों में कवि ने मन और अनंत सुख के संबंध को उपमेय बनाकर इसकी समानता की कल्पना जहाज पर वापस आने वाले पक्षी के उपमान रूप में की है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। उत्प्रेक्षा अलंकार में अक्सर जैसे, जो, ज्यों, मानो आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

बोध प्रश्न

7. सूरदास ने अपने मन की तुलना किसके साथ की है?
8. प्रस्तुत पद में कौन-सा अलंकार है?

कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।।

शब्दार्थ : कमल नैन = कमल के समान आँखें। कौ = को। छाँड़ि = छोड़कर। महातम = महात्मा। देव = ईश्वर। ध्यावै = ध्यान लगाना। परम गंग = पवित्र गंगा। पियासौ = प्यासा व्यक्ति। दुरमति = मूर्ख व्यक्ति। कूप = कुआँ। खनावै = खोदेगा।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'विनय के पद' से ली गई हैं। सूरदास का जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। उनकी की प्रमुख रचनाएँ सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी हैं।

प्रसंग : कृष्ण कृपा सबके लिए समान है। उसे प्राप्त न कर पानेवाला व्यक्ति किन वस्तुओं को खो देता है, यही प्रस्तुत पद का मूल विषय है।

व्याख्या : कृष्ण भक्ति रस में आप्लावित सूरदास कहते हैं कि कमल नैनों को छोड़कर मेरा मन किसी और देवता का ध्यान लगाने को तैयार होता ही नहीं है। जैसे पवित्र गंगा के जल को छोड़कर अगर कोई प्यासा कुआँ खोदकर पानी पीने को तैयार होता है, तो वह मूर्ख ही कहलाएगा। ठीक वैसे ही जो कमल नैनों के अलावा दूसरी जगह मन लगाता है, वह भी मूर्ख ही कहलाता है।

विशेषता : कृष्ण नयनों को कमल कहा गया है और कृष्ण कृपा की तुलना पवित्र गंगाजल से की गई है।

बोध प्रश्न

9. प्रस्तुत पद का मूल विषय क्या है?

जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

शब्दार्थ : जिहिं = जैसे। मधुकर = भौंरा/भ्रमर। अंबुज = कमल। चाख्यौ = चखना। करील फल = कीकर का फल। भावै = पसंद करेगा। कामधेनु = मोक्ष देनेवाली गाय/स्वर्ग की गाय। तजि = छोड़कर। छेरी = बकरी। दुहावै = दूध निकालना।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'विनय के पद' से ली गई हैं। सूरदास का जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। उनकी की प्रमुख रचनाएँ सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी हैं ।

प्रसंग : कृष्ण कृपा सबके लिए समान है। उसे प्राप्त न कर पानेवाला व्यक्ति किन वस्तुओं को खो देता है, यही प्रस्तुत पद का मूल विषय है।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं जिस भौंरे ने एक बार कमल के मीठे रस (मधु) को चख लिया है उसे कीकर का फल कभी पसंद नहीं आ सकता। सूरदास कहते हैं, मेरे प्रभु मोक्ष दिलानेवाली कामधेनु गाय के समान हैं। उनकी कृपा को छोड़कर बकरी दुहाने कौन जाएगा?

विशेषता : सूरदास ने कृष्ण भक्ति और कृष्ण कृपा की तुलना कमल के मधु और मोक्ष प्रदायिनी कामधेनु गाय के साथ की है।

बोध प्रश्न

10. सूरदास ने कृष्ण भक्ति और कृष्ण कृपा की तुलना किनके साथ की है?
11. 'जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै' का क्या अर्थ है?

काव्यगत विशेषता

श्रीमद्भागवत को सूरदास ने अपनी विनय भक्ति का आधार बनाकर विनय के पदों की रचना की और कृष्ण के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। शांत रस विनय पदों का मूल रस रहा है। उत्प्रेक्षा रूपक अलंकारों का सुंदर प्रयोग उन्होंने अपने पदों में किया है। उनके पदों में अटल भक्ति का प्रबल स्वरूप दिखाई देता है। ब्रजभाषा का सुबोध प्रयोग उन्होंने किया है। सूर के भक्ति के पद बहुत सुंदर और मनोहारी हैं। उन्होंने जितनी सुंदरता के साथ वात्सल्य और प्रेम के पद रचे हैं, उतनी ही सुंदरता और सजीवता उनके विनय के पदों में दिखाई पड़ती है। तुलसी ने भी विनय के पदों की रचना की थी पर उनके पदों में जहाँ गंभीरता अधिक है, वहीं सूर के पदों में सहजता और सरलता दिखाई पड़ती है।

छात्रो! प्रस्तुत इकाई में आप केवल विनय के दो पदों का अध्ययन करेंगे। परंतु सूर का रचना संसार इन दो पदों से भी अधिक विस्तृत है। उन्होंने कृष्ण को केवल पत्थर की मूरत मानकर नहीं पूजा बल्कि कृष्ण तो उनकी रग-रग में समाये हुए थे। संपूर्ण भक्तिकाल में सूरदास कृष्ण काव्यधारा को नेतृत्व प्रदान करते दिखाई पड़ते हैं। ऐसा नहीं है कि सूर से पहले कृष्ण काव्यधारा प्रचलन में नहीं थी। आदिकाल में भी कृष्ण भक्ति दिखाई पड़ती है, फिर भी सूरदास का महत्व अधिक है। क्योंकि, सूरदास ने कृष्ण भक्ति को लोक चेतना के साथ जोड़ा है। साथ ही उन्होंने मनोविज्ञान के साथ भी उसे जोड़ा है। एक माँ अपने बच्चे को लेकर क्या सोचती है? एक प्रेमिका अपने प्रेमी के साथ किस तरह का व्यवहार करेगी? एक मित्र का दूसरे मित्र के प्रति क्या कर्तव्य है? इन सब मनोवैज्ञानिक विषयों को सूर साहित्य में देखा जा सकता है।

इसी के साथ-साथ सूरदास ने ब्रज संस्कृति का जो सजीव चित्र प्रस्तुत किया है वह और कहीं दिखाई नहीं पड़ता है। देखिए, दक्षिण भारत में बैठकर अगर हमें उत्तर भारत की रंगीन होली के रगों को समझना है, तो इसमें हमारी मदद सूरदास की रचनाएँ अवश्य करेंगी क्योंकि सूरदास ने कृष्ण को गोपियों के साथ होली के प्रत्येक लोकाचार को मनाते हुए दिखाया है।

छात्रो! कृष्ण सूरदास के आराध्य हैं। उनके लिए कृष्ण ही सब कुछ हैं। सूरदास ने कृष्ण की वंदना करते हुए कई बार कहा है कि मैं मोह-माया में फँसा एक साधारण इंसान हूँ। मैं बार-बार अपने मूखर्तापूर्ण कार्यों के द्वारा गलती करता हूँ पर मुझे तुम्हारे सहारे की आवश्यकता है क्योंकि तुम शरणागत वत्सल हो अर्थात् अपनी शरण में आए हुए व्यक्ति को सहारा देते हो।

जिसका कोई सहारा नहीं उसका एकमात्र सहारा तुम ही हो। मैं तो उस नाव के समान हूँ जिसको अगर तुम नदी पार नहीं कराओगे तो वह कभी नदी के किनारे तक पहुँच ही नहीं सकेगी, बस नदी में भटकती ही रहेगी। तो देखिए छात्रो! कैसे सूरदास व्याकुलता के साथ ईश्वर की वंदना में लीन हैं। उनकी यही व्याकुलता उनकी विनय भावना को विशेष बनाती है।

सूरदास निराकार और साकार ईश्वर के बीच कोई अंतर नहीं मानते। यह अवश्य है कि निराकार को पाने ज्ञान मार्ग उन्हें दुर्गम प्रतीत होता है। उनका यह मत था कि निराकार ईश्वर ही संसार की भलाई हेतु समय-समय पर साकार रूप लेकर लीला करने संसार में अवतरित होते हैं। ऐसे ही लीलाधारी थे उनके भगवान श्रीकृष्ण, जिनकी आराधना करते हुए सूरदास ने विनय में डूबकर कहा था -

हरि के जन की अति ठकुराई
महाराज, रिषिराज, राजमुनि देखत रहे लजाई।

अर्थात् जिसके ऊपर हरि अर्थात् ईश्वर/ कृष्ण की कृपादृष्टि बनी रहती है उसे फिर किसी और से डरने की चिंता नहीं रहती। वह तो बस चिंतामुक्त होकर जीवन का आनंद लेता है और उसके इस चिंतामुक्त आनंदित जीवन को देखकर बड़े-बड़े राजा, राजमुनि, तपस्वी भी लज्जित होकर उस भक्त को देखते रहते हैं। इसी कारण से सूरदास ने अपने ईश्वर श्रीकृष्ण से विनती की है कि वे उन्हें इन सबसे मुक्त करें। लेकिन वे केवल विनती करनेवाले भक्त नहीं हैं वे स्वयं को सचेत करके चलनेवाले भक्त हैं। उन्होंने बार-बार मन को नियंत्रित होने के लिए कहा है क्योंकि नियंत्रित मन में ही ईश्वर निवास कर सकेंगे और यदि नियंत्रित मन हो तो ईश्वर पर संपूर्ण विश्वास करके भक्त अपना सब कुछ ईश्वर के चरणों में सौंप सकेगा। इसलिए मन का नियंत्रित होना भक्ति की सबसे पहली आवश्यकता है।

बोध प्रश्न

12. जिस व्यक्ति के ऊपर कृष्ण की कृपा दृष्टि होगी उनका जीवन कैसा होगा?
13. सूर के साहित्य में किन मनोवैज्ञानिक तत्वों को देखा जा सकता है?

(च) समीक्षात्मक अध्ययन

प्रिय छात्रो! पहले भी कहा जा चुका है कि भक्त प्रवर सूरदास भक्तिकाल की सगुण धारा के कृष्ण भक्त कवि हैं। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रमुख थे। भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का साधना मार्ग 'पुष्टि मार्ग' के नाम से जाना जाता है। पुष्टि मार्ग में आने से पूर्व सूर पर किसी विशेष संप्रदाय का प्रभाव न था। उनमें ईश्वर भक्ति के प्रति अनन्यता दिखाई देती है। यथा-

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै

जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै।।

इस प्रकार आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति भी उनके काव्य में उपलब्ध होती है। उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में दशम अध्याय के अंतर्गत 'पुष्टि' को परिभाषित करते हुए कहा गया है - पोषणं तदनुग्रहे अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह ही पोषण है। भगवत कृपा से ही भक्त के हृदय में भक्ति जाग उठती है। और वह अपने आराध्य को पाने के लिए बेचैन रहता है। सूर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भक्त की विकलता, अभिलाषा एवं विवशता का सुंदर चित्रण किया है। कृष्ण की कृपा प्राप्त होने पर असंभव भी संभव बन जाता है। इसका सजीव चित्र सूर ने अपने पदों में दर्शाया है। उनकी इस भक्ति गंगा में न केवल वे डूबे हैं बल्कि साहित्य जगत के असंख्य पाठकों को भी उन्होंने डुबोया है।

भज् धातु से बनी भक्ति के विभिन्न रूप है जैसे देश भक्ति, मातृ भक्ति, देव भक्ति आदि। सूरदास ने देव भक्ति को अपनाया था। इस देव भक्ति के भी विभिन्न प्रकार होते हैं जैसे कोई माधुर्य भक्ति को अपनाता है अर्थात् ईश्वर को अपना पति या प्रेमी मान लेता है, कोई निराकार ईश्वर को ज्ञान और योग के द्वारा पाने का प्रयास करता है। सूरदास ने कभी किसी मत का विरोध नहीं किया। यह सूरदास की एक अलग विशेषता है। आरंभ में उन्होंने विनय भक्ति का आश्रय लिया तथा वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर पुष्टि मार्ग अर्थात् प्रेमा भक्ति में लीन हो गए। अपने विनय-पदों में उन्होंने बार-बार यही कहा कि ईश्वर की कृपा तभी प्राप्त होगी जब उसके ऊपर विश्वास करके सब कुछ उसके चरणों में रखने के लिए भक्त तैयार हो जाएगा। इसी मनोभाव के साथ वे कहते हैं -

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल
काम, क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल,
महामोह के नुपूर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ...
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल।।

अर्थात् सूरदास कहते हैं कि माया ने तो मुझे बहुत नचाया और मैं भी काम, क्रोध का वेष धारण कर, गले में लालच की माला पहन, पैरों में मोह की पायल बाँध, परनिंदा के सुरीले शब्दों को स्वीकार कर नाचता रहा; क्योंकि मैं तुच्छ मनुष्य हूँ लेकिन अगर तुम मेरी सहायता नहीं करोगे तो मेरा उद्धार कैसे होगा? सूरदास कहते हैं कि गलती मैंने की अतः उसे सुधारना ही पड़ेगा तुमको नंदलाल। क्योंकि तुम तो शरणागत हो। सबको शरण देनेवाले कृपानिधान हो।

छात्रो, भक्त का मन जब निर्मल होता है तब वह छोटे बच्चे के समान अपने प्रभु से दुलारवश ज़िद भी करने लगता है। उसे लगता है कि यह उसका हक है क्योंकि वह अपने आपको ईश्वर से अलग नहीं मानता। तभी तो सूर ने भी बेझिझक कहा है -

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ सोई पार करौ।।

अर्थात्, मेरे प्रभु मेरी बुराइयों पर ध्यान मत दीजिए। तुम्हारा तो नाम ही समदरसी अर्थात् पक्षपातहीन है तो बस तुम मेरा उद्धार अब कर ही दो। मुझे पता है -

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

तुम सौं कहा छिपी करुणामय सबके अंतरजामी।।

अर्थात्, मेरे समान दुष्ट, बेईमान इस संसार में कोई दूसरा नहीं है, लेकिन इस बात से तुम अनजान नहीं क्योंकि तुम तो सबके मन की बात जान लेनेवाले अन्तर्यामी हो। तो तुम मेरे अवगुणों को जानकर भी मेरा उद्धार करोगे। तुम्हें यह भी पता है कि तुम्हारे बिना मेरा कोई दूसरा उद्धारक नहीं है।

सूर अपने ईश्वर से जिस तरह विनती करते हैं कि वे उनका उद्धार करें, ठीक उसी तरह अपने मन को भी कहते हैं-

रे मन मूरख जनम गँवायौ।

करि अभिमान विषय रस गीध्यौ स्याम सरन नहिं आयौ।।

हे मन! गलती तो तेरी भी है। गिद्ध के समान संसार की सुख-सुविधा के पीछे भागता रहा। श्याम/ कृष्ण की शरण में समय रहते नहीं गया और मनुष्य जन्म को व्यर्थ में गँवाता रहा। इसी कारण से तो ईश्वर की कृपा मिलने में देर हो रही है।

इन पदों को देखने से स्पष्ट होता है कि सूर ने पूर्ण मनोयोग के साथ विनय के पदों की रचना की। सूरदास अपनी विनय भक्ति में बड़ी सीमा तक तुलसीदास के समान शरणागति में विश्वास रखने वाले भक्त प्रतीत होते हैं। कहा जाता है कि एक बार मीराँबाई ने पत्र लिख कर तुलसीदास को अपने आस-पास विद्यमान उन लोगों के बारे में जानकारी दी थी जिनके कारण उनकी कृष्णभक्ति में बाधा पड़ती थी। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए, पूछने पर तुलसी ने उत्तर देते हुए यह लिखा कि आपके आराध्य को जो लोग पसंद न करते हों, उन्हें तुरंत त्याग दीजिए चाहे वे आपको कितने ही प्रिय हों (जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जदपि परम सनेही॥ - तुलसी)। अपने आराध्य के प्रति ऐसी ही एकाग्रता से भरी हुई विनय भावना सूरदास के पदों में भी मिलती है। एक स्थान पर सूरदास कहते हैं कि, हे मन! ऐसे लोगों का साथ छोड़ दे जो कृष्ण से विमुख हैं। वे मानते हैं कि ऐसे लोगों के कारण कुबुद्धि उत्पन्न होती है और भजन में बाधा पैदा होती है। वे यह भी मानते हैं कि ऐसे दुष्ट लोग भक्ति के संस्कार से इतने दूर होते हैं कि इन्हें आप लाख कोशिश करके भी विनय और समर्पण नहीं सिखा सकते। सूरदास के अनुसार अहंकारी व्यक्ति उस कौवे के समान है जो कपूर चुगाने पर भी अपवित्र चीज़ें खाने की आदत नहीं छोड़ सकता। उनके अनुसार अहंकारी व्यक्ति ऐसा कुत्ता है जिसे गंगा में नहलाना भी बेकार है। ऐसा व्यक्ति उस गधे के समान है जो चंदन का लेप करने पर भी बिलकुल

भी बदलता नहीं। ऐसा अहंकारी व्यक्ति विनय और समर्पण का मूल्य उसी प्रकार नहीं जानता जिस प्रकार बंदर बेशकीमती आभूषण का मूल्य नहीं जानता। भक्ति रहित व्यक्ति पत्थर की उस शिला के समान है जिसे प्रेम का बाण भी तोड़ नहीं पाता। अर्थात् सूरदास के अनुसार दुष्ट लोग ऐसे काले कंबल के समान होते हैं जिस पर विनम्रता रूपी दूसरा रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। सूरदास की विनय भावना में अहंकार का कोई स्थान नहीं है।

बोध प्रश्न

14. भक्त का मन कैसा होता है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन के बाद उनके विनय संबंधी पदों को पढ़कर आप उनकी भक्ति भावना की गहराई से परिचित हो चुके होंगे। आप जानते ही हैं कि वैष्णव परंपरा में भक्ति के कई प्रकार माने जाते हैं। भक्ति के ये प्रकार मुख्य रूप से इस आधार पर तय होते हैं कि भक्त अपने आराध्य (भगवान) के साथ किस प्रकार का रिश्ता रखता है। यहाँ यह जानना भी रोचक हो सकता है कि अंग्रेजी भाषा में धर्म के पर्यायवाची शब्द 'रिलीजन' के मूल में भी यही धारणा है। 'रिलीजन' शब्द 'रिलेशन' से बना है। 'रिलेशन' का अर्थ है संबंध या रिश्ता। भारतीय परंपरा में जीव और ब्रह्म के रिश्ते के आधार पर ही भक्ति के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं। ये रिश्ते कई प्रकार के हैं। सबसे प्रमुख रिश्ता है अपने आराध्य को अपना स्वामी मानने का। इसे आप स्वामी-सेवक संबंध कह सकते हैं। परमात्मा या भगवान स्वामी है और आत्मा या भक्त उसका सेवक। यह भाव वैष्णव परंपरा में इतना गहरा है कि प्रायः हर धार्मिक आयोजन में गाई जाने वाली आरथी में कहा जाता है - मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भरथा। इस मान्यता के अनुसार ईश्वर ही इस समस्त जगत का भरण-पोषण करता है। उसकी शरण में जाने से ही मनुष्य का उद्धार हो सकता है। सूरदास के विनय के पदों के मूल में यही भावना विद्यामान है। इस प्रकार की भक्ति को 'दास्य भक्ति' कहा जाता है।

सूरदास की भक्ति के तीन रंग हैं - दास्य, सख्य और माधुर्य। दास्य भक्ति वहाँ है, जहाँ वे अपने आराध्य को स्वामी मानते हैं। सख्य भक्ति वहाँ है, जहाँ सूरदास को कृष्ण अपने सखा (मित्र) प्रतीत होते हैं। माधुर्य भक्ति गोपी भाव की भक्ति है। इसमें भक्त भगवान को उसी प्रकार अपनी प्रेमी और पति मानता है जिस प्रकार गोपियाँ। अपने आरंभिक जीवन में सूरदास दास्य भक्ति के अनुरूप विनय भाव के पद रचते थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' में यह उल्लेख किया है कि वल्लभाचार्य से मुलाक़ात से पहले सूरदास विनय के ही पदों की रचना करते थे। यथा -

> 'चौरासी वैष्णवान की वार्ता' के अनुसार इनका जन्म-स्थान रुनकता या रेणुका-क्षेत्र है। ये मथुरा और वृंदावन के बीच गऊघाट पर रहते थे, भजन गाया करते थे

और सेवक अर्थात् शिष्य बनाया करते थे। जब महाप्रभु उधर पधारे तो सूरदास के सेवकों ने उन्हें सूचना दी कि दिग्विजय महाप्रभु वल्लभाचार्य पधारे हैं, जिन्होंने सब पंडितों को जीतकर भक्तिमार्ग की स्थापना की है। यह सुनकर सूरदास जी उनसे मिलने गए। उस समय महाप्रभु भोग लगाकर और स्वयं भी प्रसाद पाकर गद्दी पर विराजमान थे। सूरदास जी को देखकर उन्होंने भगवद् भजन करने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर सूरदास जी ने दो भजन गाए - 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।' (हे प्रभु, मैं सबसे बड़ा पतित हूँ) और 'हौं हरि सब पतितन कौ नायक' (हे हरि! मैं सब पतितों का नायक हूँ)। महाप्रभु ने दो ही भजन सुने और फिर डाँटकर कहा, 'सूर ह्वै कै ऐसो घिघियात काहे को हौ, कछु भगवत् लीला वर्णन करौ।' (अर्थात्, सूर होकर ऐसे घिघियाते क्यों हो? कुछ भगवत् लीला का वर्णन करो।

कहा जाता है कि उस समय तक सूरदास को भगवत् लीला की कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए वल्लभाचार्य ने उन्हें भगवत् के दसवें स्कन्ध की कथा सुनाई। उसके बाद ही वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुरूप सूरदास ने सख्य और माधुर्य भाव के पदों की रचना की। लेकिन इससे उनके विनय पदों का महत्व कम नहीं हो जाता। सूरदास के विनय पद अपने आराध्य कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा और शरणागति की भावना के सूचक हैं।

सूर की भक्ति भावना के केंद्र में एक अनुभवजन्य सच्चाई यह भी है कि सामान्य साधक को निराकार और निर्गुण परमात्मा की धारणा आसानी से समझ में नहीं आती। इसलिए वे यह मानते हुए भी कि ब्रह्म निराकार और निर्गुण है, भक्ति और आराधना के लिए उसके साकार और सगुण रूप का चुनाव करते हैं। इनमें भी उन्हें कृष्ण का रूप सर्वाधिक आत्मीय प्रतीत होता है। इसीलिए वे कहते हैं कि जिस प्रकार चारों ओर पानी ही पानी होने पर समुद्र के बीचों बीच किसी जहाज के ऊपर बैठे हुए पक्षी के लिए, उड़ान भरने पर भी कोई और आसरा नहीं होता, वैसे ही मेरा मन भी इस संसार रूपी समुद्र में अपने आराध्य कृष्ण के अलावा कोई आसरा न पाकर बार-बार उन्हीं के निकट लौट आता है। आराध्य की यह अनन्यता सूरदास की भक्ति भावना की मूल प्रेरणा मानी जा सकती है।

6.4 पाठ-सार

प्रस्तुत इकाई में सूरदास की विनय भक्ति से संबंधित पद हैं। सूरदास ने पहले पद में कृष्ण-चरणों की वंदना करते हुए उनको कमल के समान माना है। उनका मानना है कि इन चरण कमलों की कृपा से ही असंभव भी संभव बनता है। कृष्ण कृपा प्राप्त हो जाने पर रंक, राजा समान रूप से सिर पर छत्र लगाकर चलने की क्षमता पा जाता है। जहाँ सूरदास ने यह कहा है वहाँ यह बात सिद्ध हो जाती है कि कृष्ण कृपा के सामने राजा का सम्मान भी तुच्छ हो जाता है। दूसरे पद में, उन्होंने आत्मनिवेदन की चरम पराकाष्ठा में पहुँचकर स्वयं की तुलना 'जहाज के

पंछी' के साथ की है। यह अपने आप में अद्भुत तुलना है। इसी के साथ-साथ कृष्ण कृपा की तुलना उन्होंने पवित्र गंगाजल और मोक्ष देने वाली कामधेनु के साथ की है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि जो व्यक्ति ईश्वर की कृपा पा जाता है वह जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।

6.5 पाठ की उपलब्धि

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं-

1. सूरदास की कृष्ण भक्ति सख्य और माधुर्य भाव के साथ ही विनय अर्थात् दासी भाव से भी संयुक्त है।
2. सूर के विनय के पदों का मूल विषय है आत्मनिवेदन अर्थात् कृष्ण के चरणों में खुद को सौंप देना।
3. आत्मनिवेदन करते समय सूरदास ने अपनी तुलना 'जहाज के पक्षी' के साथ की है।
4. सूर की भक्तिभावना के केंद्र में आराध्य कृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा विद्यमान है।
5. सूरदास की सर्जनात्मक कल्पनाशक्ति अत्यंत प्रबल थी।

6.6 शब्द संपदा

1. आत्मनिवेदन = जब ईश्वर के सामने भक्त अपना सब कुछ रख देता है तो वह आत्मनिवेदन कहलाता है।
2. प्रेमलक्षणा भक्ति = ऐसी भक्ति में ईश्वर और भक्त के बीच प्रेम का संबंध बनता है।
3. विनय भक्ति = भक्ति का वह रूप जहाँ भक्त अपने को ईश्वर का दास समझता है विनय भक्ति कहलाती है। इसे दास्य भक्ति भी कहा जाता है।
4. शुद्धाद्वैतवाद = भक्ति का एक संप्रदाय जिसकी स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य ने की थी। इसकी मान्यता है कि भगवान दयालु होकर स्वयं जीव पर अनुग्रह करते हैं।

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. महाकवि वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार कैसे किया?
2. विनय के पदों का सार तत्व समझाइए।
3. सूरदास की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।

4. सूरदास की भक्ति भावना में विनय का महत्व बताइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. विनय पदों का परिचय दीजिए।
2. चरण कमल बन्दौ हरिराई .... बार-बार बन्दौ तेहि पाई। इन पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए।
3. मेरो मन मनत....................... छेरी कौन दुहावै॥ इन पंक्तियों का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।
4. पठित पदों के आधार पर सूरदास की भक्ति भावना को समझाइए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. सूरदास को हिंदी साहित्य का क्या माना जाता है? ( )
   क) चाँद ख) ग्रह ग) नक्षत्र घ) सूर्य
2. साहित्य लहरी किसकी रचना है? ( )
   क) कबीर ख) सूरदास ग) वल्लभाचार्य घ) इनमें से कोई नहीं
3. प्रस्तुत पदों का संबंध किस भाव के साथ है? ( )
   क) विनय भाव ख) सख्य भाव ग) दास्य भाव घ) प्रेम भाव
4. सूरदास के गुरु थे? ( )
   क) वल्लभाचार्य ख) विट्ठलनाथ ग) रंगनाथ घ) स्वामीनाथ
5. 'चरण कमल बन्दौ हरिराई' पद में कौन सा अलंकार है? ( )
   क) रूपक ख) यमक ग) अनुप्रास घ) श्लेष
6. सूरदास की मृत्यु कब हुई? ( )
   क) 1683 ई. ख) 1643 ई. ग) 1583 ई. घ) 1580 ई.

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. सूरदास ने अपने मन की तुलना .... के साथ की है।
2. सूरदास का जन्म .... ई. में हुआ।

3. चरन शब्द का अर्थ ………… है।

4. करील का अर्थ …………….. है।

III सुमेल कीजिए।

i)	वल्लभाचार्य	(अ) 8 कवि
ii)	विट्ठलनाथ	(ब) पिता
iii)	अष्टछाप	(स) पुत्र

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
2. सूरदास, नन्दकिशोर नवल.

इकाई 7 : बाल लीला वर्णन

रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 मूल पाठ : बाल लीला वर्णन
  (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
  (ख) अध्येय कविता
  (ग) विस्तृत व्याख्या
  (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
7.4 पाठ सार
7.5 पाठ की उपलब्धियाँ
7.6 शब्द संपदा
7.7 परीक्षार्थ प्रश्न
7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! मध्ययुगीन कविताओं में सूरदास के बाल वर्णन की छवि ने सबका मन मोह लिया था। सूरदास के द्वारा कृष्ण की इन्हीं बाल लीलाओं के सुंदर चित्रण को देखते हुए काव्यशास्त्रकारों ने नौ रसों के अतिरिक्त 'वात्सल्य' नामक दसवें रस का प्रतिपादन किया। सूरदास के द्वारा किए गए श्री कृष्ण की बाल लीला के मनमोहक वर्णन ने भारतीय जनमानस को सहज भाव से आकर्षित किया। कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का मोहक रूप सूरदास ने अपने कई पदों में प्रस्तुत किया है, जिनमें से दो पदों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत पाठ में किया जा रहा है। मध्ययुगीन अशांत वातावरण में बालक कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं ने कवि के मन को अधिक आकर्षित किया। प्रस्तुत पाठ में सूरदास के बाल लीला संबंधी पदों को पढ़ते समय निश्चय ही आप अपने बचपन को याद करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप सूरदास कृत बाल लीला वर्णन का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- सूरदास के साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- मध्ययुगीन लोक जीवन को समझ सकेंगे।
- बाल लीला के पदों के साहित्यिक महत्व को समझ सकेंगे।
- मध्ययुगीन सगुण काव्य रचना के लोकरंजक स्वरूप को समझ सकेंगे।

- सूरदास के लोकरंजनकारी वात्सल्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3. मूल पाठ : बाल लीला वर्णन

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

कृष्ण के चरित्र के तीन रूपों - धर्मोपदेशक ऋषि, नीति विशारद द्वारिकाधीश एवं गोपाल कृष्ण में से अंतिम स्वरूप का भक्तिकालीन कवियों ने उन्मुक्त कंठ से गान किया है। कृष्ण का यह स्वरूप साहित्यकारों को सदैव आकर्षित करता रहा है। कृष्ण को खाद्य पदार्थों में माखन अत्यंत प्रिय था, यही कारण है कि वे अपने बाल सखाओं के साथ माखन चोरी की लीलाएँ करते रहते थे। वे गोपियों के घरों में प्रायः माखन चोरी किया करते थे। जब वे एक बार अपने ही घर में माखन चुरा रहे थे तो उसी समय यशोदा की दृष्टि उन पर पड़ जाती है। रंगे हाथों पकड़े जाने पर वे माता यशोदा को सफाई देते हैं। उसका चित्रण प्रथम पद में प्रस्तुत है। सूरदास भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन्होंने बालमन का कोना-कोना झाँक लिया हो। कृष्ण माता यशोदा को सफाई देते हुए जिस चतुराई का सहारा लेते हैं, प्राय: बालक ऐसा ही करते हैं। द्वितीय पद में कृष्ण द्वारा माता यशोदा से अपने भाई बलदाऊ की शिकायत करने का उल्लेख है। बालवृन्दों के बीच खेल-खेल में वाद-विवाद हो ही जाता है। बालक कृष्ण के अशांत मन को माता यशोदा अपने स्नेह से शांत करती है और उनके मन के भाव को समझ कर उसका निराकरण करती है। बालमन की इन्हीं अलग-अलग अवस्थाओं को सूरदास के बाल वर्णन में हम देख सकते हैं।

(ख) अध्येय कविता

[1]

मैया! मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरैं मुख लपटायो॥
देखि तुही छींके पर भाजन ऊंचे धरि लटकायो।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसें करि पायो॥
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं दोना पीठि दुरायो।
डारि सांटि मुसुकाइ जशोदा स्यामहिं कंठ लगायो॥
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भक्ति प्रताप दिखायो।
सूरदास जसुमति को यह सुख सिव बिरंचि नहिं पायो॥

[2]

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।

मोसौ कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिस के मारैं खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता को है तेरौ तात॥
गोरे नंद जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटुकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत, सबै मुसुकात॥
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

निर्देश : 1. उक्त पदों का सस्वर वाचन कीजिए।
2. उक्त पदों का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

मैया! मैं नहिं माखन .... सिव बिरंचि नहिं पायो॥

शब्दार्थ : ख्याल = विचार, मत, ध्यान। प्रताप = तेज। परै = पड़ता है। मोह = मोह लेना, मोहक, वशीभूत करना। लपटायौ = लगाना। मोद = प्रसन्नता। भाजन = बर्तन। बिनोद = विनोद, हँसी। धरि = रखना। कंठ = गले। हौं = मैं। जु = तो। नान्हें = छोटे। कर = हाथ। दध= दही। जसुमति = यशोदा। दोना = पत्ते से बनी कटोरी। सिव = शिव। डारि = रख देना, डाल देना। बिरंचि = ब्रह्मा। सांटि = छड़ी, पतली लकड़ी। पायो = पाना, पा लेना।

संदर्भ : सूरदास का जन्म 1478 ई. के आस-पास आगरा के रुनकता नामक ग्राम में हुआ था और पारसौली नामक गाँव में 1583 ई. में उनका स्वर्गवास हुआ। 'सूर-सागर', 'सूर-सारावली', 'साहित्य-लहरी', 'नल-दमयंती' और 'व्याहलो' आदि उनकी रचनाएँ हैं। सूरदास के विनय के पदों पर मुग्ध होकर आचार्य वल्लभाचार्य ने इन्हें अष्टछाप का कवि शिरोमणि बनाया। उन्होंने ही सूरदास को कृष्ण की लीलाओं का गान करने की प्रेरणा दी। प्रस्तुत पद रामकली राग में बद्ध एक बहुत ही मनोहारी पद है। इस पद में सूरदास ने कृष्ण की बाल लीला का सुंदर चित्रण किया है।

प्रसंग : कृष्ण को माखन खाना इतना प्रिय था कि वे अपने ही नहीं दूसरी ग्वालिनों के घरों में भी अपने बाल सखाओं के साथ माखन चुराने पहुँच जाते थे। आज पहली बार ऐसा हुआ कि माता यशोदा ने उन्हें अपने ही घर में माखन चुराते हुए देख लिया। इस पद में सूरदास ने कृष्ण की वाकपटुता का अति सुंदर वर्णन किया है। कृष्ण की बाल लीला का कवि सूरदास ने ऐसा संयोजित स्वरूप प्रस्तुत किया है कि पाठक 'चोरी' जैसे शब्द की कलुषता को भी भूल जाते हैं।

कृष्ण स्वयं को माता यशोदा के हाथों दंडित होने से बचाने के प्रयत्न में अलग-अलग बहाने बनाते हैं, जिसे पढ़कर पाठक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

व्याख्या : सूरदास प्रस्तुत पद में कृष्ण के माखन चोरी के प्रसंग का चित्रण करते हुए कहते हैं कि कृष्ण प्रायः माखन चोरी करते रहते थे। वे माखन चुराने में आनंद प्राप्त करते थे। गोपियाँ हमेशा बालक कृष्ण की शिकायतें लेकर यशोदा के पास पहुँच जाती थीं। माता यशोदा कृष्ण की शिकायतें सुन-सुनकर बहुत दिनों से खिन्न थीं। ऐसे में जब एक दिन कृष्ण अपने ही घर में माखन चुराकर खा रहे थे तो अचानक यशोदा उन्हें ऐसा करते हुए देख लेती है। वे गुस्से से कृष्ण को मारने के लिए एक छड़ी लेकर आती हैं। कृष्ण जब माता यशोदा को अत्यंत क्रोधित देखते हैं तो उनके मुख से स्वयं को बचाने के लिए झूठ निकल जाता है। वे कहते हैं मैया! मैंने माखन नहीं खाया है। रंगे हाथों पकड़े जाने पर भी कृष्ण यशोदा के सामने अपनी गलती नहीं मानते। और अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि - हे मैया! मैंने माखन नहीं खाया है। मेरे बाल मित्रों ने बलपूर्वक मेरे मुख पर माखन लगा दिया है। वे आगे कहते हैं कि मैया सोचो तो सही! आपने तो माखन रखने वाला छींका इतनी ऊँचाई पर लटकाया है कि मेरे नन्हें हाथ वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकते हैं। यह कहते समय अचानक कन्हैया को अपने हाथ में पकड़े दोने की याद आती है, जो माखन से भरा हुआ है। तो वह तुरंत उसे पीछे छिपाते हुए अपना मुँह पोंछने लगते हैं। कृष्ण की ऐसी चतुराई देखकर माता यशोदा का क्रोध अपने आप दूर हो जाता है। वे अपने हाथ की छड़ी बगल में फेंककर कृष्ण को गले लगा लेती है। माता-पुत्र के इस सहज स्नेह को देख कर सूरदास कहते हैं कि जो सुख माता यशोदा को सहज ही प्राप्त हो रहा है, वह तो शिव और ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ है।

विशेष : उक्त पद में सूरदास ने एक सामान्य प्रसंग के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का तार्किक उल्लेख किया है। कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का सहज चित्रण किया गया है। राग रामकली में लिखा गया यह पद गेय शैली का उत्तम उदाहरण है। ब्रज भाषा के शब्द विन्यास ने पद को आकर्षक स्वरूप प्रदान किया है। कृष्ण द्वारा स्वयं को माँ के दंड से बचाने के लिए प्रस्तुत किए गए विविध बहाने मन को मोह लेते हैं। माता का क्रोध अपनी संतान के प्रति कितना अस्थायी होता है, इसका आनंद उक्त पद में प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न

1. इस पद के माध्यम से सूरदास क्या कहना चाहते हैं?
2. बालक कृष्ण क्या करते हुए पकड़े जाते हैं?
3. कृष्ण ने स्वयं को माँ के दंड से कैसे बचाया?
4. कृष्ण अपने दोष किन पर आरोपित करते हैं?

5. माता यशोदा को कौन सा सुख प्राप्त होता है?

मैया मोरी दाऊ ....तू पूत।

शब्दार्थ : मोहि = मुझे। तेरौ = तुम्हारा। खिझायौ = चिढ़ाना। तात = पिता। मोसो = मुझसे। कत = कैसे। मोल = क्रय। स्यामल = साँवला। लीन्हौ = लिया है। गात = शरीर। जायौ = जन्म देना। मोही = मुझको। इहि = इसी। दाउहि = बलदाऊ, बलराम। रिसि = क्रोध। कबहु = कभी भी। मारै = के कारण। खीझौ = क्रोधित। जात = जाना। रीझे = प्रसन्न होना। पुनि-पुनि = बार-बार। बलभद्र = बलदाऊ, बलराम। तेरौ = तुम्हारा। चबाई = चुगलखोर। तात = पिता। धूत = धूर्त। कत = कैसे। सौ = सौगंध।

संदर्भ : प्रस्तुत पद सूरदास के बाल लीला वर्णन से लिया गया है। यह पद राग गौरी में संगीत बद्ध है। इस पद में उस घटना का वर्णन है जब कृष्ण के श्याम वर्ण के कारण उनके बड़े भाई बलदाऊ उन्हें चिढ़ाते हैं और उनकी देखा-देखी ग्वाल बाल भी वैसा ही करते हैं। इस पर कृष्ण माता यशोदा के पास अपने भाई बलदाऊ की तथा ग्वाल बालों की शिकायत लेकर पहुँचते हैं।

प्रसंग : सूरदास ने प्रस्तुत पद में कृष्ण की बाल लीला का सजीव वर्णन किया है। कृष्ण का श्याम वर्ण देखकर उनके भाई बलदाऊ (बलराम) उन्हें चिढ़ाया करते थे। प्रायः भाई-भाई, भाई-बहन के बीच ऐसी नोक-झोंक होती ही रहती है। ऐसे ही बलराम और कृष्ण के बीच के वाद-विवाद के प्रसंग को सूरदास ने मनोरम रूप में चित्रित किया है।

व्याख्या : कृष्ण अपने बाल मित्रों के साथ क्रीड़ा स्थल पर जब भी जाते हैं तो अपने बड़े भैया बलदाऊ के द्वारा चिढ़ाए जाने पर दुखी हो उठते हैं। बालकों का कोमल मन छोटी-छोटी बातों पर दुखी हो जाया करता है। एक बार जब बलदाऊ और ग्वाल बाल कृष्ण को चिढ़ाते हैं तो वे माता यशोदा के पास जाकर उनकी शिकायत करने लगते हैं। वे कहते हैं मैया! मुझे दाऊ भैया बहुत चिढ़ाते हैं, वे जब भी ग्वाल बालों के सामने चिढ़ाते हैं तो उन्हें देखकर दूसरे ग्वाल बाल भी मुझे चिढ़ाने लगते हैं। वे सब बार-बार मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं। अतः अब मैं खेलने के लिए नहीं जाऊँगा। मैया! तुम भी तो मुझे बात-बात पर मारती हो और बलदाऊ भैया को कभी डाँटती भी नहीं। इसलिए मैं अब खेलने नहीं जाऊँगा। वे मुझसे बार-बार यही पूछते रहते हैं कि तुम्हारी माता कौन है? तुम्हारे पिता कौन है? और यह भी कहते हैं कि जिन्हें तुम अपना पिता और अपनी माँ कहते हो वह तो गौर वर्ण के हैं और तुम सांवले हो। वे कहते हैं कि यशोदा मैया ने तुम्हें मोल लिया है। वे ऐसा चुटकी बजा-बजाकर कहते हुए मेरा मज़ाक उड़ाते हैं। भैया के साथ-साथ दूसरे ग्वाल बाल भी मेरा मज़ाक उड़ाते हैं। सब मुझ पर हँसते हैं। कृष्ण की शिकायत सुनकर यशोदा उन पर रीझ उठती हैं। कृष्ण को क्रोध में देखकर यशोदा कृष्ण को समझाते हुए कहती हैं कि कान्हा! तुम्हारे बड़े भैया बलदाऊ तो बचपन से ही झूठ बोलते हैं, वे तुम्हारे बारे में

झूठ बोलते ही रहते हैं। वे चुगलखोरी और झूठ में खुश रहते हैं। जब कृष्ण का क्रोध दूर नहीं होता है तो ऐसे में कृष्ण को मनाने के लिए गायों की सौगंध खाकर यशोदा कहती हैं कि कान्हा! तुम मेरे ही पुत्र हो और मैं ही तुम्हारी मैया। कान्हा की इतनी गूढ़ बातों को सुनकर यशोदा भाव विह्वल हो उठती हैं।

विशेष : उक्त पद में कृष्ण की बाल लीला की सुंदर झाँकी प्रस्तुत की गई है। सूरदास ने बालकृष्ण के क्रोध को मोहक स्वरूप में प्रस्तुत किया है। बालक कृष्ण के क्रोध को देखकर माता यशोदा उन पर रीझ उठती हैं। माता यशोदा और बालक कृष्ण का संवाद मन को मुग्ध कर लेता है। बाल मनोविज्ञान का मनोहारी चित्रण किया गया है।

बोध प्रश्न

6. कृष्ण क्यों खीझ उठते हैं?
7. कृष्ण को बलदाऊ भैया क्या कहकर चिढ़ाते हैं?
8. कृष्ण माता यशोदा से किसकी शिकायत करते हैं?
9. माता यशोदा कान्हा को कैसे समझाती हैं?
10. माता यशोदा किसकी सौगंध खाकर कान्हा का क्रोध शांत करने का प्रयत्न करती हैं?

काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास का वात्सल्य वर्णन उनके प्रज्ञाचक्षु होने का ज्वलंत उदाहरण है। बाल सुलभ चेष्टाओं के विविध रूपों की झाँकी सूरदास के पदों में देखी जा सकती है। मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों में सूर सूर्य ही सिद्ध होते हैं। सूरदास ने तत्कालीन समाज के नैराश्य में भक्ति का स्वर्ग रच दिया था। वे कृष्ण की लीला का वर्णन करते समय मानव जीवन की तीन अवस्थाओं का पूर्णतः ध्यान रखते हैं - बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। वात्सल्य रस मनुष्य की बाल्यावस्था से संबद्ध है, तो शृंगार रस युवावस्था से तथा शांत रस वृद्धावस्था से। सूरदास शृंगार और शांत रस के वर्णन में अन्य कवियों से भले ही पीछे हो किंतु वे वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए। भाषा के माधुर्य रस का पान सूरदास के पदों में सर्वत्र ही किया जा सकता है। कवि ने कृष्ण की बाल सुलभ वाक् पटुता का जितनी सूक्ष्मता से चित्रण किया है उतनी ही पटुता से उन्होंने बलदाऊ के परिहास का भी चित्रण किया है। इस तरह से हमारा ध्यान काव्य के लयात्मक दृष्टिकोण पर भी जाता है। जब कभी वे उसे अलग-अलग छंदों में बद्ध करते हुए ब्रजभाषा की चाशनी में डुबोते हैं, तो पाठकों का तन-मन भीग उठता है। बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यदि उक्त पदों का विवेचन करें तो हम पाएँगे कि दोनों ही पद सूरदास जैसे प्रज्ञाचक्षुवान (ज्ञानी) व्यक्ति के सामर्थ्य की ही अभिव्यक्ति के उदाहरण हैं। बाल कृष्ण की वाक् चातुरी तो कवि ने पूरे मनोयोग से प्रस्तुत किया है। उक्त पद में बालकृष्ण का

अपने ही घर में माखन चोरी करते समय पकड़ा जाना और रंगे हाथों पकड़े जाने पर भी उतने ही आत्मविश्वास के साथ चोरी की बात को अस्वीकार करते हुए स्वयं को बचाने का मार्ग ढूँढना, निश्चय ही पाठक को मुग्ध करते हैं। दूसरे पद में बच्चों की तकरार के चित्रण से कवि को लोकरंजन का उचित अवसर प्राप्त हुआ है। बाल मनोविनोद की ऐसी प्रांजल प्रस्तुति अन्यत्र दुर्लभ है। बाल मनोविनोद के माध्यम से अभिभावक के कर्तव्य का भी समुचित वर्णन किया गया है, जिसे वर्तमान समय में निश्चित ही प्रासंगिक माना जा सकता है।

बोध प्रश्न

11. सूर के वात्सल्य पदों में किसका वर्णन है?
12. मानव जीवन की तीन दशाओं का रसों से क्या संबंध है?
13. इन पदों में कवि ने पूरे मनोयोग से किसका चित्रण किया है?
14. बच्चों की तकरार से कवि को क्या अवसर मिला है?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

कृष्ण की बाल लीलाओं की सुंदर अभिव्यक्ति को देखकर इस बात पर विश्वास ही नहीं किया जा सकता कि सूरदास जन्मांध थे। कोई भी जन्मांध व्यक्ति बिना अनुभव के बालक की एक-एक भाव भंगिमा का सजीव अंकन कर ही नहीं सकता है। कवि के विनय के पदों से प्रभावित होकर आचार्य वल्लभाचार्य ने सूरदास को गोवर्धन पर्वत स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन का दायित्व सौंपा था। जहाँ वे अपनी दिव्यचक्षु से कृष्ण की बाल लीला के पदों की रचना करते हुए नित्य नवीन पदों का विविध छंदों में गायन किया करते थे। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध की छाया के साथ सूरदास ने कृष्ण की लीला का मधुरतम गान प्रस्तुत किया। बाल लीला के द्वारा तत्कालीन समाज की निराशा के अंधेरे में जीवन की मधुर रागिनी की तान छेड़ने वाले कवि ने तीनों लोकों के स्वामी श्री कृष्ण को भगवान विष्णु के मानव अवतार में चित्रित किया है। कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि मानव अवतार में जन्म लेने पर भगवान को भी मानव के समान ही उसे भी जीवन यापन करना पड़ता है। मानवीय मनोभावों से जब ईश्वर भी स्वयं को मुक्त नहीं कर सके तो सामान्य मानव कैसे कर सकते हैं?

बोध प्रश्न

15. सूर ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किस ग्रंथ के आधार पर किया है?
16. कवि ने क्या बताने की चेष्टा की है?

कृष्ण के लिए नंदग्राम में नंद के घर में माखन की कोई कमी न थी। किंतु बाल स्वभाव के अनुसार माखन चुराकर खाने में जो आनंद कृष्ण को मिलता है, वह सहज रूप से माखन खाने में

कहाँ? निश्चय ही सूरदास ने इस भाव को बखूबी अभिव्यक्त किया है। सूरदास ने कृष्ण को सामान्य बालकों की तरह अपनी चोरी पकड़े जाने पर झूठ का सहारा लेते हुए चित्रित किया है। बालक कृष्ण की बुद्धि कौशल को देखकर माता यशोदा भी अपना गुस्सा त्यागकर वात्सल्य भाव से उसे गले लगा देती है। बालकृष्ण को अपने हाथ छोटे होने का और छींके की अधिक ऊँचाई का ज्ञान रहता है, इसीलिए उन्हें माखन चोरी के बाद स्वयं को बचाने की कला भी बहुत अच्छी तरह से आती है। सूरदास का वात्सल्य वर्णन इतना सरल, सहज है कि उसे देख-सुनकर निश्चय ही पाठक कल्पना लोक में विचरण करने लगता है। बालकृष्ण माखन चुराने की बात को अस्वीकार कर देते हैं, ऐसे में अचानक अपने हाथ के दोने का जब उन्हें स्मरण हो आता है तो उसको पीछे छिपाने की कोशिश करते हैं और अपना मुँह पोंछ कर अपने ग्वाल सखाओं को दोष देते हैं। यह बालक के स्वभाव का ही सहज उदाहरण है।

दूसरे पद में क्रीड़ा स्थल पर बालकों के मध्य प्रायः विवाद होने के प्रसंग का वर्णन किया गया है। बालकों के मध्य खेल-खेल में वाद-विवाद हो ही जाता है। भाई-भाई, भाई-बहन, बहन-बहन, बहन-भाई आदि में विवाद हो यह सामान्य सी बात है। सूरदास का कृष्ण के प्रति सखा भाव, भक्ति भाव देखकर ही प्रायः हिंदी साहित्य के समीक्षक उन्हें उद्धव का अवतार मानते हैं। कृष्ण का श्यामल तन ग्वाल बालों के लिए परिहास का कारण बन जाता है। जब वे खेल के मैदान से वापस आ जाते हैं, तो उन्हें क्रोध और दुख की भावना से उबारने हेतु माता यशोदा बलदाऊ को चुगलखोर, धूर्त तक कह देती हैं। माता यशोदा को बालक कृष्ण के क्रोध को शांत करने हेतु गायों की भी सौगंध लेनी पड़ती है। इस प्रकार श्रुति और स्मृति पर आधारित वैष्णव भक्ति के विविध स्वरूप का प्रवाह भक्ति काल में अजस्र रूप से होता रहा। ईश्वर के सत, चित और आनंद रूप की सर्वव्याप्ति को ग्रहण करते हुए भी कवि ने बालकृष्ण को मानव रूप में चित्रित करते हुए उनके अनुग्रह को पुष्टि के भाव से ग्रहण किया है। ईश्वर भक्तवत्सल होकर मानव के बीच मानव लीला करने लगते हैं।

सूर के बाल लीला वर्णन के विषय में विद्वानों के विचार

कवि सूरदास को हिंदी साहित्य में बाल लीला वर्णन की सुंदर परंपरा के अग्रणी प्रतिष्ठापक माना जाता है। कृष्ण के बाल वर्णन की विविध झाँकियों को सूरदास ने 'सूरसागर' में प्रस्तुत किया है। बाल लीला का ऐसा वर्णन सूर से पूर्व किसी ने न किया था। बाल लीला के अंतर्गत सूरदास ने प्रथम चरण में यशोदा और कृष्ण को केंद्र में रखा है। बाल वर्णन की कड़ी में मानव की प्राचीन वृत्ति कृषि, पशु चारण को प्रमुखता दी गई है। उनका कृष्ण का बाल सखा बन कर उनके साथ वन-वन फिरना तथा ग्वाल सखाओं का कलेऊ बाँट कर खाने आदि का चित्रण अति मनोहारी है। खेल-खेल में सुदामा के जीतने तथा कृष्ण के हारने के प्रसंग पर बालक कृष्ण

के क्षोभ का सुंदर चित्रण अलग-अलग पदों में किया गया है। सूरदास नंद के हृदय में बैठकर कान्हा की बाल लीलाओं का आनंद लेते हैं, तो कभी मित्र के रूप में कृष्ण के साथ माखन चुराने, दूध और दही लूटने तथा गौओं को चराने में आनंद लेते हैं। शिवकुमार शर्मा के अनुसार, 'उनकी विराट प्रतिभा के सामने बाल्य जीवन की कोई भी वृत्ति तिरोहित न रही। कृष्ण के बाल्य जीवन से संबद्ध संपूर्ण क्रीड़ाओं - कृष्ण जन्म, नाक-छेदन, नामकरण, वर्षगाँठ, कृष्ण का पालने में झूलना, अंगूठा चूसना, लोरियों के साथ सोना, प्रभातियों के साथ जागना, हँसना, मचलना, बहाने बनाने का अत्यंत सूक्ष्म और विशद विवेचन सूर ने किया है।'

(शिवकुमार शर्मा. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ. पृ. 256)

कृष्ण के बाल वर्णन पर विशेष रूप से आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि 'संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है। परंतु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता मनोहारिता और श्रद्धा के साथ लिखी हुई बाल लीला अलभ्य है। (शिवकुमार शर्मा. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ. पृ. 257)

सूर के बाल लीला वर्णन के अनोखे स्वरूप को देखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि 'जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य-जीवन का चित्रण इन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूप और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अंतःप्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक बाल्य भावों की सुंदर स्वाभाविक व्यंजना की है। (रामचंद्र शुक्ल. सूरदास. पृ. 130)

सूरदास की कृतियों में ब्रज संस्कृति, परंपरा, भाषा की मिठास को देखा जा सकता है। 'महाकवि सूरदास जी का काव्य जहाँ एक ओर मंजी हुई साहित्यिक ब्रजभाषा में शताब्दियों से चली आती हुई साहित्यिक परंपराओं को नए साँचे में ढालकर प्रस्तुत करता है। वह दूसरी ओर विभिन्न धार्मिक परंपराओं का समन्वय भी उनमें है। (हरबंशलाल शर्मा. सूर और उनका साहित्य. पृ. 1)

इस प्रकार सूरदास ने कृष्ण के बाल लीला वर्णन से ही नहीं, अपितु ब्रज संस्कृति की मिठास से भी हिंदी साहित्य को सुवासित किया। सूरदास के बाल-वर्णन की विविध छवियों से प्रभावित होकर ही समय-समय पर हिंदी साहित्य समीक्षकों ने अपनी-अपनी शैली में सूरदास के काव्य कौशल को विश्लेषित किया है।

बोध प्रश्न

17. सूरदास किस परंपरा के अग्रणी प्रतिष्ठापक हैं?
18. सूर के बाल लीला वर्णन के बारे में रामचंद्र शुक्ल ने क्या कहा है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! कृष्ण की बाल लीला के विषय में सूरदास के इन पदों को पढ़ने के बाद आपके मन में उनके बाल लीला संबंधी अन्य पदों को पढ़ने की इच्छा जगी होगी। इन पदों को पढ़ने से सूरदास के अपने स्वभाव के बारे में भी आप कुछ न कुछ अनुमान कर सकते हैं। किसी नन्हें से, नटखट से बालक की नादानियों और शैतानियों का ऐसा मनमोहक वर्णन कोई ऐसा ही कवि कर सकता है जिसके मन में वात्सल्य की धारा बहती हो। ममता का झरना किसी माँ के हृदय की तरह प्रवाहित होता हो। तनिक सोचिए कि सूरदास कितने भाव प्रवण मन के मालिक रहे होंगे। और किस तरह अपने आराध्य कृष्ण के प्रति वे वैसा ही वात्सल्य अनुभव करते होंगे जैसा यशोदा माँ करती रही होंगी। पुष्टिमार्गीय भक्ति में जब साधक कृष्ण के साथ माँ-बेटे का संबंध अनुभव करता है तो प्रथम प्रकार की पुष्टि अर्थात् भक्ति की सिद्धि होती है। सूरदास के वात्सल्य के पद उनकी माँ-बेटे के भाव से की गई भक्ति के इसी सोपान का प्रतीक हैं।

सूरदास के पदों को पढ़ते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि संपूर्ण जगत के आनंद के स्रोत भगवान श्री कृष्ण ही उनमें अभिव्यक्त प्रेम के आलंबन है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-

> "गोपियाँ, यशोदा, नन्द, गोप-बाल, उद्धव आदि सभी भक्त आश्रय रूप आलंबन है। इन सबकी एकमात्र अभिलाषा यही होती है कि भगवान हमसे प्रसन्न हों। अगर हम इस बात को ध्यान में रखे बिना वैष्णव साहित्य को पढ़ेंगे तो घाटे में रहेंगे। यह भाव नानाभाव से भक्त कवि की कविता में आएगा, इसे इसी रूप में न देखने का परिणाम यह हुआ कि सूरदास की वर्णन की हुई श्रीकृष्ण की बाल लीला को बड़े-बड़े सहृदयों तक ने इस प्रकार समझा है मानो वे स्वभावोक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। नहीं, वे स्वभावोक्ति के उदाहरण नहीं हैं, वे उससे बड़ी चीज हैं। संसार के साहित्य की बात कहना बहुत कठिन हैं, क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंशमात्र हमारा जाना है। परंतु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाल लीला अलभ्य है।"
> (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 104)

प्रिय छात्रो! सूरदास ने बाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए उनकी एक-एक चेष्टा का चित्रण ऐसी कमाल की होशियारी के साथ किया है कि उनके सूक्ष्म निरीक्षण को देखकर यह यकीन ही नहीं आता कि वे अंधे रहे होंगे और उन्होंने गुरु वल्लभाचार्य से सुनी कथा के आधार पर ही ये वर्णन किए होंगे। इसीलिए तो उन्हें प्रज्ञाचक्षु अर्थात् आंतरिक ज्ञान की आँख से देखने वाला कवि कहा जाता है। कवित्व की दृष्टि से देखने पर इन पदों में किसी प्रकार की कमी दिखाई नहीं देती। शब्द, अलंकार, भाव, भाषा - हर लिहाज से सूर के बाल लीला पद अपने आप में परिपूर्ण हैं। पाठक के मन में यह सवाल उठना लाज़मी है कि ऐसा क्यों है? सूरदास ने प्रबंध काव्य नहीं लिखा। मुक्तक रचे हैं। एक-एक लीला या एक-एक चेष्टा को लेकर वे अनेक पद रचते हैं। लेकिन बार-बार दुहराई जाने पर भी उनकी बात हर बार मनोरम लगती है। या तो यह उनकी काव्य प्रतिभा का चमत्कार है या कृष्ण की लीला का चमत्कार है। इस संबंध में

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कवि और उसके वर्ण्य विषय के बीच जो अद्‌भुत सामंजस्य है उसके अनोखेपन के कारण ही सूर के काव्य में यह मनोरमता पैदा हुई है। कवि और विषय, अथवा कहें कि भक्त और भगवान के एकाकार होने से जो अभिव्यक्तियाँ सामने आई हैं, वे वस्तुतः केवल बाल लीला वर्णन भर नहीं हैं, बल्कि भक्ति का प्रसाद है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -

> "इसका कारण यशोदा का निखिलानंद संदोह भगवान बालकृष्ण के प्रति एकांत आत्म-समर्पण है। अपने-आपको मिटाकर अपना सर्वस्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है, वही श्रीकृष्ण की इस बाल लीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाए हुए है। यशोदा को उपलक्ष्य करके वस्तुतः सूरदास का भक्त चित्त ही शत-शत रसस्रोतों में उद्वेलित हो उठता है। वही चित्त गोपियों, गोपालों और सबसे बढ़कर राधिका के रूप में ही अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए सूरदास की पुनरुक्तियाँ ज़रा भी नहीं खटकतीं।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 105)

यहाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं का उल्लेख भी जरूरी है। माना जाता है कि शुक्ल जी तुलसी के काव्य पर अत्यंत मुग्ध थे। लेकिन उन्होंने भी सूर के भाव वर्णन को तुलसी के भाव वर्णन से अधिक प्रभावशाली माना है। वे मानते हैं कि सूर का काव्य क्षेत्र तुलसी के समान इतना व्यापक नहीं था कि उसमें जीवन की भिन्न दशाओं का समावेश हो पाता। लेकिन सूरदास ने कृष्ण लीला के जिन सीमित क्षेत्रों का चुनाव किया उनकी वाणी से उसका कोई कोना अछूता नहीं रह सका। खास तौर पर वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक 'सूरदास' की 'दृष्टि' पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। अपने वर्णन क्षेत्र में महाकवि सूरदास ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं। आचार्य शुक्ल के कथन से तो यह भी प्रतीत होता है कि स्वयं तुलसीदास ने सूरदास से प्रभावित होकर विशेष भावों के लिए अलग-अलग पद रचने की प्रेरणा पाई थी। यथा-

> "गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'गीतावली' में बाल लीला को इनकी देखादेखी बहुत अधिक विस्तार दिया है, पर उसमें बाल सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 116)

यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी जरूरी है कि सूरदास स्वयं एक बालक जैसे सरल हृदय के मालिक थे। लीलागान में उन्होंने माता के प्रेम, पुत्र के प्रेम और गोप-गोपियों के प्रेम का वर्णन इसी सरलता से किया है। उनका प्रत्येक वर्णन बाल सुलभ भावों आर चेष्टाओं का विस्तार तो ही है। जैसा कि 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है –

> "बाल-स्वभाव के वर्णन में सूरदास बेजोड़ समझे जाते हैं। वे स्वयं वयः प्राप्त बालक थे। बाल-स्वभाव-चित्रण में वे एक तरह का अपनापा अनुभव करते जान पड़ते हैं और ठीक उसी प्रकार मातृ-हृदय का मर्म भी समझ लेते हैं। केवल कृष्ण का बाल-स्वभाव ही उन्होंने नहीं वर्णन किया, राधिका की बाल-केलि को भी समान रूप से आकर्षक बनाया है। सच पूछा जाए तो राधिका और कृष्ण का सारा प्रेम-व्यापार जो 'सूरसागर' में वर्णित है, बालकों का प्रेम-व्यापार है। वही चुहल, वही लापरवाही, वही मस्ती, वही मौज।" (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ. 96)

7.4 पाठ-सार

सूरदास के बाल लीला वर्णन के पदों में बाल मनोविज्ञान की ऐसी पुष्टि होती है कि भक्त स्वयं को कृष्ण के सहचर, सखा रूप में अनुभूत करने लगते हैं। जब ईश्वर को नेति-नेति कहकर मानव उसे पूजता है तो उसके मानस में सदैव दासत्व भाव का ही प्रस्फुटन होता है। कवि ने श्रीकृष्ण के ईश्वरीय अवतार को बाल लीला के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय समाज के पराश्रित, दासत्व की भाव भूमि में आशा की ज्योति का सृजन किया। यही कारण है कि उन्होंने कृष्ण का भगवान रूप नहीं अपितु सखा रूप प्रस्तुत किया है। जीवन की समस्याओं में घिरकर भी मानव को समाधान का मार्ग सदैव ही खोजते रहना चाहिए। जैसे बालक कृष्ण माखन चुराते हुए पकड़े जाने पर भी हार नहीं मानते हैं। जहाँ बालक साथ रहेंगे विवाद तो होगा ही, ऐसे में माता-पिता का दायित्व होता है कि उनकी भावनाओं को समझते हुए बालक की समस्या का निराकरण करें। वर्तमान समय में अधिकांश माता-पिता को संतान के साथ समय व्यतीत करने तथा उनके कोमल मन को समझने के लिए समय नहीं होता है। यही कारण है कि कवि सूरदास का बाल लीला वर्णन आज के संदर्भ में अत्यधिक प्रासंगिक है। कृष्ण के द्वारा न खेलने की बात सुनकर माता उन्हें तब तक समझाती है जब तक कि वे माता की बात समझ कर संतुष्ट नहीं हो जाते। नर में ही नारायण की परिकल्पना को यदि मान लिया जाए तो बाल लीला की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए -

1. सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं।
2. कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन वात्सल्य भाव की भक्ति का आधार है।
3. बाल लीला वर्णन में सूरदास बेजोड़ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नेत्रहीन होते हुए भी वे कृष्ण के बचपन का कोना-कोना झाँक चुके हैं।

4. सूर ने वात्सल्य के पदों में ब्रज मंडल के लोक-परिवेश को जीवंत कर दिया है। ।

5. ब्रजभाषा पर सूरदास का अनोखा अधिकार है।

7.5 शब्द संपदा

1. चेष्टा = कोशिश, प्रयत्न
2. मोहक = लुभावना
3. छटा = छवि, शोभा
4. अनुपम = बेजोड़, सर्वोत्तम
5. उमंग = उल्लास, मौज
6. निमग्न = लीन, मग्न
7. उन्मुक्त = आज़ाद, खुला
8. दृष्टि = नज़र, अवलोकन
9. निराकरण = दूर करना, हटाना
10. रोमांचित = कल्पित, कल्पना प्रधान
11. प्रमुदित = हर्षित, आनंदित
12. प्रज्ञाचक्षु = बुद्धिमान, ज्ञानी
13. परिहास = उपहास, मज़ाक
14. वाकचातुरी = बोलने में चतुर
15. दुर्लभ = कठिनता से प्राप्त होने वाला, दुष्प्राप्य
16. दायित्व = सरंक्षण
17. दिव्यचक्षु = श्रेष्ठ दृष्टि, अलौकिक दृष्टि
18. क्रीडास्थल = खेल का मैदान
19. तत्परता = निपुणता, दक्षता

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. सूरदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
2. कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. सूरदास के बाल लीला वर्णन के माध्यम से बाल मनोविज्ञान पर प्रकाश डालिए।
4. वात्सल्य रस के प्रतिनिधि कवि के रूप में सूरदास का परिचय दीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो' पद का भाव स्पष्ट कीजिए।
2. 'मैया मोरी दाऊ बहुत खिझायो' पद में चित्रित बाल मनोविज्ञान पर प्रकाश डालिए।
3. बालक की गलती करने पर अभिभावक के व्यवहार का यशोदा के चरित्र के माध्यम से विवेचन कीजिए।
4. बाल लीला वर्णन में कवि ने किन भावों का विश्लेषण किया है?
5. बाल लीला वर्णन की प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. सूरदास का जन्म किस गाँव में हुआ था? ( )

   (अ) बांदा (आ) रुनकता (इ) चित्रकूट

2. 'साहित्य लहरी' किसकी रचना है? ( )

   (अ) विष्णुदास (आ) तुलसीदास (इ) सूरदास

3. हिंदी साहित्य में वात्सल्य रस का महाकवि किसे माना जाता है? ( )

   (अ) सूरदास (आ) मीराबाई (इ) सुभद्राकुमारी चौहान

4. सूरदास की काव्य भाषा क्या है? ( )

   (अ) मैथिली (आ) भोजपुरी (इ) ब्रज

5. कृष्ण ने क्या चुराया था? ( )

   (अ) दही (आ) माखन (इ) बाँसुरी

6. कृष्ण को बलदाऊ किस बात के लिए चिढ़ाते थे? ( )

   (अ) गौर वर्ण के लिए (आ) श्याम वर्ण के लिए (इ) छोटे कद के लिए

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. सूर सागर का प्रणयन .... ने किया है।
2. छीकें को ऊँचाई पर .... लटकाती थी।
3. कृष्ण माता यशोदा के पास .... की शिकायत करने आए थे।
4. कृष्ण के अनुसार यशोदा हमेशा .... को मारती थी।

5. यशोदा ने ………… की सौगंध खायी।

III सुमेल कीजिए।

i) छींके पर भाजन	(अ) को है तेरौ तात
ii) नान्हें कर अपने	(आ) ऊंचे धरि लटकायो
iii) कौन है माता	(इ) तू कत स्यामल गात
iv) गोरे नंद जसोदा गोरी	(ई) मैं कैसें करि पायो

7.8 पठनीय पुस्तकें

1. सूर के पद. सूरदास.
2. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा.
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, बाबू गुलाबराय.
4. सूर और उनका साहित्य, हरबंशलाल शर्मा.
5. सूरदास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, (सं) विश्वनाथप्रसाद मिश्र.

इकाई 8 : भ्रमरगीत

रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मूल पाठ : भ्रमरगीत
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
8.4 पाठ सार
8.5 पाठ की उपलब्धियाँ
8.6 शब्द संपदा
8.7 परीक्षार्थ प्रश्न
8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि हिंदी साहित्य के इतिहास को चार भागों में बाँटा गया है, यथा- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल। इनमें से भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस युग में ईश्वर की उपासना निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति के रूप में होने लगी थी। सगुण भक्ति में रामभक्ति और कृष्णभक्ति नामक दो भेद हैं। प्रस्तुत पाठ के कवि सूरदास को भक्तिकाल के कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माना जाता है। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा अष्टछाप के कवियों में प्रमुख थे। उनकी भक्ति के मार्ग को पुष्टिमार्ग कहा जाता है। सूरदास ने अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया था। उनका मानना था कि कृष्ण स्वयं प्रेममय हैं और उनका यह दृढ़ विश्वास भी था कि कृष्ण का अवतार भी प्रेम के वशीभूत हुआ है। अपनी रचनाओं में सौंदर्यपूर्ण एवं माधुर्यपूर्ण पक्ष को उभारकर सूरदास ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया। शृंगार के दोनों पक्ष तथा वात्सल्य रस के वर्णन में सूरदास प्रवीण थे। कृष्ण की बाल्यावस्था, कोशोरावस्था के मनोहारी चित्र सूरदास की रचनाओं की विशेषता है। प्रस्तुत पाठ में सूरदास की रचना क्षमता का परिचय हम दो अलग शैली के पदों से प्राप्त कर सकते हैं। एक पद में गोपियों की विरह पीड़ा अभिव्यक्त हुई है तो दूसरे में कृष्ण के प्रति माँ की ममता वात्सल्य के चिह्न के रूप में सम्मिलित है। सूरदास के पद गेय होते हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप सूरदास के दो पदों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- सूरदास के रचना संसार से परिचित हो सकेंगे।
- कृष्ण वियोग की पीड़ा से माता यशोदा एवं गोपियों की विरहानुभूति से अवगत हो सकेंगे।
- सूरदास के शृंगार वर्णन तथा वात्सल्य वर्णन का परिचय पा सकेंगे।
- कृष्णभक्ति के महत्व को जान सकेंगे।
- भ्रमरगीत की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

8.3 मूल पाठ : भ्रमरगीत

(क) अध्येय कविता का परिचय

भागवत् की प्रेरणा से सूरदास ने 'सूरसागर' ग्रंथ की रचना की है। इसमें भ्रमरगीत सार प्रसंग द्वारा सूरदास ने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य प्रीति को गोपियों की उपालंभ स्थिति के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इसके अंतर्गत उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से गोपियों के श्री कृष्ण के प्रति प्रेम की गूढ़ता झलकती है। वृंदावन के सुखमय जीवन में गोपियों के कृष्ण के प्रति प्रेम का उदय होता है। कृष्ण के सौंदर्य और मनोहर चेष्टाओं को देखकर गोपियाँ मुग्ध होती हैं और कृष्ण की किशोरावस्था की स्वाभाविक चपलतावश उनकी छेड़छाड़ प्रारंभ करती हैं। कृष्ण प्रेम में लीन वृंदावन में सूनापन तब छा जाता है जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। कृष्ण अपने सखा उद्धव को प्रेम और भक्ति की महत्ता समझाने के लिए ब्रज भेजते हैं। उद्धव गोपियों को ज्ञान-योग के उपदेश देने लगे, गोपियों को उनकी बात अच्छी नहीं लगी और वे भ्रमर के माध्यम से उद्धव तथा उद्धव के बहाने से श्रीकृष्ण के प्रति अपने उपालंभ को प्रेषित करती हैं। इस संवाद के माध्यम से निर्गुण भक्ति तथा ज्ञान योग का खंडन तथा सगुण एवं प्रेम भक्ति का मंडन किया गया है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों के न केवल विरह का चित्रण है बल्कि इसमें भक्ति और प्रेम की पराकाष्ठा भी झलकती है। इसमें गोपियों की विरह वेदना अभिव्यक्त हुई है। प्रस्तुत पदों में भी विरह का ही चित्रण है। प्रथम पद में प्रकृति के उद्दीपन से विरह वर्णन किया गया है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो वस्तुएँ संयोगावस्था में सुखदायी होती हैं वही वियोग में दुखदायी लगने लगती हैं। दूसरे पद में यशोदा और उद्धव के बीच का संवाद है जिसमें यशोदा देवकी को संदेश भेजती है। यशोदा अपने आप को धाय मानते हुए कृष्ण के प्रति अपने वात्सल्य प्रेम को दर्शाती है। देवकी जन्मदायिनी माँ होने पर भी पालने वाली माँ यशोदा ही थी। अत: यशोदा के

मन में कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम है। सूरदास ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ एक माँ की ममता को अभिव्यक्त किया है।

(ख) अध्येय पद

[1]

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजै।
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह करद करि मारत लुंजै।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

[2]

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती करम-करम करि न्हाते॥
तुम तौ टेब जानतिहिं ह्वैहौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहि, माखन- रोटी भावै।
अब यह सूर मोहिं निसिबासर बडो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक-लडैते लालन ह्वैहैं करत संकोच॥

निर्देश : इन पदों का सस्वर वाचन कीजिए।
इन पदों का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै॥

शब्दार्थ : गोपाल = कृष्ण। बैरिन = दुश्मन। भई = लगना। कुंजै = रासक्रीडा जहाँ होती थी। लता = पेड़, पौधे, वृक्ष। शीतल = ठंडक। विषम ज्वाल = दग्ध करनेवाली ज्वाला। पुंजै = आग की पुंज।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत से लिया गया है। इसमें गोपियों की कृष्ण के प्रति विरह की पीड़ा झलकती है।

प्रसंग : श्रीकृष्ण जब ब्रज में रहते हैं तब गोपिकाएँ उनके प्रेम में डूबी रहती हैं। प्रकृति के हर एक कण में प्रेम झलकता है। प्रकृति सुंदर मनोहारी लगने लगती है। लेकिन, जब कृष्ण कर्तव्य पथ पर

अग्रसर होने हेतु मथुरा चले जाते हैं तो गोपियाँ उनके वियोग में उदास हो जाती हैं। जो प्रकृति कृष्ण सामीप्य से सुंदर लगती थी, वियोग में दुखदायी लगती है।

व्याख्या : उद्धव से संवाद करते हुए गोपिकाएँ अपने मन में व्याप्त कृष्ण प्रेम को दर्शाने हेतु प्रकृति का सहारा लेती हैं। प्रकृति का उद्दीपन देकर समझाती हैं कि वियोगावस्था कितनी दुखदायी है। वे कहती हैं कि बिना गोपाल के वे सारे कुंज अब हमारे दुश्मन लगने लगी हैं। इन्हें देख-देखकर हमें कृष्ण की स्मृति अधिक सताने लगती है। कृष्ण जब हमारे साथ थे, तब ये लताएँ शीतल लगती थीं, परंतु अब उनके बिना ये भयंकर अग्निज्वालाओं के समूह के समान हमें दग्ध करनेवाले पुंज लगती हैं।

विशेष : गोपियों के प्रेम की पराकाष्ठा का आभास होता है। गोपियों के माध्यम से सूरदास का कृष्ण के प्रति प्रेम भाव झलक रहा है। लताएँ कभी नहीं जलाती हैं लेकिन यहाँ वियोग की दशा को समझाने के लिए विषम ज्वाल शब्द का प्रयोग किया गया है। शीतल लताएँ जब ज्वाल की पुंज लगती हैं तो प्रेम की गहराई का हम कल्पना कर सकते हैं। प्रकृति के उद्दीपन का यह चित्रण है। जायसी के नागमति वियोग वर्णन, साकेत में उर्मिला का वियोग वर्णन, राम के वियोग में सीता सभी जब वियोग में रहते हैं। संयोग की अवस्था में जो प्रकृति मनोहारी लगती है, वही वियोग की स्थिति में पीड़ा को बढ़ाती है। शीतल हवा भी आग लगाती हुई प्रतीत होती है।

बोध प्रश्न

1. गोपियाँ किससे संवाद करती हैं?
2. गोपियों के वियोग का क्या कारण है?
3. लताएँ गोपिय़ों को क्यों जलाती हैं?

वृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजै
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥

शब्दार्थ : वृथा = बेकार, बेमतलब, बिना कोई प्रयोजन के। जमुना = यमुना नदी। खग = पक्षी। बोलत = बोलना, चहल पहल करना। अली = भ्रमर, भंवरा जो फूलों से रस लेता है। घनसार = कपूर। दधिसुत = समुद्र का पुत्र अर्थात् चंद्रमा। भुंजै = भूनती है।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत से लिया गया है। इसमें गोपियों की कृष्ण के प्रति विरह की पीड़ा झलकती है।

प्रसंग : मधुबन में जब कृष्ण के संग रासक्रीडा होती थी, तो गोपिकाएँ कृष्ण प्रेम में लीन रहती थीं। कृष्ण की बाँसुरी, किशोर सुलभ चेष्टाएँ संतोषजनक होती थीं। लेकिन कृष्ण के मथुरा जाने के बाद ब्रज में वियोग की लहर चल रही है। प्रकृति नीरस लगने लगती है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जाकर अपने कृष्ण से कहो कि यहाँ न केवल गोपियाँ, बल्कि नदी, पहाड़, वृक्ष, खग सभी वियोग में उदास हैं। ऐसा लगता है कि यमुना नदि के बहने में कोई चंचलता नहीं है। पक्षी के बोलने में भी पहले की चहल-पहल नहीं है, बेकार ही पक्षी बोल रही है। कमल का फ़ूल बस खिलने के लिए खिला है और उस पर भ्रमर व्यर्थ गुंजार कर रहे हैं। कहने का अर्थ है कि कृष्ण के बिना नदी, पक्षी, कमल, भ्रमर सभी दुखी एवं व्याकुल हैं इसलिए प्रकृति नीरस लगने लगती है। हवा के बहने में कोई आनंद नहीं है। जब कृष्ण साथ में थे तो पानी, कपूर, चंद्रमा सभी संजीवनी बूटी लगते थे जो अब दग्ध करने के साधन लगते हैं। चंद्रमा की शीतल किरणें सुख और शांति प्रदान करती थीं, परंतु अब वही ग्रीष्मकालीन सूर्य की तेज किरणों की भाँति जला रही हैं।

विशेष : अतिशयोक्ति अलंकार है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन है। सूरदास के सारे पद गेय पद हैं। अर्थात् उन्हें राग में गाया जा सकता है। प्रस्तुत पद का राग 'राग सारंग' है। यमुना नदी, पक्षी, कमल, भंवरे के माध्यम से विरह की पीड़ा को दर्शाया गया है। मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

बोध प्रश्न

4. प्रकृति के किन-किन तत्वों के आधार पर विरह का वर्णन किया गया है?
5. यह पद किस राग में रचित है?
6. पवन-पानी घनसार को संजीविनी क्यों कहा गया है?

ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह करद करि मारत लुंजै।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

शब्दार्थ : ऊधो = उद्धव। कहियो= कहना। बिरह = विरह। करद करि = छुरी मारना। लुंजै = लुंज पुंज करना, जर्जर बनाना। बरन = वर्ण, रंग। गुंजै = गुंजा, घुंघुची (लाल वर्ण का फल)

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को सूरदास के पद से लिया गया है। विरहाभिव्यक्ति की अभिव्यंजना इस पद की विशेषता है।

प्रसंग : सुख के दिनों में सभी सुखी लगते हैं। सुख में रहते हुए हम दूसरों की चिंता नहीं करते हैं, लेकिन जब दुखी होते हैं तो दूसरों की चिंता करते हैं। दुख, पीड़ा, वेदना जीवन में बहुत कुछ सिखा जाती हैं। प्रकृति को भी हम दुख में ही गहराई से देखते हैं। हवा तो प्रतिपल बह रही है, किंतु सुख में हवा के बहने का इतना मतलब नहीं है जितना कि दुख में। क्योंकि प्रकृति संयोग की यादों को ताजा करती है जिससे दुख दुगुना होता है।

व्याख्या : गोपियाँ, उद्धव से कहती हैं कि जाकर माधव से कहिए कि विरह की व्यथा छुरी समान हमारे अंग-प्रत्यंग को लुंज-पुंज कर रही है। ऐसा लग रहा है कि विरह से युद्ध चल रहा है

जिससे हम निशक्त और प्राणहीन होने लगे हैं। सूरदास कहते हैं कि प्रभु श्रीकृष्ण की राह देखते-देखते गोपियों की आँखें गुंजा के समान लाल हो गई हैं।

विशेष: यहाँ करद करि अर्थात् छुरी मारना शब्द का प्रयोग किया गया है। यह उक्ति भारतीय प्रयोग के अनुकूल न होकर फ़ारसी परंपरा के अनुकूल है। विरह की पीड़ा की गहराई का मार्मिक चित्रण है। गोपियों के माध्यम से स्वयं सूरदास कृष्ण की राह ताक रहे हैं। इस पद में कृष्ण के दर्शन की कामना है।

बोध प्रश्न

7. 'करद करि मारत लुंजै' का अर्थ स्पष्ट करें।
8. गोपियाँ उद्धव से क्या कहने का प्रयास कर रही हैं?

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥

शब्दार्थ : संदेसो = संदेश। कहियो = कहना। हौं = हूँ, होना। धाय = दाई, धात्री। तिहारे = तुम्हारे।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को सूरदास के भ्रमरगीत से उद्घृत किया गया है। वात्सल्य भाव के उदाहरण के रूप में यह पद अत्यंत मार्मिक और उल्लेखनीय है।

प्रसंग : यशोदा कृष्ण को अपनी कोखजायी संतान से बढ़कर मानती है और उनका लालन-पालन बड़े ही जतन और वात्सल्य से करती है। सूरदास के पदों को पढ़ने से उसकी जीवंतता समझ में आती है। प्रत्येक दृश्य आँखों के सामने चित्रित होने लगता है। माँ बेटे के बीच के वात्सल्य भाव की ऐसी मनमोहक अभिव्यक्ति शायद ही अन्यत्र मिले।

व्याख्या : कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद माँ का हृदय वात्सल्य भाव से ओत-प्रोत होकर विकल होने लगता है। कृष्ण का दूत बनकर उद्धव जब वृंदावन आते हैं तो माता यशोदा देवकी के पास संदेश भेजती है। यशोदा अपने आप को धाय मानते हुए कहती हैं कि हे उद्धव! मेरा संदेश देवकी तक पहुँचाना। उनके पुत्र की मैं धाय हूँ। मेरे ऊपर कृपा दृष्टि बनाए रखना।

विशेष : यशोदा के मन में अहं की भावना कदापि नहीं है। वह अपने आप को कृष्ण की दाई मानती है। यह पद वात्सल्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बोध प्रश्न

9. कृष्ण के लिए कौन व्याकुल हैं? और क्यों?
10. यशोदा किसके नाम संदेश भेजती है?
11. यशोदा अपने-आप को धाय क्यों मानती है?

उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती करम-करम करि न्हाते॥

शब्दार्थ : उबटन तेल = तिल, सरसों, चिरौंजी आदि का लेप। तातो = गरम। भजि जाते = भाग जाते। जोइ-जोइ = जो-जो। माँगत = माँगना। सोइ-सोइ = सो-सो। करम-करम = धीरे-धीरे। न्हाते = नहलाते।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों को सूरदास कृत भ्रमरगीत से लिया गया है। सूरदास ने मातृ प्रेम को दर्शाया है।

प्रसंग : कृष्ण के बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन सूरदास ने अत्यंत मनोहारी ढंग से किया है। बच्चे जो भी चेष्टाएँ करते हैं उसमें एक प्रकार आनंद माँ-बाप को मिलती है। सूरदास ने कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन इतनी सहजता से किया है कि विभिन्न हाव-भाव दृश्यगत होने लगते हैं। मैय्या यशोदा अपने बालक की इन चेष्टाओं को बार-बार याद करती हैं।

व्याख्या : यशोदा देवकी को जो संदेश भेजती हैं, उसमें वह कृष्ण की बालसुलभ चेष्टाओं का वर्णन करती हैं। वह कहती हैं कि नहलाने के लिए जब उबटन, तेल और गरम पानी निकाला जाता, तो तुरंत कृष्ण वहाँ से भाग जाते। फ़िर बड़े ही जतन से, उन्हें मनाते हुए जो-जो माँगते, सो-सो देकर धीरे-धीरे उन्हें नहलाया जाता था।

विशेष : स्मरण शैली। यशोदा के माध्यम से कृष्ण की बाल चेष्टाओं का बखान किया गया है। बच्चे ऐसी चेष्टाएँ करते हैं। इस पद में इनका स्वाभाविक चित्रण किया गया है। जोइ-जोइ, सोइ-सोइ, करम-करम में पुनरुक्ति है।

बोध प्रश्न

12. कृष्ण को नहलाने के लिए यशोदा को क्या-क्या करना पडता था?

तुम तौ टेब जानतिहिं ह्वैहौ तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहि, माखन-रोटी भावै ।

शब्दार्थ : टेब = सब, भावै = चाहिए।

संदर्भ : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत से उद्धृत है। सूरदास ने वात्सल्य भाव की महत्ता को इस पद में दर्शाया है।

प्रसंग: संतान के प्रति माँ-बाप के मन में जो वात्सल्य की भावना होती है, उसकी तुलना किसी अन्य भाव से करना कठिन है। संतान चाहे जैसे भी हों माँ-बाप के मन में उनके प्रति वात्सल्य कम नहीं होगी। यशोदा भले ही कृष्ण की माँ नहीं थी, लेकिन यशोदा ने कृष्ण का पालन अपने

संतान से भी बढ़कर किया है और कृष्ण भी उन्हें मैय्या कहकर संबोधित करते थे। पुत्र वियोग में एक माँ के मन की भावनाओं का सुंदर चित्रण है।

व्याख्या : यशोदा उद्धव के माध्यम से जब देवकी को संदेश पहुँचाती है तो उसमें कृष्ण के प्रति चिंता ही अभिव्यक्त होती है। धाय बनकर कृष्ण का लालन-पालन करने के बावजूद कृष्ण उन्हें मैय्या कहकर संबोधित करते थे। इसलिए वह कहती हैं, कृष्ण मुझे माँ कहकर ही पुकारता था, अतः यह माँ का हृदय अपने बेटे से दूर होकर तड़प रहा है। इसलिए यह संदेशा भेज रही हूँ। तुम्हारी जानकारी के लिए कह रही हूँ कि मेरे लाड्ले लाल अर्थात् कृष्ण को माखन-रोटी प्रिय है, इसलिए सुबह-सुबह मैं उसे माखन रोटी खिला देती हूँ।

विशेष : ब्रजभाषा की सुंदर अभिव्यक्ति। मुक्तक शैली में इस पद की रचना हुई है। राग सोरठा है। लाल लडैतेहि - अनुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

13. इन पंक्तियों में यशोदा देवकी को क्या संदेश देती हैं?
14. बाल कृष्ण को सवेरे उठते ही क्या चाहिए?

अब यह सूर मोहिं निसिबासर बडो रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक-लडैते लालन ह्वैहैं करत संकोच ॥

शब्दार्थ : निसिबासर = दिन रात। जिय = मन। अलक-लडैते = अत्यधिक लाडला। लालन = कृष्ण, लाल।

संदर्भ : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत से उद्धृत है। सूरदास ने वात्सल्य भाव की महत्ता को इस पद में दर्शाया है।

प्रसंग : बच्चे को जो कुछ भी चाहिए, एक माँ से बढ़कर कौन जानता है? यशोदा ने कृष्ण को पाला है। कृष्ण की प्रत्येक बाल चेष्टा का ज्ञान यशोदा को है। उनसे अच्छा कोई और कृष्ण को नहीं जान सकते हैं। अब कृष्ण से दूर रहना उनके लिए कष्टकर लगता है। वह अपनी मन की दशा को व्याकुल होकर अभिव्यक्त करती हैं।

व्याख्या : यशोदा की इस व्याकुलता केवल यशोदा की व्याकुलता नहीं बल्कि सूरदास की व्याकुलता है। सूरदास यशोदा के माध्यम से अपने मन की व्याकुलता को दर्शाते हैं। यशोदा पथिक से अपने मन की व्याकुलता व्यक्त करती हुई कहती हैं कि मुझे दिन-रात यही चिंता सताती रहती है कि मेरा अत्यधिक लाडला कृष्ण अभी तुमसे कुछ माँगने में संकोच तो नहीं कर रहा।

विशेष : सरल ब्रज भाषा प्रयोग। यह पद मुक्तक शैली में रचित है। इसका राग सोरठा है। पूरे पद में मनोवैज्ञानिकता एवं सहजता झलकती है। इस पद में वात्सल्य के वियोग पक्ष का वर्णन हुआ है।

बोध प्रश्न

15. यहाँ यशोदा की मनोदशा कैसी है?

काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास का पूरा जीवन कृष्ण भक्ति के लिए समर्पित था। सूरदास ने कृष्ण की सभी प्रकार की चेष्टाओं को अपनी रचना में समाहित किया है। प्रत्येक वर्णन अनूठी है। सूरदास की प्रामाणिक रचनाओं में सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी उल्लेखनीय हैं। श्रीमद् भागवत् पुराण के आधार पर सूरसागर की रचना हुई है। सूरसागर में 12 स्कंध हैं। कहा जाता है कि इसमें सवा लाख पद थे किंतु लगभग 6000 पद ही उपलब्ध होते हैं। भ्रमरगीत सूरसागर का एक अंश है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'भ्रमरगीत सार' के रूप में इन पदों को संकलित किया है। भ्रमरगीत में सूरदास ने गोपियों की उपालंभ स्थिति द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को अभिव्यक्त किया है। उपर्युक्त दोनों पदों को भ्रमरगीत से ही लिया गया है। प्रथम पद में गोपियों की कृष्ण के लिए व्याकुलता अभिव्यक्त हुई है तो दूसरे पद में एक माँ की पुत्र के लिए व्याकुलता। एक में वियोग शृंगार रस है, तो दूसरे पद में वात्सल्य वियोग रस।

माना जाता है कि भ्रमरगीत की रचना सूरदास ने मुख्य रूप से निर्गुण मत का खंडन करते हुए प्रेम और भक्ति के द्वारा सगुण उपासना के समर्थन के लिए की है। उद्धव गोपी संवाद के माध्यम से उद्धव के मन में व्याप्त अहंकार को नष्ट करते हुए प्रेम-भक्ति की स्थापना की गई है। उद्धव की ज्ञान भरी बातें गोपियों को उचित नहीं लगतीं, क्योंकि वे कृष्ण प्रेम में लीन हैं। प्रेम से ही भक्ति तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होता है, इस बात का दर्शन भ्रमरगीत में होता है। वियोग शृंगार का सुंदर मनोवैज्ञानिक चित्रण भ्रमरगीत की विशेषता है।

सूरदास के काव्य में ब्रज प्रदेश की प्रकृति का सुरम्य एवं आकर्षक चित्रण उपलब्ध होता है। प्रकृति की रूप माधुरी इसमें पग-पग देखी जा सकती है। संयोग में जो प्रकृति रोचक एवं आनंद प्रदायक होती है, वही प्रकृति वियोग में पीड़ा का कारण बनती है। प्रकृति के माध्यम से सूरदास संयोग-वियोग की परिकल्पना की है। कृष्ण वृंदावन में गौएँ चराते हैं, वन में विहार करते हुए महारास रचाते हैं। कुंजों में विहार करते हैं। संयोग में प्रकृति के सारे दृश्य मनमोहक लगते हैं, लेकिन वियोग में यही कुंज, यही वृक्ष और लताएँ बाधा पहुँचाती हैं। यहाँ तक कि चंद्रमा भी शीतल तथा रुचिकर नहीं लगती।

सूरदास वात्सल्य के सम्राट हैं। उनका वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की अपूर्व निधि है। यशोदा के बहाने उन्होंने मातृहृदय का स्वाभाविक एवं सरल हृदयग्राही चित्र खींचा है। वात्सल्य के दोनों पक्ष - संयोग तथा वियोग का चित्रण सूर काव्य की विशेषता है। तन्मयता, स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता एवं सहजता वात्सल्य वर्णन में देखने को मिलती है।

बोध प्रश्न

16. भ्रमरगीत की रचना का उद्देश्य क्या है?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास के वात्सल्य वर्णन की प्रशंसा करते हुए लिखा है- “आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं।” इस गंभीर व गहन उक्ति से रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास की काव्यगत विशेषता को हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिष्ठित किया है।

हिंदी साहित्य में सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास का जन 1478 में दिल्ली के पास सीही में हुआ था। कुछ विद्वान उनका जन्म आगरा के पास रुनकता भी मानते हैं। इनका निधन 1583 में पारसोली में हुआ। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे जो पुष्टि मार्ग के अनुयायी थे। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक संत थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समानता से देखते थे। उनमें आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति पहले से ही विद्यमान थी। इष्टदेव में दृढ़ विश्वास, उसका गुणगान, सर्वस्व अर्पण की भावना, दैन्य निरूपण सूर के काव्य में उपलब्ध होते हैं। प्रारंभिक पदों में विनय, वैराग्य, आंतरिक साधना, गुरु का महत्व आदि विषयों से संबंधित पद सम्मिलित हैं। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के उपरांत जो पद उन्होंने रचे वे प्रेमलक्षणा भक्ति से संबंधित हैं।

सूरदास ने अपना सारा जीवन कृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया था। उनकी भक्ति सख्य भाव की है। कृष्ण को वे अपना सखा मानते हैं। इस सख्य भाव के साथ सूरदास ने नंद यशोदा का वात्सल्य भाव, राधा गोपियों का दांपत्य प्रेम एवं माधुर्य भाव की सुंदर अभिव्यंजना की है। गोपी लीला के अंतर्गत कृष्ण एवं गोपियों के जिस प्रेम का चित्रण सूरदास ने किया है उसमें उनकी भक्ति-भावना पराकाष्ठा पर पहुँची है।

सूरदास के वात्सल्य वर्णन को हिंदी साहित्य के लिए अनुपम निधि माना जाता है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि “बाल सौंदर्य एवं स्वभाव के चित्रण में जितनी सफलता सूर को मिली है, उतनी अन्य किसी को नहीं। वे अपनी बंद आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आए हैं।” सूर ने बाल हृदय का चित्रण चित्ताकर्षक ढंग से किया है। बालकों के मनोभाव, खीझ, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, बुद्धि चातुर्य, अपराध को छिपाने की प्रवृत्ति, भोले-भाले तर्क आदि सभी

गुणों का वर्णन सूरदास ने अपने पदों में किया है। माता यशोदा के साथ उनके संबंधों का मार्मिक चित्रण इन पदों की विशेषता है। माखन चोरी की बात हो, गोपियों की शिकायत हो या बाल आक्रोश की भावना हो सूरदास इन सभी वर्णनों में अद्वितीय हैं। संयोग तथा वियोग वात्सल्य वर्णन उन्होंने पूरी तल्लीनता के साथ की है। विशेष रूप से कृष्ण के मथुरा जाने के बाद यशोदा के मन की स्थिति का चित्रण।

सूरदास के पदों में गेय तत्व विद्यमान हैं। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के मधुर चित्रों के अंकन सूर अत्यंत तन्मयता के साथ अपने पदों में करते हैं। गीतिकाव्य के सारे तत्व उनके पदों में उपलब्ध हैं। विरह की अभिव्यक्ति से पाठक हृदय भाव विभोर हो उठता है।

सूरदास की वचनवक्रता भी भावप्रेरित है इसलिए रमणीय है। विनोद, चपलता, भोलापन सब कुछ उसमें निहित है। भ्रमरगीत में शब्द वक्रोक्ति है। व्यंग्यार्थ, भाव-प्रवणता से उसे श्रेष्ठता मिलती है। भ्रमरगीत में गोपियों का उद्धव से संवाद होता है जिसके माध्यम से प्रेमा-भक्ति का मंडन किया जाता है। गोपियों के इन कथनों को भ्रमरगीत इसलिए कहा गया है - भ्रमर के माध्यम से उद्धव तथा उद्धव के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रति अपने उपालंभ को गोपियाँ प्रेषित करती हैं। श्रीकृष्ण की प्रवृत्ति को भी वे भ्रमरवृत्ति कहती हैं जिन्होंने पहले तो गोपियों से प्रेम किया और उनसे दूर होने पर कुब्जा से प्रीति जोड़ ली। वे उद्धव के सामने अपने कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम-भक्ति की पुष्टि करती हैं।

उनकी भाषा के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि "यदि भाषा को लेकर देखते हैं, तो वह ब्रज की चलती बोली होने पर भी एक साहित्यिक भाषा के रूप में मिलती है, जो प्रांतों में कुछ प्रचलित शब्दों और प्रत्ययों के साथ-साथ पुरानी काव्य-भाषा अपभ्रंश के शब्दों को लिए हुए हैं। सूर की भाषा बिल्कुल बोलचाल की ब्रजभाषा नहीं है। ब्रजभाषा के नए पुराने प्रयोग भी मिलते हैं। कुछ पंजाबी प्रयोग भी मौजूद हैं। ये सब बातें एक व्यापक काव्य-भाषा के अस्तित्व की सूचना देती हैं।" (भ्रमरगीत सार, सं. रामचंद्र शुक्ल)

बोध प्रश्न

17. भ्रमरगीत में किसका निरूपण किया गया है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! 'भ्रमरगीत' विषयक सूरदास के पदों का अध्ययन करने से आप यह समझ गए होंगे कि इन पदों में कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों और माता यशोदा के मनोभावों को प्रकट किया गया है। इन पदों का संबंध कृष्ण की किशोरावस्था और बाल्यावस्था की लीलाओं के स्मरण से है। आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि सूरदास ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन क्यों किया। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं, अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में सूरदास दास्य

भक्ति से परिपूर्ण विनय के पद रचते थे। बाद में आचार्य वल्लभ ने उन्हें श्रीमद् भगवत् के दसवें स्कंध का उपदेश दिया। इसमें भगवान विष्णु के दस अवतारों में से एक श्रीकृष्ण के अवतार और उनकी लीलाओं का वर्णन है। आचार्य वल्लभ ने सूरदास को इसके आधार पर लीला वर्णन के लिए कहा। सूरदास ने अपनी रुचि के अनुसार कृष्ण की बालक और किशोर अवस्था की लीलाओं को अपनी पद रचना का आधार बनाया। छात्रो! कृष्ण भक्ति परंपरा में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना और निरंतर उन्हीं का चिंतन, मनन और कीर्तन करना भक्त की दिनचर्या का अनिवार्य अंग होता है। इसीके अनुरूप सूरदास ने कृष्ण की लीलाओं का गायन किया।

कृष्ण की किशोरावस्था की लीला के दो पक्ष हैं - संयोग और वियोग। कृष्ण जब गोकुल में थे उस समय की उनकी लीलाएँ संयोग शृंगार का आधार हैं तथा उनके मथुरा जाने के बाद की स्थितियाँ वियोग शृंगार का आधार बनी हैं। इस वियोग का आलंबन कृष्ण है और आश्रय समस्त ब्रज मंडल। कृष्ण के विरह में केवल उनकी माता और प्रियतमा ही दुखी नहीं हैं बल्कि ब्रज की गायों से लेकर वृंदावन के मयूरों तक सभी पशु-पक्षी भी समान रूप से दुखी हैं। और तो और यमुना नदी भी विरह में व्याकुल है। पुष्टिमार्गीय साधना की दृष्टि से कृष्ण के विरह का अनुभव करने वाले इन सभी पात्रों के साथ साधक या भक्त अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करता है। इसका अर्थ है कि ब्रज मंडल की विरह व्यथा स्वयं भक्त की विरह व्यथा बन जाती है। सूरदास ने कृष्ण के विरह में व्याकुल पात्रों के हृदय से तादात्म्य करके अपने आराध्य कृष्ण के वियोग की पीड़ा को अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। इसके लिए उन्होंने श्रीमद् भगवत् के आधार पर इस आख्यान का काव्यात्मक विस्तार किया है कि केवल ब्रजमंडल ही कृष्ण को याद करके नहीं तड़पता बल्कि स्वयं कृष्ण भी ब्रजमंडल से दूर होकर उतने ही बेचैन होते हैं।

भक्त और भगवान के बीच यह रागात्मक संबंध माधुर्य भाव की भक्ति का केंद्र है। कृष्ण अपने मित्र उद्धव से कहते हैं - हे उद्धव! मैं ब्रज को भूल नहीं पाता हूँ। कृष्ण को कभी यशोदा तो कभी राधा या गोपियों, या कभी बाल सखाओं या गोधन की याद सताती है। उन्हें पता है कि वे सब भी कृष्ण के बिना कष्ट में हैं। लेकिन उद्धव उनके इस प्रेम को समझ नहीं पाते तथा वैराग्य और ज्ञान की बातें करने लगते हैं। इस पर कृष्ण उन्हें गोकुल भेजते हैं कि वे गोकुलवासियों को ज्ञान का उपदेश दें। वास्तव में कृष्ण उन्हें प्रेम की महिमा समझाने के लिए ऐसा करते हैं। उद्धव गोकुल जाते हैं और गोपियों सहित समस्त गोकुलवासियों को योग, वैराग्य तथा निर्गुण भक्ति का उपदेश देते हैं। गोपियाँ उन्हें कृष्ण का अंतरंग मित्र मानती हैं इसलिए सीधे-सीधे उनकी बात नहीं काटतीं। लेकिन अपनी बात उनके सामने रखती अवश्य हैं। कहा जाता है कि उसी समय वहाँ कोई भ्रमर (भँवरा) उड़ता हुआ आ जाता है। इस भ्रमर को संबोधित करके गोपियाँ बातों ही बातों में निर्गुणवाद और ज्ञानमार्ग की खूब खिल्ली उड़ाती हैं। वे अन्योक्ति के माध्यम से उद्धव को यह समझाने का प्रयास करती हैं कि कृष्ण को भूलकर किसी अन्य ब्रह्म-तत्व की उपासना करना उनके लिए संभव नहीं है। अपनी विरह वेदना को प्रकट करने के लिए वे उद्धव को बताती हैं कि संपूर्ण प्रकृति का अनुभव भी अब उनके लिए विपरीत हो गया है। सूरदास के इस विरह वर्णन की एक बड़ी विशेषता मनुष्य और प्रकृति में बिंब-प्रतिबिंब भाव का निरूपण

है। गोपिकाएँ सारी प्रकृति में अपने दुख को पसरा हुआ देखती हैं। वे सारे स्थान जो कृष्ण की उपस्थिती में संयोग के सुख को बढ़ाते थे, अब उनकी अनुपस्थिति में वियोग के दुख को बढ़ाते हैं। कुंजें हो, यमुना हो, लताएँ हो या अन्य सारे प्रकृतिक उपादान हो सभी गोपियों की विरह वेदना को बढ़ाते हैं।

बिंब-प्रतिबिंब भाव से विरह वर्णन की दृष्टि से यह गोपियों का विरह 'रामचरित मानस' में तुलसीदास द्वारा वर्णित राम के विरह वर्णन के समान है -

कहेऊ राम बियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू। कालनिसा सं निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुंतबन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम तिबिध समीरा॥

अर्थात् हे सीते! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि कालरात्रि के समान, चंद्रमा सूर्य के समान। और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करने वाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु साँप के श्वास के समान (जहरीली और गरम) हो गई है।

8.4. पाठ-सार

उपर्युक्त दोनों पदों को सूरदास कृत 'सूरसागर' के एक अंश भ्रमरगीत से लिया गया है। भ्रमरगीत में मुख्यत: वियोग की पीड़ा का वर्णन है। गोपियों का वियोग इसमें कण-कण में दिखता है तथा कृष्ण के प्रति उनके मन में जो प्रेम और भक्ति की भावना है, वह झलकती है। निर्गुण भक्ति का खंडन करने तथा सगुण भक्ति का मंडन करने के उद्देश्य से भी इसकी रचना हुई है। उद्धव के मन में जो निर्गुण ईश्वर की भक्ति तथा योग साधना का महत्व है, उसे गोपियाँ अपनी वाग्विदग्धता से चकनाचूर कर देती हैं। सूर ने यह निरूपित किया कि कृष्ण प्रेम तथा भक्ति ही सर्वोपरि है। सूर ने गोपियों के वियोग के साथ-साथ मातृ वियोग की पीड़ा को भी बखूबी व्यक्त किया है। पहले पद में गोपियों का वियोग है तो दूसरे पद में माँ का वियोग। सूरदास की रचना अगाध सागर है। उसमें डुबकी लगाना सागर से मोती लाने के बराबर है।

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. सूरदास के जीवन कृष्ण भक्ति के लिए समर्पित था।
2. सूरदास के कृष्ण परात्पर ब्रह्म के अवतार हैं।
3. सूर ने भ्रमर गीत की रचना निर्गुण मत के ऊपर सगुण भक्ति की महत्ता दर्शाने के लिए की है।

4. भ्रमरगीत में गोपियाँ भ्रमर के बहाने कृष्ण को उलाहने देती हैं।
5. सूरदास वात्सल्य और विरह के वर्णन में बेजोड़ हैं।
6. सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

8.6 शब्द संपदा

1. अष्टछाप = गोसाईं विट्ठलनाथजी द्वारा स्थापित आठ कवियों का दल -सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुज दास तथा नंददास।
2. उपालंभ = शिकायत, निंदा
3. चित्ताकर्षक = मन को आकर्षित करना
4. प्रस्फुटन = प्रयोग होना, अंकुरित होना
5. भ्रमरवृत्ति = अनेक से प्रेम करने का प्रतीकार्थ
6. वचन वक्रता = बोलने की क्षमता, वाक् क्षमता

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. पठित पदों के आधार पर सूरदास कृत भ्रमरगीत पर चर्चा कीजिए।
2. गोपियों की विरह वेदना प्रकृति के किन-किन बिंबों में चित्रित हुई है? स्पष्ट कीजिए।
3. सूरदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. सूर की भाषा एवं अभिव्यंजना पक्ष पर लेख लिखिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. संदेसो देवकी सो कहियो...पद का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
2. बिन गोपाल बैरिन...पद का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
3. सूर के वात्सल्य वर्णन पर प्रकाश डालिए।
4. सूरदास की भक्ति भावना को समझाइए।
5. पठित पद के आधार पर माता यशोदा के वात्सल्य का वर्णन कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. भ्रमरगीत इसमें संकलित है - ( )

   (अ) सूरसारावली (आ) उद्धव शतक (इ) सूरसागर

2. सूरदास इसका खंडन करते हैं- ( )

   (अ) सगुण का (आ) निर्गुण का (इ) पुष्टिमार्ग का

3. ऊधो इनमें से कौन है - ( )

   (अ) गोपियों का सखा (आ) कृष्ण का सखा (इ) सूरदास का सखा

4. भ्रमरगीत सार का संकलन इनमें से किसने किया है? ( )

   (अ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (आ) डॉ.नगेंद्र (इ) रामचंद्र शुक्ल

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. सूरदास की मृत्यु...................... नामक स्थान में हुई।
2. कृष्ण वृंदावन छोड़कर .... चले जाते हैं।
3. यशोदा ....के माध्यम से देवकी को संदेश भेजती है।
4. भ्रमरगीत में भ्रमर शब्द का प्रयोग ....और.................के लिए किया गया है।

III सुमेल कीजिए।

i) करद करि	(अ) उपालंभ काव्य
ii) यशोदा	(आ) छुरी मारना
iii) भ्रमरगीत	(इ) वात्सल्य

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. भ्रमरगीत सार, सं. रामचंद्र शुक्ल.

इकाई 9 : तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मूल पाठ : तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व
    9.3.1 तुलसीदास : जीवन परिचय
    9.3.2 रचना संसार
    9.3.3 रचनाओं का परिचयात्मक विवरण
    9.3.4 तुलसी का समाज सुधारक रूप
    9.3.5 तुलसीदास के काव्य का कलापक्ष
    9.3.6 हिंदी सहित्य में तुलसीदास का स्थान
9.4 पाठ सार
9.5 पाठ की उपलब्धियाँ
9.6 शब्द संपदा
9.7 परीक्षार्थ प्रश्न
9.8 पठनीय पुस्तकें।

9.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के पूर्व मध्यकाल अथवा भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा। भक्तिकाल में चार शाखाएँ मिलती हैं। निर्गुण भक्ति काव्य के अंतर्गत ज्ञानमार्गी शाखा व प्रेममार्गी शाखा तथा सगुण भक्ति काव्य के अंतर्गत कृष्णभक्ति शाखा व रामभक्ति शाखा। इन चारों शाखाओं की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, पर कुछ आधारभूत बातों का समावेश सबमें हैं। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्ति भाव के स्तर पर मनुष्य मात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही माना है, पर निर्गुणोपासक कबीर भी अपने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्ति भाव को गौरव एवं महत्व दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोक भाषा का माध्यम स्वीकार किया हैं। कृष्ण भक्ति काव्य ने भगवान के मधुर स्वरूप का गुणगान किया, पर उसमें जीवन की स्पष्टता नहीं है। जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना राम भक्ति काव्य में हुई। रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध मुखरित हुआ है। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव ‘रामचरितमानस’ के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ। प्रस्तुत इकाई में हम तुलसी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा करेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के द्वारा आप-

- प्रमुख भक्त कवि तुलसीदास के जीवन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तुलसी की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- तुलसी की भक्ति भावना की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- रामचरितमानस की प्रसिद्धि के कारण तथा वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता को जान सकेंगे।
- तुलसीदास की समन्वय भावना के महत्व से अवगत हो सकेंगे।
- तुलसी के जीवन दर्शन से परिचित हो सकेंगे।

9.3 मूल पाठ : तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ. ग्रियर्यन की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना करने में है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय हैं। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन के विस्तार के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य 'रामचरितमानस' राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करता है। उसमें भगवान राम के लोक मंगलकारी रूप को स्थापित किया गया है। तुलसी का साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। वर्तमान युग में तुलसी के भक्तिकाव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोक जीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण ही है।

9.3.1 तुलसीदास : जीवन परिचय

तुलसीदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। तुलसीदास के जीवनवृत्त के संबंध में गोकुलनाथ द्वारा लिखी गई 'दौ सौ वैष्णवन की वार्ता', नाभादास कृत 'भक्तमाल', बाबा वेणीमाधव दास कृत 'मूल गोसाई चरित' आदि में बताया गया है।

तुलसीदास के जन्म संवत के विषय में मतभेद है। तुलसीदास के जन्म के संबंध में दो संवत प्रचलित हैं- 1554 और 1589 विक्रमी। बाबा वेणीमाधव दास कृत 'मूल गोसाई चरित' के अनुसार तुलसी की जन्मतिथि सं. 1554 है। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'हिंदी साहित्य' में दोनों संवतों का उल्लेख इस प्रकार किया है, जिससे यह पता नहीं चलता है कि वे किसे ठीक मानते हैं। जनश्रुति के आधार पर डॉ.ग्रियर्सन ने दूसरी तिथि को प्रामाणिक माना है। अतः गोस्वामी जी का जन्म संवत 1589 वि. अर्थात् 1532 ई. ही समझना चाहिए।

इनके जन्म स्थान के संबंध में भी काफी मतभेद है। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान राजापुर मानते हैं, तो कुछ विद्वानों का कहना है कि तुलसीदास का जन्म राजापुर में नहीं, एटा जिले के सोरों में हुआ था। यह मत सूकरक्षेत्र को सोरों समझने से प्रचलन में आया है। तुलसी ने सूकरक्षेत्र का उल्लेख किया है, जो कि कदाचित सोरों है। शिवसिंह सेंगर और रामगुलाम द्विवेदी ने तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर ही माना है।

तुलसी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी बताया जाता है। जनश्रुति है कि अभुक्तमूल में जन्म होने के कारण दुर्भाग्यशाली समझ कर परिवार द्वारा त्याग दिए जाने पर उनका पालन पोषण मुनिया दासी ने किया। तुलसीदास के गुरु बाबा नरहरिदास थे। बाबा नरहरिदास तुलसीदास को सरयू और घाघरा के संगम पर स्थित सूकरक्षेत्र ले गए और पाँच वर्ष तक वहीं रहे। उन्होंने तुलसीदास को रामचरित का उपदेश दिया। वहाँ से काशी गए, जहाँ तुलसीदास ने शेष सनातन नाम के एक विद्वान के सान्निध्य में पंद्रह वर्ष शास्त्रों का अध्ययन किया। वे 'दोहावली' में स्वयं लिखते हैं कि -

घर-घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पांय।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥

बोध प्रश्न

1. बाबा बेनीमाधव दास के अनुसार तुलसी की जन्मतिथि क्या है?
2. तुलसीदास ने किस शब्द का उल्लेख किया है, जिसके आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान सोरों मानते हैं?
3. तुलसीदास अपने गुरु बाबा नरहरिदास के साथ पाँच वर्ष तक किस स्थान पर रहे?

विद्वान होने के साथ-साथ उन्हें जीवन का खरा अनुभव मिला था। सूरदास और केशवदास उनके समकालीन थे। माना जाता है कि सूरदास से उनकी भेंट भी हुई थी। काशी के अद्वैतवादी विद्वान मधुसूदन सरस्वती ने एक श्लोक में तुलसीदास की प्रशंसा करते हुए, 'उन्हें चलता-फिरता तुलसी-तरु बतलाया' था। इनके दूसरे समकालीन नाभादास ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार माना है।

तुलसी के मन में जहाँ राम के प्रति श्रद्धा थी, वहीं गुरु और माता के प्रति भी वे श्रद्धा से भरे हुए थे। उन्होंने अनेक बार स्पष्ट और गुप्त रूप से गुरु नरहरि और माता हुलसी तथा कूट द्वारा पिता आत्माराम का उल्लेख किया है, साथ ही वल्लभाचार्य का भी। उन्होंने गुरु की वंदना और महत्ता को कई रूपों में उभारा है-

बंदउं गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर स्प हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रबिकर निकर॥

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।

बंदउं गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

तुलसी रसिक और भावुक थे। वे अपनी पत्नी रत्नावली के प्रति बहुत आसक्त थे। कहा जाता है कि एक बार रत्नावली के अपने पीहर चले जाने पर वे इतने आतुर हो उठे कि बरसाती रात में उनसे मिलने जा पहुँचे। इससे संकोच में पड़ी रत्नावली ने क्षुब्ध होकर कहा कि आपका जैसा प्रेम मेरे प्रति है, यदि वैसा भगवान श्रीराम के प्रति होता, तो सांसारिक चक्र से मुक्ति मिल जाती। बात तुलसी को लग गई और उनके मन में वैराग्य का उदय हो गया। पत्नी के शब्दों को उपदेश मानकर वे घर त्याग कर साधना करने निकल गए और फिर घर वापस नहीं लौटे।

डॉ. रामदत्त भारद्वाज की मान्यता है कि तुलसी भावुक, रसिक और विनोदी थे, पर साधुता और संयम के साथ जीवन यापन करते थे। तुलसी की प्रवृत्ति रचनात्मक थी, ध्वंसात्मक नहीं। उन्होंने ऐसा मार्ग प्रशस्त किया, जिससे मानवता का कल्याण हुआ, क्योंकि आज भी उस पथ पर समाज चल रहा है। 'हनुमान पूजा', 'रामलीला' आदि इसके प्रमाण हैं, जिनसे जन-कल्याण ही हुआ। उनका व्यक्तित्व दर्शन और कला का समन्वित रूप है। 'मानस' और 'विनय पत्रिका' के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता थी कि वे विरोधी प्रतीत होने वाले तत्वों को अनुकूल एकरूपता प्रदान करने की क्षमता से युक्त थे। डॉ.रामदत्त भारद्वाज के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी जो कार्य करते थे, उसे कर लेने के बाद उसके औचित्य और अनौचित्य पर विचार करते होंगे। पत्नी के उपदेश से घर छोड़ने के बाद उन्हें कष्ट हुआ था, क्योंकि इससे उनकी पत्नी दुःखी हुई थीं। इस भाव को उन्होंने दोहावली में व्यक्त किया है कि घर पर रहकर ही भगवद् भक्ति श्रेयस्कर है। अपने विषय में उनकी कुछ उक्तियाँ भी यही प्रकट करती हैं कि वे आत्म परीक्षक थे। गोस्वामी जी सरल प्रकृति के थे। प्रायः सरल व्यक्ति स्पष्टवादी और निर्भीक होते हैं। अयोध्या और काशी में वैरागियों और पंडितों ने एवं ठगों और चोरों ने अनेक बार संकट उपस्थित किए, पर वे निडर होकर डटे रहे। वे अपनी रचनाओं में कहते हैं कि -

लोक को न डरु, परलोक को न सोचु।
तुलसीदास रघुवीर बाहुबल, सदा अभय काहू न डरै॥

तुलसी भक्त कवि होने के कारण प्रकृति को भी सियाराममय ही देखते थे। इस कारण उन्होंने प्रकृति का सरस चित्रण किया है। हिमगिरि, चित्रकूट, प्रयागराज, अयोध्या, शरद ऋतु आदि का वर्णन उन्होंने अत्यंत मनोयोग पूर्वक किया है। जैसे-

बिटप बिसाल लता अरुझानी।

बिबिध बितान दिए जनु तानी॥

कदलि ताल बर धुजा पताका।

देखि न मोह धीर मन जाका।।

बिबिध भांति फूले तरु नाना।

जनु बानैत बने बहु बाना॥

तुलसी के व्यक्तित्व में विलक्षण दृढ़ता थी। घर छोड़ने के बाद उनका समस्त जीवन दृढ़ता का जीता जागता उदाहरण है। वे अध्ययनशील, मननशील और विद्वान थे। गृह त्याग करने से पूर्व वे कर्मकांडी पुरोहित और कथावाचक थे। उनकी रचनाओं में नीति-विवेचन तथा दर्शन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने पर्याप्त ज्ञान संचय किया था। उन्होंने स्वयं यह तथ्य स्पष्ट किया है कि नाना पुराण, आगम, निगम तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर रामचरितमानस की रचना की। यथा-

"नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्।

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि॥

तुलसी का निधन संवत 1680 विक्रमी अर्थात् 1623 ईस्वी में हुआ।

बोध प्रश्न

4. तुलसीदास अपने समकालीन किस प्रसिद्ध कवि से मिले?
5. तुलसीदास को किस कवि ने वाल्मीकि का अवतार माना?
6. तुलसीदास ने किस कारण अपना घर छोड़ दिया था?

9.3.2 रचना संसार

तुलसीदास के नाम पर दर्जनों पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने इनके 12 ग्रंथों को प्रामाणिक मानकर प्रकाशित किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. दोहावली: इसमें नीति और भक्ति विषयक 573 दोहे हैं।
2. कवितावली: इसमें कवित्त, छप्पय आदि छंदों का संग्रह है। ये छंद रामायण के कांडों के अनुसार संग्रह कर दिए गए हैं, पर कथा क्रमबद्ध नहीं है।
3. गीतावली: इसमें सात कांडों में विभाजित कर रामकथा दी गई है।
4. कृष्ण गीतावली: इसमें कृष्ण महिमा की कथा है। इसकी रचना अनेक राग रागनियों की पद्धति पर हुई है। इसमें 61 पद हैं।
5. विनय पत्रिका: इसमें अनेक देवी-देवताओं की स्तुति है और राम के प्रति विनय पदों का संग्रह है।

6. रामचरितमानसः यह इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें रामकथा सात काण्डों में विभक्त है। इसका रचना काल सं.1631 अर्थात् 1574 ई. माना जाता है।
7. रामलला नहछूः यह ग्रंथ राम के नहछू अर्थात् नाखून काटने के अवसर को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें कुल 20 छंद ही हैं।
8. वैराग्य संदीपनीः यह छोटी सी पुस्तिका है, जिसमें संत की महिमा, संत स्वभाव और शांति का वर्णन दोहा-चौपाइयों में किया गया है।
9. बरवै रामायणः इसमें 69 छंदों में रामकथा का वर्णन है।
10. पार्वती मंगलः इसमें 164 छंदों में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है।
11. जानकी मंगलः इसमें 216 छंदों में राम के विवाह का वर्णन है।
12. रामाज्ञा प्रश्नावली : इसमें सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहे हैं।

बोध प्रश्न

7. नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसीदास के ग्रंथों की संख्या कितनी है?
8. रामललानहछू में किस प्रकार के गीतों का संकलन है?

9.3.3 रचनाओं का परिचयात्मक विवरण

1. **रामलला नहछूः** इसमें राम के विवाह और उपनयन के पूर्व नहछू अर्थात् नाखून काटने के लोक प्रचलित संस्कार के गीत सम्मिलित हैं। जैसे -

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो॥

2. **रामचरितमानस :** यह हिंदी की श्रेष्ठतम रचना है। जीवन की शायद ही कोई ऐसी स्थिति हो, मानवीय संबंध की शायद ही कोई ऐसी दशा हो, जिसका चित्रण मानस में न हुआ हो। आनंद और शोक, क्रोध और क्षमा, त्याग और स्वार्थ, लौकिकता और परमार्थ के विलक्षण चित्र एक ही ग्रंथ में बड़े कौशल के साथ गूंथ दिए गए हैं। कथा कहने के दो ही ढंग हैं- विवरण और संवाद। तुलसी भी विवरणों के रूप में कथा कहते चलते हैं। विवरण के बीच-बीच में उन्होंने संवाद रखे हैं। इसमें पद-पद पर हम संवादों को पाते हैं। रामायण में चार संवाद अघिक महत्वपूर्ण हैं। वे हैं - लक्ष्मण परशुराम संवाद, मंथरा कैकेयी संवाद, चित्रकूट के विविध संवाद और अंगद रावण संवाद।

'रामचतिमानस' को गंभीरता और महानता प्रदान करने वाली दूसरी बात यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति की झलक व्याप्त है। हमारी सांस्कृतिक परंपरा का जैसा ज्ञान तुलसीदास को था, उसके विशद विवेचन की वैसी ही क्षमता और उसकी रक्षा की वैसी ही शक्ति भगवान ने उन्हें दी थी। राम और रावण के रूप में रामायण 'सत और असत का संघर्ष' है। रावण पर राम

की विजय को हम पाशविकता पर मानवता की विजय कह सकते हैं।

3. **वैराग्यसंदीपनी** : वैराग्य संदीपनी की रचना चौपाई और दोहों में हुई है। इस रचना में दोहे और सोरठे 48 तथा चौपाई की चतुष्पदियाँ 14 हैं। इसका विषय नाम के अनुसार 'वैराग्योपदेश' है। कुछ विचारक इसे तुलसी की प्रामाणिक कृति नहीं मानते, क्योंकि इस कृति में कवि ने भक्त-सुख का प्रतिपादन न कर शांति-सुख का उपदेश दिया है जो तुलसीदास की ज्ञात विचारधारा से भिन्न है।

4. **विनय पत्रिका** : तुलसी की 'विनय पत्रिका' भक्त कवि का आत्म निवेदन है, पर इसे हम एकदम व्यक्ति प्रधान काव्य नहीं कह सकते। मन के जिन दोषों की चर्चा गोस्वामी जी ने इसमें की है, वे मनुष्य के अवभाविक विकार हैं। 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास का मन सभी प्राणियों के मन का प्रतिनिधि है और इस प्रकार तुलसीदास का आत्म निवेदन सबका आत्म निवेदन है। गोस्वामी जी के ग्रंथों में 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' ही प्रधान रचना हैं। मानस की रचना लोक कल्याण की दृष्टि से हुई और 'विनय पत्रिका' की व्यक्ति कल्याण की दृष्टि से।

5. **कवितावली :** कवितावली की रचना कवित्त, सवैया और छप्पय छंदों में समय-समय पर हुई। राम कथा का वर्णन करते हुए भी, इसे प्रबंध काव्य की संज्ञा देना कठिन है। सबसे पहली बात यह है कि इसमें मंगलाचरण का अभाव है। तुलसीदास प्रबंध काव्य लिखें और और उसमें मंगलाचरण न हो, यह संभव नहीं। दूसरी बात यह है कि कांडों में कथा का विभाजन किसी अनुपात में नहीं हुआ है। बालकांड, अयोध्याकांड और सुंदरकांड में पच्चीस-तीस के आसपास छंद पाए जाते हैं। वहीं अरण्य और किष्किन्धाकांड में जितने छंद हैं, उनकी संख्या बाकी सब कांडों के छंदों को मिलाकर भी अधिक है। अतः इसे मुक्तक काव्य ही कहना उचित है।

बोध प्रश्न

9. रामचरितमानस के चार प्रमुख संवाद कौन-कौन से हैं?
10. कवितावली में किन छंदों का प्रयोग अधिक हुआ है?

6. **रामाज्ञा प्रश्नावली** : यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। यह ग्रंथ दोहों, सप्तकों और सर्ग में विभक्त है। यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रंसगों की मिश्रित रचना है। इसमें कथा शृंखला का अभाव है और वाल्मीकि रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

7. दोहावली : दोहावली में दोहों का संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। कवि ने चातक के माध्यम से दोहों की एक लंबी शृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है।

8. **पार्वती-मंगल** : यह भी तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी काव्यात्मकता, प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध, रोचक और सरस है। "जगत मातु पितु संभु भवानी" की शृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। इसमें लोक रीति की यथार्थ स्थिति द्रष्टव्य है। यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भावात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यंत संतुष्ट थे। इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है-

प्रेम पाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि॥

9. जानकी मंगल : विद्वानों ने इसे भी तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। इसमें राम और सीता के विवाह का वर्णन किया गया है। परशुराम प्रसंग का चित्रण देखिए-

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डांटहि आंखि देखाइ कोप दारुन किए॥
राम कीन्ह परितोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥

रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भांतिन्ह॥

कुल मिलाकर, तुलसीदास को राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनके आँखों में राम की छवि बसती थी। उनके साहित्य में सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परंपरा की उच्चतम उपलब्धि हैं।

बोध प्रश्न

11. तुलसी का ज्योतिष संबंधी ग्रंथ कौन सा है?
12. तुलसी की शिव विवाह विषयक रचना कौन सी है ?

9.3.4 तुलसी का समाज सुधारक रूप

तुलसी के समय समाज में अनेक विसंगतियाँ व्याप्त थीं। धर्मिक परिस्थितियों की दृष्टि से देखा जाय तो, उस समय उपासना और कर्म में समन्वय नहीं था। उस समय पाखंड, आडंबर, मिथ्या, निर्गुण का नाम लेकर जनता को भ्रम में डाल कर, लोग अपना स्वार्थ साधन कर रहे थे, जो तुलसी को सहन नहीं हुआ। दरिद्रता का स्वच्छंद साम्राज्य व्याप्त था। दुर्भिक्षों ने जनता को संत्रस्त कर दिया था। वेदानुकूल शब्दों और भावों के द्वारा ही मानव धर्म की चर्चा करके राम पर पूर्ण निष्ठा प्रकट करते हुए, तुलसी ने धर्म और संस्कृति की रक्षा की। तुलसी के समय देश की राजनीतिक परिस्थिति भी सुधरी हुई नहीं थी। इसीलिए तुलसी सूर्य जैसे प्रजा-हितैषी राजा की जरूरत बताते हुए कहते हैं-

बरसत हरसत लोग सब, करत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ॥

तुलसी ने भूख और गरीबी खुद देखी और भोगी थी। तत्कालीन दुर्भिक्षों ने जनता को और भी संत्रस्त कर दिया था, जिसका 'कवितावली' में अनेक छंदों में वर्णन किया गया है। समाज की विशृंखलता, अनैतिकता और हीनावस्था में तुलसी का हृदय अत्यंत पीड़ित था। कलि का नाम लेकर उन्होंने उस समय की सामाजिक स्थिति का जो जीवंत वर्णन किया है, वह अत्यंत मर्मभेदी है। यह अंश काफी हद तक भागवत् ग्रंथ से प्रभावित है। उस समय चरित्र बल का ह्रास हो रहा था। मिथ्या दंभ में लीन संत इस ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। सदाचार, दान, दया, विवेक आदि सद्गुणों का लोगों ने परित्याग कर दिया था। इस नैतिक पतन को देखकर, तुलसी के हृदय ने व्यथा को वाणी प्रदान की। तुलसीदास के समय में ज्ञान, उपासना और कर्म में समन्वय नहीं रहने के कारण धार्मिक दृष्टि से विघटन दिखाई देने लगा था। ज्ञान का उपदेश देने वाले हठयोगी सिद्धों और तांत्रिकों ने अपनी अद्भुत क्रियाओं द्वारा जनता को पथभ्रष्ट कर दिया था। इस संबंध में तुलसीदास कहते हैं कि -

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई।
ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
बहु धाम सँवारहिं धाम जती।
बिषया हरि लीन्हि रही बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही॥

उस समय धार्मिक धाराओं में मतभेद था। शैव और वैष्णव परस्पर द्वेष रखते थे। इस ओर तुलसी का ध्यान गया और उन्होंने राम को शिव का तथा शिव को राम का भक्त बता कर, समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया। रोग तथा दुष्काल को देखकर तुलसी का हृदय दुखित हुआ और जनता को इससे मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने राम, शंकर और हनुमान से प्रार्थना की है। एक सच्चा राम भक्त होने के कारण तुलसी ने समयानुकूल समाज को सुधारने का सयत्न प्रयास किया। तुलसी अपने समय के बहुत बड़े समाज सुधारक थे और अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने जो समन्वय की विराट चेष्टा की, वह सराहनीय है और अपने आप में अनोखी है। इसीलिए उन्हें लोकनायक कहा जाता है।

बोध प्रश्न

13. तुलसी ने किस-किस का समन्वय किया है?

9.3.5 तुलसीदास के काव्य का कलापक्ष

तुलसीदास एक आदर्श कवि हैं। तुलसीदास अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति में अद्वितीय हैं। उनकी सर्जनात्मकता अत्यंत प्रतिभापूर्ण है। वे अवधी और ब्रजभाषा दोनों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। प्राचीन काव्यशैली को उन्होंने अपनाया है। उन्होंने चलती आ रही छंद पद्धतियों को अपना कर अपनी प्रतिभा के बल पर उनका कुशलता के साथ अपने काव्यों में प्रयोग किया। जो छंद अत्यंत लोक प्रचिलत थे, जैसे सवैया, छप्पय, दोहा, चैपाई, कवित्त, बरवै आदि, उन्होंने उनका अपने काव्यों में स्थान-स्थान पर प्रयोग किया। प्रबंध काव्य परंपरा तथा मुक्तक काव्य परंपरा दोनों को उन्होंने सम्मान दिया। 'विनय पत्रिका' भक्ति का अखंड सागर है, तो 'रामचरित मानस' ज्ञान और भक्ति का अनुपम सेतु हैं। सभी रसों का परिपाक उनके काव्य में सफलता के साथ हुआ है। रामकथा को ही उन्होंने अपने काव्यों का उपजीव्य बनाया और समग्र कथा के माध्यम से सारी बातें समेटने की कोशिश की। तुलसीदास इस दृष्टि से भक्तिकाल की सगुणधारा में सर्वश्रेष्ठ कवि का आसन अलंकृत करते हैं।

9.3.6 हिंदी सहित्य में तुलसीदास का स्थान

हिंदी साहित्य में तुलसीदास का स्थान अद्वितीय है। वे ऐसे लोकमंगलवादी भक्त थे, जिनकी आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी प्रबल थी। तुलसी ने 'रामचरित मानस' के द्वारा एक आदर्श राज्य की कल्पना की है। राम के रूप में तुलसी ने एक आदर्श राजा का उदाहरण सामने रखा है कि किस तरह एक राजा अपनी प्रजा के लिए वह सब कुछ करता है, जो एक पिता अपने बच्चों के लिए करता है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है। उनके राम गरीबनिवाज़ हैं। 'विनय पत्रिका' में तुलसी राम के दरबार में अपनी एक अर्जी भेजते हैं। कलि

काल से मुक्ति पाने के लिए वे राम से निवेदन करते हैं, तथा साथ ही अपने को हीन, मलिन, दीन कहते हैं और प्रभु से निवेदन करते हैं कि - मुझे इस सांसारिक मोह माया से मुक्त कर दें। इसके लिए वे माता सीता से सिफारिश करवाते हैं। तुलसी का काव्य मनोरंजन मात्र की वस्तु नहीं है, बल्कि उन्होंने काव्य के माध्यम से समाज को जागरूक करने का कार्य किया है। उन्होंने कबीर की तरह फटकार नहीं लगाई, बल्कि बहुत ही प्यार से अपने उपदेशों को समाज के सम्मुख रखा है। किसी साहित्य में तुलसी जैसे कवि युगों में ही पैदा होते हैं। वे सच्चे अर्थो में लोकनायक थे।

बोध प्रश्न

11. तुलसीदास ने रामचरितमानस में किस प्रकार के राज्य की कल्पना की है?
12. तुलसीदास की भक्ति किस प्रकार की थी?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में पढ़कर आप यह जान गए होंगे कि वे मध्यकालीन भारतीय इतिहास के एक महान रचनाकर और लोकनायक थे। उन्होंने अपने समय के समाज के सामने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को आदर्श के रूप में रखा। आपको यह जानना रोचक लगेगा कि तुलसीदास ने कई शताब्दियों से चली आ रही राम कथा के अनेक रूपों का समन्वय करके 'रामचरितमानस' के रूप में एक ऐसी प्रेरक कथा जनता के सामने रखी जिससे समाज का हर सदस्य अपने स्थान के अनुसार कर्तव्य की शिक्षा प्राप्त कर सकता है। समन्वय और लोक जागरण की इसी चेतना के कारण उन्हें भगवान बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक माना जाता है।

तुलसी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर ध्यान देने से यह समझ में आता है कि उन्होंने जीवन के संघर्षों से मर्यादा और आदर्श का पाठ पढ़ा था। जिस बालक का जन्म होते ही माँ की मृत्यु हो गई हो, पिता ने जिसे मुँह देखे बिना त्याग दिया हो, भीख माँग-माँग कर किसी दासी ने जिसका पालन किया हो ऐसे अनाथ के रूप में बचपन बिताने वाले तुलसी ने अपने आराध्य राम के प्रति अनन्य निष्ठा और समाज के प्रति दायित्व की भावना से परिपूर्ण जो साहित्य रचा, वह हिंदी ही नहीं बल्कि विश्व के सभी भाषाओं के साहित्य में बेजोड़ है।

तुलसी के अपने जीवन और उनके द्वारा रचे हुए साहित्य के बीच एक अनोखा रिश्ता यह है कि वे अपने निजी जीवन की कटुताओं को साहित्य में नहीं आने देते। इसीलिए उनका साहित्य उदात्त और प्रभावी बन सका है। ऐसा नहीं है कि तुलसी को अपने बचपन कष्ट याद नहीं आते। आते हैं। तभी तो वे यह कहते हैं कि माता-पिता ने मुझे जन्म लेते ही त्याग दिया और विधाता ने मेरे भाग्य में कोई भलाई नहीं लिखी। वे यह भी नहीं भूल पाते कि अन्न के दानों के लिए उन्हें बचपन में कुत्तों और बंदरों की संघर्ष करना पड़ा है। शायद इसीलिए वे यह कह सके कि इस संसार में दरिद्रता से बड़ा कोई दुख नहीं है। लेकिन तुलसी अपने इस दुख में डूबते नहीं। अवसाद ग्रस्त नहीं होते। रोते-बिलखते नहीं। और न ही दया की भीख माँगते। वे अपने 'स्व' को 'सर्व' में

विलीन कर देते हैं। इससे उनके व्यक्तित्व में एक रूपांतरण घटित होता है। वे लोक सेवा को समर्पित हो जाते हैं। यहाँ तक कि साहित्य सृजन भी उनके लिए लोक सेवा ही है। इसीलिए वे 'रामचरितमानस' के बाल कांड में यह घोषणा करते हैं कि -

> कीरति भणिति भूति भलि सोयी।
> सुर सरि सम सब कहं हित होयी॥

अर्थात् कीर्ति, कविता और संपत्ति तभी तक श्रेयस्कर हैं जब तक इनके द्वारा देव नदी गंगा की भाँति सब का भला हो। यही लोकमंगल का वह सूत्र है जिसने कवि तुलसी को लोक में मर्यादा स्थापित करने के लिए राम के लोक रक्षक चरित्र को लोक भाषा में रचने के लिए प्रेरित किया। कहना न होगा कि तुलसी की महानता का आधार उनके जीवन और काव्य में निहित लोक कल्याण की यही भावना है।

प्रिय छात्रो! आपको यह जानकार अचरज हो सकता ही कि बेहद गरीबी में ज़िंदगी बिताने के बावजूद तुलसीदास ने राज दरबार की कृपा स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इस बारे में ज़िक्र करते हुए प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय ने लिखा है -

> "यह सर्वविदित है कि अकबर ने टोडरमल के माध्यम से पचास हजारी मनसबदारी की पेशकश तुलसी के समक्ष की थी जिसे उन्होंने अपने को राम का सेवक बतलाते हुए 'नर के अब का होंहिंगे तुलसी मनसबदार' कहकर ठुकरा दिया था। उनके भीतर की यह शक्ति ही उन्हें अंतः बाह्य संघर्षों से जूझते रहने की प्रेरणा देती है।" (मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ, पृ. 132)

अंततः यह उल्लेख भी आवश्यक है कि तुलसीदास का साहित्य उनकी सर्वांगपूर्ण काव्य कुशलता का परिचायक है। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -

> "उन (तुलसीदास) की साहित्य मर्मज्ञता, भावुकता और गंभीरता के संबंध में इतना और जाना लेना भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना नैपुण्य का भद्दा प्रदर्शन कहीं नहीं किया है और न शब्द-चमत्कार आदि के खेलवाडों में फँसे हैं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक दमक दिखाते हुए नहीं।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 100)

9.4 पाठ-सार

प्रिय छात्रों! तुलसीदास का जीवन अत्यंत साधारण व्यक्ति की अपनी साधना के बल पर लोकनायक बनने की प्रेरक गाथा है। तुलसी ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को जागरूक करने का काम किया है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' के द्वारा समाज में एक आदर्श चरित्र स्थापित किया। तुलसी ने काव्य के माध्यम से धर्म की स्थापना पर जोर दिया है। 'विनय

पत्रिका’ में कवि ने कलि युग का वर्णन किया है कि किस तरह पाप बढ़ते जा रहे हैं। तुलसी ने पापों से मुक्त होने के लिए प्रभु की शरण लेने का मार्ग भी दिखाते हैं। तुलसी ने ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग, सगुण और निर्गुण भक्ति तथा राम और शिव भक्ति का समन्वय किया है। वे अपने समय के सबसे बड़े समन्वयकारी लोकनायक थे।

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

छात्रो! तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व विषयक इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं :

1. तुलसीदास हिंदी साहित्य के पूर्वमध्यकाल अथवा भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा में रामभक्ति काव्य के प्रमुख कवि हैं।
2. तुलसीदास के जन्म और बचपन के बारे में जो साक्ष्य मिलते हैं उनसे पता चलता है कि उनका बचपन बेहद गरीबी में बीता।
3. तुलसीदास को युवावस्था में ही पत्नी रत्नावली के ‘उपदेश’ से वैराग्य हो गया और उन्होंने घर त्याग कर अपने आप को रामभक्ति में समर्पित कर दिया।
4. तुलसीदास ने अनेक काव्यों की रचना की जिनमें ‘रामचरितमानस’ सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। उनकी अन्य रचनाओं में ‘कवितावली’ और ‘विनय पत्रिका’ भी प्रसिद्ध हैं।
5. तुलसीदास ने रामचरितमानस में यों तो वाल्मीकि रामायण की रामकथा को ही आधार बनाया, लेकिन अपने समय में प्रचलित अन्य राम कथाओं का सहारा लेते हुए उसे एक ऐसा नया स्वरूप प्रदान किया, जिसमें राम विष्णु के अवतार होने के साथ -साथ मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में वर्णित हैं।
6. तुलसीदास ने अपने समय के विविध धार्मिक संप्रदायों और सिद्धांतों का समन्वय करके रामकथा को सर्वग्राह्य बना दिया। यही कारण है कि उन्हें लोकनायक माना जाता है।

9.6 शब्द संपदा

1. अमिय = अमृत, सुधा
2. अरुझानी = उलझाव
3. कंज = कमल
4. कदलि = केला
5. बिटप = वृक्ष
6. महेश = शिव
7. मृगलोचन = हिरन के समान सुंदर आँखें
8. विमल = निर्मल

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. तुलसी के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालिए?
2. तुलसीदास के लोकमंगल की भावना पर प्रकाश डालिए?
3. तुलसी की भक्ति भावना की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए?

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. तुलसीदास के पार्वती मंगल पर चर्चा कीजिए।
2. कवितावली का परिचय दीजिए।
3. हिंदी साहित्य में तुलसी का स्थान निर्धारित कीजिए?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. तुलसीदास का जन्म कब हुआ था? ( )
   अ) 1532 ई. आ) 1523 ई.
   इ) 1623 ई. ई) 1626 ई.

2. तुलसीदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना कौन सी है? ( )
   अ) रामचरित मानस आ) विनय पत्रिका
   इ) कवितावली ई) दोहावली

3. 'रामचरित मानस' में कितने कांड हैं? ( )
   अ) 4 आ) 6 इ) 9 ई) 7

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. तुलसी की मृत्यु संवत ....विक्रमी में हुई थी।
2. तुलसी के गुरु का नाम ....है।
3. दोहावली में...........दोहे हैं।
4. रामचरित मानस की रचना सन .... में हुई थी।

III सुमेल कीजिए।

1. रामलला नहछू	(अ) ज्योतिष
2. पार्वती मंगल	(आ) दोहा संग्रह
3. रामाज्ञा प्रश्नावली	(इ) संस्कार गीत
4. दोहावली	(ई) शिव विवाह

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य की भूमिका, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आर्चाय रामचंद्र शुक्ल.
3. हिंदी साहित्य का उद्भव एवं विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी.
4. तुलसी काव्य में साहित्यिक अभिप्राय, जनार्दन उपाध्याय.
5. रामचरित मानस, तुलसीदास.
6. विनय पत्रिका, तुलसीदास.

इकाई 10 : नीति

रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूल पाठ : नीति
- (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
- (ख) अध्येय कविता
- (ग) विस्तृत व्याख्या
- (घ) समीक्षात्मक अध्ययन

10.4 पाठसार
10.5 पाठ की उपलब्धियाँ
10.6 शब्द संपदा
10.7 परीक्षार्थ प्रश्न
10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा गया है। इस काल में जो भी रचनाएँ लिखी गईं, उनका साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं अपितु मानवता की दृष्टि से भी विशेष महत्व का है। किसी काल में रचनाएँ अधिक मात्रा में लिखी जाएँ इसका कोई महत्व नहीं होता बल्कि उन रचनाओं की प्रदेयता से मानव कितना लाभान्वित होता है, इसी में उस काल में लिखित साहित्य की सार्थकता होती है। मानव जीवन से नैतिकता हमेशा जुड़ी रही है और यह भारतीय संस्कृति का एक अंग रहा है। भारतीय संस्कृति, संवेदना और सौंदर्य का आपस में गहरा तालमेल है। गोस्वामी तुलसीदास ने मानव जीवन में नीति के महत्व को स्वीकार करते हुए नीतिपरक दोहों की रचना की जो आज भी मानव जीवन की सार्थकता से जुड़े हुए हैं।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -
- तुलसीदास के चिंतन को समझ सकेंगे।
- गोस्वामी तुलसीदास के साहित्यिक प्रदेय को जान और समझ सकेंगे।
- तुलसीदास के युगीन परिवेश को समझ कर अनुभव साझा कर पाएँगे।
- गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की अंतर्वस्तु का उल्लेख कर सकेंगे।

- नीतिपरक दोहों के महत्व को समझ सकेंगे।
- तुलसी के दोहों के भाषिक सौंदर्य को जान सकेंगे।

10.3 मूल पाठ : नीति

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

तुलसी जैसे रचनाकार हर सदी में नहीं जन्म लेते। हिंदी साहित्य में जिस कालखंड को भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है, वह समय देश के धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पटल पर अत्यंत विषमताओं का समय था। भारतीय संस्कृति में दया को विशेष महत्व दिया गया है और गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसे विशेष महत्व दिया है। इसे मनुष्य का मूल धर्म मानते हुए यह संदेश दिया है कि दया को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए तथा इसके विपरीत मानव के मन में कभी भी अहंकार की भावना नहीं आनी चाहिए क्योंकि यही सारे पापों की जड़ होता है। श्रीराम शरणागत वत्सल हैं और कवि भी यही मानते हैं कि हमारी शरण में यदि कोई आता है तो हमें अपने स्वार्थवश उसका त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे बड़ा अधर्म और कुछ नहीं होता। जिस प्रकार कबीर ने यह संदेश दिया है कि मन के घमंड को त्याग कर मनुष्य को सदैव मीठी वाणी बोलनी चाहिए। मीठी वाणी सभी के मन को शीतल कर देती है और स्वयं मनुष्य भी शांत और शीतल हो जाता है। इसी प्रकार तुलसीदास भी कहते हैं कि मीठे वचन सभी तरफ सुख की उत्पत्ति करते हैं। यदि कटु वचनों को छोड़कर मीठी वाणी बोली जाए तो इस वाणी से हर किसी को अपने वश में किया जा सकता है। यह मानव जीवन की सफलता का एक मंत्र है। अच्छे शासन की स्थापना वहीं होती है जहाँ लोभ, लालच, स्वार्थ, भय, लाभ की भावना नहीं होती। जहाँ मंत्री, वैद्य और गुरु भय या लाभ की आशा से कार्य करते हैं वहाँ राज्य, शरीर और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है। तुलसी के राम स्वयं राजधर्म के आश्रयदाता और आदर्श रामराज्य के जनक हैं। भले ही वह रामराज्य के संस्थापक हैं फिर भी उनके रामराज्य की आधारशिला स्नेह, सत्य, अहिंसा, दान, त्याग, शांति, विवेक, वैराग्य, क्षमा और न्याय हैं। इसी आधारशिला की कल्पना गांधी जी ने भी नवीन भारत के लिए की। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि मुखिया अर्थात् राजा को मुख के समान होना चाहिए, जिस प्रकार मुख शरीर के सारे अंगों की यथोचित देखभाल करता है वैसे ही राजा को अपनी प्रजा के साथ-साथ साम्राज्य के सारे विभागों के प्रति चैतन्य रहना चाहिए। जहाँ सत्य से अनुप्राणित तथा कर्तव्य से युक्त धर्म का निर्वाह होता है वहीं रामराज्य की महत्ता होती है। विश्व में भारतीय संस्कृति अपना विशेष महत्व रखती है, यदि मनुष्य के मन में मानवता हो तो विश्व उसका बंधु बन जाता है। जब मनुष्य के ऊपर विपत्तियाँ आती हैं तो उस समय उसके मन का साहस, उसकी शिक्षा और ज्ञान,

उसके सच बोलने की आदत, उसके अच्छे कर्म और ईश्वर पर अटल विश्वास ही उसकी विपत्तियों को दूर करते हैं।

इस प्रकार अपने नीतिपरक दोहों में तुलसी ने यही संदेश दिया है कि इस संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए मानव में संस्कारों का होना अति आवश्यक है।

(ख) अध्येय कविता

1. दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
   तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घट में प्राण॥
2. सरनागत कहुं जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
   ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥
3. तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
   बसीकरन इक मंत्र है, परिहरि बचन कठोर॥
4. सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
   राज धर्म तन तीनि कर, होहि बेगहीं नास॥
5. मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुं एक।
   पालइ पोसई सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।
6. तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
   साहस सुकृति सुसत्य व्रत, राम भरोसे एक।।

> **निर्देश** : इन दोहों का, अर्थ पर ध्यान केंद्रित करते हुए मौन वाचन कीजिए।
> इन दोहों का एक-एक करके सस्वर वाचन कीजिए ।

(ग) विस्तृत व्याख्या

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िए, जब तक घट में प्राण॥

शब्दार्थ : मूल = उद्गम। अभिमान = घमंड। छांड़िए = छोड़ना। घट = शरीर।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ संत तुलसीदास द्वारा रचित 'नीति' से उद्धृत हैं। आचार्य रामानुजाचार्य की विशिष्टाद्वैतवादी परंपरा पर चलने वाले संत तुलसीदास अपनी विशेषताओं के कारण ही गोस्वामी कहलाए। उन्होंने अपनी रचनाओं में भक्ति, सामाजिक विषमताओं आदि को वर्ण्य विषय बनाया है। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में रामचरितमानस, रामललानहछू, वैराग्य संदीपनी,

बरवै रामायण, दोहावली, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न आदि महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। तुलसी के नीतिपरक दोहे अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

प्रसंग : तुलसीदास एक महान संत और राम भक्त थे। घमंड मानव के विनाश का कारण बनता है। दया का भाव उसके मन में उदात्त भावना जगाता है तथा उसको उन्नति की ओर ले जाता है। प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव रखना मानवता की श्रेणी में आता है। गोस्वामी तुलसीदास सदैव यह कामना करते हैं कि जब तक मनुष्य जीवित रहे तब तक उसे दया की भावना नहीं छोड़नी चाहिए।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि दया का उदय धर्म भावना से होता है लेकिन घमंड केवल पाप को जन्म देता है इसलिए जब तक मानव शरीर में प्राण हैं तब तक उसे अपना दया भाव नहीं छोड़ना चाहिए।

काव्यगत विशेषता : किसी के प्रति हिंसा न करने के पीछे दया की भावना ही होती है। इसी दया भावना को जीव के लिए आवश्यक मानते हुए तुलसी ने मानव जीवन की सफलता मानी है।

विश्व बंधुत्व की भावना का संदेश।

प्रतीक शब्दों का प्रयोग।

लाक्षणिक भाषा प्रयोग।

बोध प्रश्न

1. धर्म का मूल भाव क्या है?
2. पाप के मूल में किसे माना गया है?
3. मनुष्य को दया का भाव कब तक नहीं छोड़ना चाहिए?

सरनागत कहुं जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।

ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि।।

शब्दार्थ : सरनागत = शरण में आए हुए। जे = जो। तजहिं = छोड़ देते हैं। निज = अपने। अनहित = नुकसान। अनुमानि = अनुमान लगाकर। ते नर = वे मनुष्य। पावँर = नीच। पापमय = पापी। तिन्हहि = उन्हें। बिलोकति = देखकर।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ तुलसीदास द्वारा रचित 'नीति' से उद्धृत हैं। हिंदी साहित्य के महान महान कवि गोस्वामी तुलसीदास के दोहे ज्ञान के सागर के समान हैं। जिस प्रकार वही गोताखोर सागर से मोती निकाल पाता है, जो डूबने से नहीं डरता और सागर की गहराइयों में साहसी बनकर उतर जाता है। उसी प्रकार तुलसी के नीतिपरक दोहों का गूढ़ अर्थ वही समझ पाता है, जो उनके इन दोहों में उतरने का प्रयास करता है। भारतीय पुराणों में अनेक बार शरणागत की

विशेषताओं का उल्लेख हुआ है। गोस्वामी जी ने शरणागत और शरणागति दोनों के महत्व का प्रतिपादन किया है।

प्रसंग : संत तुलसीदास का यह मानना है कि किसी भी मनुष्य को अपनी शरण में आए हुए व्यक्ति को कभी भी छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसा करके वह अपने नीच और बाकी होने का परिचय देते हैं तब क्यों ऐसे लोगों से हमेशा दूरी बनाकर रखी जाए।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य अपने नुकसान का अनुमान लगाकर अपनी शरण में आए हुए व्यक्ति को त्याग देते हैं या मना कर देते हैं वह मनुष्य नीच और पापी होते हैं। ऐसे लोगों से हमेशा दूरी बनाकर रहना चाहिए।

विशेष : अनुप्रास अलंकार।

मुहावरा प्रयोग।

कवि स्वार्थी मनुष्य से दूर रहने का संदेश देते हैं।

बोध प्रश्न

4. कैसे व्यक्ति क्षुद्र और पापी होते हैं?
5. कैसे व्यक्तियों को देखना उचित नहीं होता?

तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।

बसीकरन इक मंत्र है, परिहरि बचन कठोर।।

शब्दार्थ : बचन = बोली। ते = से। उपजत = उत्पन्न होता है। चहुँ ओर = चारों ओर। बसीकरन = वश में करना। इक = एक। परिहरि = छोड़कर। कठोर = कटु।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ तुलसीदास द्वारा लिखित 'नीति' से उद्धृत हैं। मीठी वाणी मानव जीवन की सफलता का रहस्य है। संसार में चतुर मनुष्य वही होते हैं जो मीठे वचन बोलकर सब तरफ प्रसन्नता बिखेरते हैं और ऐसे व्यक्ति जीवन के हर कदम पर सफलता हासिल करते हुए उन्नति की ओर बढ़ते चले जाते हैं। गोस्वामी जी राम भक्ति धारा के ऐसे कवि हैं जिन्होंने साहित्य सर्जन को स्वान्तः सुखाय मानकर उसी में जन हिताय की भावना का समावेश किया है।

प्रसंग : समाज सुधारक कवि कबीरदास ने भी मनुष्य को सदैव मीठी वाणी बोलने का संदेश दिया है। उसी तरह तुलसीदास का मानना है कि जहाँ एक ओर कड़वे वचन मनुष्य को मनुष्य से दूर करते हैं, वहीं दूसरी ओर मीठी वाणी बोलने वाले लोग दूसरों को अपने वश में कर लेते हैं।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि जो मीठा बोल बोलते हैं उनके इस मीठे बोल से हर तरफ खुशियाँ फैल जाती हैं। मीठी वाणी सब को अपने वश में कर लेती है। इसलिए मनुष्य को कटु वचन छोड़कर मीठे वचन बोलने चाहिए।

विशेष : प्रतीक शब्दों का प्रयोग। मुहावरा प्रयोग। कवि ने मीठी बोली का महत्व समझाया है। जीवन की सच्चाई का उद्घाटन किया है।

बोध प्रश्न

6. किसी भी मनुष्य को वश में करने का क्या मंत्र है?

7. मनुष्य को किस प्रकार के वचन नहीं बोलने चाहिए?

सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।

राज धर्म तन तीनि कर, होहि बेगहीं नास।

शब्दार्थ : सचिव = मंत्री। बैद = वैद्य। गुर = गुरु। बोलहिं = बोलते हैं। आस = आशा। राज = राज्य। तन = शरीर। होहि = होता है। बेगहीं = जल्दी ही। नास = नाश।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'नीति' से उद्‌धृत हैं। मानव जीवन में सदैव ही नीति का महत्व रहा है। तुलसी मानते हैं कि दुनिया में दो तरह के लोग रहते हैं - एक वे लोग जो किसी से भी भयभीत नहीं होते तथा सदैव लोगों के हित के लिए सच बोलते हैं और दूसरे ऐसे लोग जो स्वार्थी तथा कपटी होते हैं, जो हमेशा अपने फायदे और नुकसान के बारे में ही सोचते हैं।

प्रसंग : समाज में रहते हुए व्यक्ति सामाजिक संस्कारों से बंधा होता है। समाज में हर वर्ग के व्यक्तियों के कार्य और उत्तरदायित्व अलग-अलग होते हैं और उन्हीं में बंधे रह कर वह अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। राज्य के राजा, मंत्री, चिकित्सक, गुरु आदि अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए समाज को उन्नति की ओर ले जाते हैं। किंतु कई बार जब ऐसे लोग अपने कर्तव्य से विमुख हो जाते हैं, तो समाज में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और कई बार तो इनके स्वार्थ के कारण मानवता का विनाश भी संभव होता है। गोस्वामी जी ने ऐसे ही लोगों को यह स्मरण दिलाने का प्रयास किया है कि कभी भी समाज में मनुष्य को अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि मंत्री, वैद और गुरु यदि किसी के भय के कारण या किसी लालचवश मीठा बोलते हैं तो शीघ्र ही राज्य, शरीर और धर्म का नाश हो जाता है।

विशेष : त्याग और कर्तव्य ही मानव जीवन की सफलता के रहस्य हैं। अनुप्रास अलंकार। लाक्षणिक भाषा प्रयोग।

बोध प्रश्न

8. राज्य का पतन कब हो जाता है?
9. गुरु का महत्व कब कम हो जाता है?

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुं एक।

पालइ पोसई सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।

शब्दार्थ : मुख सो = मुख के सामान। चाहिए = होना चाहिए। कहुं एक = में एक। पालइ = पालन करता है। पोसई = पोषण करता है। सकल = सभी। सहि बिबेक = विवेक सहित।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'नीति' से ली गई हैं। तुलसी ने अपने दोहों में ऐसे ज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति को एक समान बताया है जिसमें अहंकार, लालच, क्रोध और वासना की भावना भरी रहती है। समसामयिक परिस्थितियों में तुलसी के दोहे सामाजिक सरोकारों से और भी अधिक जुड़ते जा रहे हैं। आज की विषम परिस्थितियाँ देखते हुए कई बार ऐसा लगता है कि भक्तिकाल के संतों का साहित्य मात्र उसी समय के समाज की आवश्यकता नहीं बल्कि वर्तमान संदर्भों में उसकी आवश्यकता और उपादेयता और भी बढ़ गई है।

प्रसंग : तुलसीदास ने मुखिया के महत्व को समझाया है। जिस प्रकार भारतीय समाज में परिवार को हमेशा महत्व दिया जाता रहा है और बड़े बुजुर्गों को वटवृक्ष की उपमा दी जाती रही है, जिस प्रकार वटवृक्ष अपनी छाया से सबका कल्याण करता है, उसी प्रकार परिवार में बड़े बुजुर्ग छोटों की परवाह करते हुए उनकी उन्नति में सहायक बनते हैं। परिवार और समाज के मुखिया को कैसा होना चाहिए यह तुलसी की उपर्युक्त पंक्तियों में देखा जा सकता है।

व्याख्या : मुखिया को सदैव मुख के समान होना चाहिए क्योंकि जैसे मुख अकेला ही खाता और पीता है किंतु बड़े ही विवेक के साथ सभी अंगों का पालन-पोषण अच्छी तरह करता है।

विशेष : कविता का भाव यह है कि मुखिया को सदैव निष्पक्ष होना चाहिए क्योंकि तभी वह सभी के साथ सही न्याय कर सकता है। जैसे कि खाना मुख से खाया जाता है किंतु सभी अंगों का पालन पोषण उसी खाने से होता है। उपमा अलंकार, अनुप्रास अलंकार, विशेष भाषा प्रयोग।

बोध प्रश्न

10. मुख का स्वभाव कैसा होता है?
11. मुखिया को कैसा होना चाहिए?

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।

साहस सुकृति सुसत्य व्रत, राम भरोसे एक॥

शब्दार्थ : विपति = विपत्ति। साथी = मित्र। विनय = विनम्रता। विवेक = बुद्धि/ विवेकशील। सुकृति = अच्छे कार्य। सुसत्य = सच बोलना। राम भरोसे = राम पर विश्वास।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'नीति' से ली गई हैं। इस युग की सबसे बड़ी माँग यही है कि सभी कष्टों को झेलते हुए डूबते अस्तित्व को कैसे बचाया जाए? तुलसी ने

इसी युगबोध को अपने साहित्य में व्यापक मानवीय परिदृश्य में रखकर विचार किया है। अब तो व्यक्ति थोड़े से कष्टों में घबरा जाता है।

प्रसंग : कवि अपनी संवेदना नहीं बल्कि मानव संवेदना की बात करते हैं। मानवता के विकास के लिए साहस, सत्कर्म, ज्ञान और विवेक, अहिंसा, धर्म, संस्कृति की आवश्यकता होती है। तुलसी ने अपनी आत्मा में जो अनुभव किया उसी को उन्होंने नीति में डाल दिया। उनकी वाणी तत्कालीन युग की वाणी है।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि ज्ञान या शिक्षा, विवेकशीलता, विनम्रता, आपके भीतर का साहस, आपके द्वारा किए जाने वाले अच्छे कार्य, सच बोलने की आदत और ईश्वर में विश्वास यही सात गुण किसी विपत्ति या बड़ी परेशानी के समय आपके काम आते हैं अर्थात् आप की रक्षा करते हैं।

विशेष : तुलसी ईश्वर पर अटूट आस्था रखते हुए अपने मन का भाव व्यक्त करते हैं कि यदि व्यक्ति अपने मन में अच्छे संस्कार रखता है, तो वह हर विपत्ति का सामना कर सकता है और ईश्वर भी ऐसे ही लोगों का साथ देते हैं। अनुप्रास अलंकार, ईश्वर पर अटूट आस्था और विश्वास, मुहावरा प्रयोग।

बोध प्रश्न

12. तुलसी किन गुणों को मनुष्य का सच्चा साथी मानते हैं जो उसे विपत्तियों से निकालते हैं?

काव्यगत विशेषताएँ

गोस्वामी तुलसीदास के नीतिपरक दोहों से मनुष्य को यह शिक्षा मिलती है कि उसे हमेशा ही लोगों की मदद के लिए तैयार रहना चाहिए और सभी के प्रति दया का भाव रखना चाहिए। काव्य कृतियों की दृष्टि से कवि तुलसीदास का भाव पक्ष एवं कला पक्ष काफी मजबूत है। गोस्वामी तुलसीदास के नीति दोहे मनुष्य को शिक्षित करते हुए समाज में रहने का गुर सिखाते हैं। दया, ममता, साहस, विवेक, धैर्य, सत्य कथन ऐसे गुण हैं जो बचपन से ही बालक के मन में पैदा किए जाएँ तो आगे चलकर वह समाज और देश का एक अच्छा नागरिक बन सकता है। आज की परिस्थितियों में ऐसे मनुष्यों की अधिक आवश्यकता है। ब्रज और अवधी दोनों भाषा का प्रयोग तुलसी की रचनाओं में दिखाई देता है। नीति के दोहों में कवि की भावना की सच्ची झलक दिखाई देती है। जीवन के मर्मस्पर्शी पक्षों की अभिव्यक्ति इन दोहों की विशेषता है।

बोध प्रश्न

13. तुलसी के नीतिपरक दोहों से मनुष्य को क्या शिक्षा मिलती है?
14. इन दोहों की विशेषता क्या है?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

अपनी व्यक्तिगत सत्ता से अलग हटकर जो सबके लिए कुछ सोचता है और वर्तमान के धरातल पर भविष्य की ओर संकेत करता है वही लोकनायक हो सकता है। संत तुलसीदास इसीलिए लोकनायक कहलाए। संसार के वास्तविक दृश्यों और जीवन की वास्तविक दशाओं में जो हृदय समय-समय पर रमता है वही सच्चा कवि-हृदय होता है। तुलसीदास जैसे संत ही भावों की व्यंजना अत्यंत उत्कर्ष पर पहुँचा सकते हैं और वास्तविकता का आधार भी नहीं छोड़ते हैं। वह अपने भावों को उसी रूप में व्यंजित करते हैं जिस रूप में उनकी अनुभूति जीवन में होती है या हो सकती है। तुलसीदास की मूल प्रवृत्ति वास्तविकता की ओर रही है। तुलसीदास की दृष्टि सदैव वास्तविक जीवन दशाओं के मार्मिक पक्षों के उद्घाटन की ओर रही है। उनकी गंभीर वाणी शब्दों की कलाबाजी और झूठी तड़क-भड़क में नहीं उलझी है। उन्होंने सदैव कोरे चमत्कार की नहीं अपितु जीते जागते संसार और उसमें रहने वाले मानव की चिंता अधिक की है। उनके दोहों में भावों की व्यंजना अधिक है और कला पक्ष की दृष्टि से अलंकारों का समुचित प्रयोग दिखाई देता है। उपमा, रूपक, अनुप्रास अलंकार अधिक हैं। मुहावरों का प्रयोग है और भाषा का प्रतीकात्मक तथा लाक्षणिक प्रयोग दोहों को अधिक सांकेतिक तथा संप्रेषणयुक्त बनाता है। भक्त और दार्शनिक संत तुलसीदास अपने नीतिपरक दोहों से यह सीख देते हैं कि मनुष्य यदि अपने चरित्र को सुधार लेता है तो जीवन में सफल हो जाता है और यदि ऐसा नहीं करता तो पग-पग पर उसे अनेक असफलताओं और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

बोध प्रश्न

15. तुलसी के लोकनायकत्व का आधार क्या है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! महाकवि तुलसीदास के काल को भक्तिकाल कहा जाता है। उस काल को भक्तिकाल कहने का कारण यह है कि देशव्यापी भक्ति आंदोलन के एक अंग के रूप में हिंदी साहित्य में उस काल में प्रमुख रूप से भक्ति का साहित्य ही रचा गया। लेकिन आलोचकों ने इस ओर भी ध्यान दिलाया है कि भक्ति प्रधान रचनाओं के अलावा उस काल में नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाली कविताओं की भी रचना हुई। इस प्रकार की कविताओं को नीति काव्य कहा जाता है।

भारतीय साहित्य में नीति काव्य की परंपरा बहुत पुरानी और विकसित है। दरअसल भारत में यह आवश्यक माना जाता रहा है कि कविता में कुछ न कुछ संदेश अथवा उपदेश निहित होना चाहिए। सामान्य उपदेश और काव्यात्मक उपदेश में बस इतना अंतर होता है कि कवि का उद्बोधन रसमय होता है। भारतीय परंपरा में कवि को मनीषी और स्वयंभू तक कहा

गया है। उसे समाज का शिक्षक माना जाता है। कवियों के सम्मान का कारण भी यही मान्यता है। पश्चिमी काव्यशास्त्र में भी काव्य का एक प्रयोजन मनोरंजन के साथ-साथ समाज को शिक्षित करना माना गया है। महान स्वच्छंदतावादी कवि विलियम वड्र्सवर्थ ने एक बार कहा था कि यदि वे कवि न होते तो शिक्षक होना पसंद करते। वे मानते थे कि कविता समाज की सुरक्षा चट्टान है। अपने इस दायित्व को कविता जीवन मूल्यों और नैतिकता का संदेश देने वाले काव्य द्वारा पूरा करती है। इसीको नीति काव्य कहा जाता है। संस्कृत में सुभाषितों के रूप में अत्यंत प्रभावशाली नीति काव्य उपलब्ध है। यही नहीं तमिल के महान संत कवि तिरुवल्लुवर और तेलुगु कवि वेमना के वचन भी नीति काव्य के अति उत्तम उदाहरण हैं। हिंदी में कबीर और रहीम से लेकर गिरिधर कविराय तक की नीतिपरक रचनाएँ आज भी लोगों की ज़बान पर रहती हैं। तुलसी भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। बल्कि उनका तो भक्ति काव्य भी मर्यादा के रूप में नैतिकता की ही शिक्षा देने के लिए है। तुलसी की अनेक सूक्तियाँ विद्वानों से लेकर जन साधारण तक के वार्तालाप में सुनाई पड़ती हैं।

आपको यह जानना रोचक लगेगा कि -

> "भक्तिकाल में नीतिकाव्य के तीन रूप प्राप्त होते हैं - (अ) कबीर, नानक, दादू आदि संतों की रचनाओं में नीति संबंधी पद धर्मोपदेशों के अंग-रूप कहे गए थे, (आ) 'रामचरितमानस', 'पद्मावत' प्रभृति प्रबंधकाव्यों में यत्र-तत्र नीति संबंधी उपदेश कथा-क्रम में आनुषंगिक रूप में मिलते हैं, (इ) कुछ कवि ऐसे भी हैं, जिन्होंने नीतिकाव्य की ही रचना की है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 227-228)

महाकवि तुलसीदास के नीतिपरक दोहों के अध्ययन से आप यह समझ गए होंगे कि मानव चरित्र का निर्माण करने के लिए उनकी ये रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी भक्ति काल में रही होंगी। तुलसी यह शिक्षा देते हैं कि धार्मिक होने का अर्थ मंदिर जाना और पूजा पाठ करना नहीं। बल्कि दयावान होना है। दया से ही धर्म उत्पन्न होता है। इसके विपरीत अधर्म और पाप की जड़ में अभिमान या घमंड रहा करता है। इसलिए वे अभिमान न करने और दयावान होने का उपदेश देते हैं। दयावान मनुष्य कभी भी अपनी शरण में आए हुए व्यक्ति को त्याग नहीं सकता। भले ही इसमें अपने अहित की भी संभावना हो। दयाशीलता और शरणागत वत्सलता जैसे गुण तो खैर बड़ी बात है, तुलसी वाणी की मधुरता को भी उत्कृष्ट मानवीय गुण मानते हैं। यह मनोरंजक तथ्य है कि अनेक महान कवियों में वाणी पर संयम रखने और मधुर वचन बोलने का उपदेश दिया है। तुलसी तो मीठे वचन के प्रभाव से सारे परिवेश के सुखमय होने की बात कहते हैं। उनका मानना है कि कठोर वचन का त्याग करने वाला व्यक्ति किसी को भी अपने वश में कर सकता है। इसके अलावा उन्होंने यह भी बताया है कि मीठे वचन के पीछे कोई स्वार्थ या भय नहीं होना चाहिए। अन्यथा वह नाश का करण बन सकता है।

इस प्रकार तुलसी का नीति काव्य वास्तव में जीने की कला सिखाने वाला काव्य है।

10.4 पाठ-सार

जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन आता जा रहा है वैसे-वैसे मानव की सोच में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा है। आज भी समाज में कई ऐसे मनुष्य हैं जो बेकसूर और निर्दोष को ठेस पहुँचाते हैं और उनमें बिल्कुल भी दया की भावना ही नहीं होती। ऐसे लोग अपने ही घमंड में चूर होकर असत कर्मों की ओर प्रवृत्त होते हैं। तुलसीदास ने अपने दोहों के माध्यम से मानव को यह संदेश दिया है कि यदि बचपन में किसी बालक के मन में दया का भाव नहीं पैदा किया जाता तो आगे चल कर ऐसे लोग समाज में विषमताएँ फैलाते हैं। 'तुलसी दोहावली' में संकलित दोहों के द्वारा आज भी मानव समाज को कई प्रकार की सीख मिलती है। स्वयं पर घमंड न करते हुए जब तक शरीर में प्राण हो तब तक जीव मात्र के प्रति दया की भावना रखना ही मानव होने की सबसे बड़ी व्याख्या है। हमेशा दूसरों की मदद के लिए आगे आना और तैयार रहना ही मनुष्यता की पहली पहचान है। यदि मानव का जन्म मिला है तो मीठा बोलना उसकी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। मीठी वाणी से कई बार बिगड़े हुए कार्य संवर जाते हैं। मनुष्य तभी समझदार कहा जाता है, जब वह अपने सामने वाले के मन को पहचान ले। यदि व्यक्ति डॉक्टर, गुरु और मंत्री की भाषा समय पर नहीं समझता तो उसे जीवन में बहुत नुकसान उठाना पड़ता है, इसलिए समय पर चेत जाना ही उसके जीवन की सफलता है। गोस्वामी तुलसीदास का दोहा यह सीख देता है कि परिवार के मुखिया को विवेकपूर्ण तरीके से अपने परिवार का भरण-पोषण करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो तो परिवार में बिखराव पैदा हो जाता है, जो परिवार ही नहीं बल्कि समाज और देश के लिए भी अहितकर होता है। साहस, बुद्धि, विवेक जैसे कई गुणों के सहारे व्यक्ति स्वयं पर आने वाली विपत्तियों को दूर कर सकता है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं और दोहों के माध्यम से लोगों को एक अलग राह दिखाई है।

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं:

1. तुलसी ने भक्तिपरक साहित्य की रचना के साथ ही नीतिपरक साहित्य भी रचा। उनके साहित्य में मर्यादा और नीति के स्वर सर्वत्र विद्यमान हैं।
2. तुलसी ने अपने युग के अनुरूप आदर्शों को नीतिपरक दोहों का रूप दिया। ये आदर्श शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित होने के कारण सार्वकालिक बन गए।
3. तुलसी के नीतिपरक दोहे उन लोगों के लिए प्रेरक और मार्गदर्शक हैं जो अपने जीवन में बदलाव लाना चाहते हैं और सन्मार्ग पर चलना चाहते हैं।
4. तुलसी के दोहों में जीवन में सफलता प्राप्त करने के सूत्र निहित हैं।

5. तुलसी के नीतिपरक दोहों में वर्तमान विषम परिस्थितियों में मानव-जीवन में नैतिकता के समावेश के सूत्र निहित हैं।

10.6 शब्द संपदा

1. स्वर्ण युग = सब प्रकार से सबसे अधिक मूल्यवान समय
2. लाभान्वित होना = लाभ प्राप्त करना
3. प्रदेय = देन
4. परिवेश = वातावरण, देशकाल की परिस्थितियाँ
5. संस्थापक = स्थापना करने वाले
6. आधारशिला = नींव
7. चैतन्य = सचेत, जागरूक
8. सदैव = सदा ही
9. विश्व बंधुत्व = सारी दुनिया के साथ भाईचारा
10. उत्तरदायित्व = जिम्मेदारी
11. निष्पक्ष = पक्षपात न करने वाला
12. न्याय = इंसाफ़
13. विवेक = ज्ञान
14. विपत्ति = परेशानी
15. लोकनायक = वह महापुरुष जिसके आदर्शों का जनता अनुकरण करती हो
16. व्यंजना = अभिव्यक्ति
17. उत्कर्ष = ऊँचाई
18. आस = आशा
19. लाक्षणिक प्रयोग = भाषा का ऐसा प्रयोग जिसमें अर्थ का निर्धारण लक्षणों के आधार पर किया जाता है
20. संप्रेषण = विचारों को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाना
21. विषमता = असमानता
22. प्राथमिकता = सबसे अधिक महत्व
23. सन्मार्ग = अच्छा रास्ता
24. ज्ञानवर्धक = ज्ञान को बढ़ाने वाला
25. उत्कृष्ट = श्रेष्ठ, उच्च

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. तुलसीदास के नीतिपरक दोहों का भाव स्पष्ट कीजिए।
2. तुलसीदास के कृतित्व पर विचार कीजिए।
3. तुलसी के काव्य वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।
4. तुलसी की सामाजिकता पर प्रकाश डालिए।
5. 'तुलसी समन्वयवादी और सच्चे लोकनायक थे।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
6. तुलसी की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।/ साहस सुकृति सुसत्य व्रत, राम भरोसे एक॥' इस दोहे की व्याख्या कीजिए।
2. 'सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।/ राज धर्म तन तीनि कर, होहि बेगहीं नास॥' इस दोहे की व्याख्या कीजिए।
3. 'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।/ तुलसी दया न छांड़िए, जब तक घट में प्राण'॥ इस दोहे की व्याख्या कीजिए।
4. तुलसी के युगीन परिवेश पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. तुलसीदास कवि हैं - ( )

   (अ) निर्गुण शाखा (ब) सगुण शाखा (स) प्रेममार्गी शाखा

2. समन्वयवादी कहा जाता है - ( )

(अ) सूरदास (ब) तुलसीदास (स) जायसी

3. 'रामाज्ञा प्रश्न' .... की रचना है - ( )

(अ) तुलसीदास (ब) कबीरदास (स) कुंभनदास

4. तुलसीदास के पिता का नाम है - ( )

(अ) रामानुजाचार्य (ब) बाबा नरहरिदास (स) आत्माराम दुबे

5. विद्या, विनय और विवेक साथी हैं- ( )

(अ) विपत्ति के (ब) जीवन के (स) मृत्यु के

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. दया धर्म का मूल...........अभिमान का मूल ।
2. मुखिया मुख सों चाहिए............. को एक।
3. तुलसी साथी विपत्ति के............ विवेक।
4. जब लग घट...................।

III सुमेल कीजिए।

(क) दया धर्म का मूल है — (अ) निज अनहित अनुमानि

(ख) सरनागत कहुं जे तजहिं — (आ) परिहरि बचन कठोर

(ग) बसीकरन इक मंत्र है — (इ) विद्या विनय विवेक

(घ) मुखिया मुख सो चाहिए — (ई) पाप मूल अभिमान

(च) तुलसी साथी विपति के — (उ) खान पान कहुं एक

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. गोस्वामी तुलसीदास, रामचंद्र शुक्ल.
2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा.
3. तुलसी : आधुनिक वातायन से, रमेश कुंतल मेघ.
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.

इकाई 11 : गुरु वंदना

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूल पाठ : गुरु वंदना
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
11.4 पाठसार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द संपदा
11.7 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

सनातन अवधारणा के अनुसार इस संसार में मनुष्य को जन्म भले ही माता-पिता देते हैं किंतु उसे जीवन का सही अर्थ गुरु कृपा से ही मिलता है। वह व्यवहार के साथ-साथ भव तारक, पथ प्रदर्शक होते हैं। जिस तरह माता-पिता शरीर का सर्जन करते हैं उसी तरह गुरु अपने शिष्य का मानसिक सृजन करते हैं। गुरु को इस भौतिक संसार और परमात्मा तत्व के बीच का सेतु कहा गया है।

लोकनायक तुलसीदास ने रामचरितमानस के प्रथम सोपान बालकांड में गुरु के चरण कमलों की वंदना की है और यह माना है कि उनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार का नाश करने वाले सूर्य की किरणों के समान हैं। आषाढ़ की पूर्णिमा को हमारे शास्त्रों में गुरु पूर्णिमा कहते हैं। इस दिन गुरु पूजा का विधान है। गुरु के प्रति आदर और सम्मान व्यक्त करने के वैदिक शास्त्रों में कई प्रसंग बताए गए हैं। उसी वैदिक परंपरा के महाकाव्य रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कई अवसरों पर गुरु महिमा का बखान किया है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- गोस्वामी तुलसीदास की रचनात्मक पृष्ठभूमि व चिंतन को समझ सकेंगे।
- रचनाकार के भाषिक सौंदर्य को जान सकेंगे।

- तुलसीदास के युगीन परिवेश को समझ कर अनुभव साझा कर पाएँगे।
- गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की अंतर्वस्तु का उल्लेख कर सकेंगे।
- गुरु महिमा को समझ सकेंगे।

11.3 मूल पाठ : गुरु वंदना

(क) कविता का सामान्य परिचय

वाल्मीकि रामायण के बालकांड में प्रथम सर्ग 'मूलरामायण' के नाम से प्रख्यात है। इसमें नारद से वाल्मीकि संक्षेप में संपूर्ण राम कथा का श्रवण करते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी रामायण के बालकांड का महत्व है। एक ओर रामायण के राम एक सरल साधारण मानव हैं जो हर माननीय भावना से प्रेरित हैं जबकि तुलसी के राम एक दैवीय शक्ति से युक्त अतिमानव हैं जो स्वयं एक महाशक्ति का रूप है।

तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और वाल्मीकि के राम मानवीय भावनाओं के संतुलित रूप हैं। गुरु से मिला मंत्र ही मानव को पूर्णता देता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने भी गुरु की महिमा का बखान किया है। तुलसी के अनुसार गुरु कृपा के समुद्र हैं। जैसे समुद्र का जल कभी समाप्त नहीं हो सकता वैसे ही उनकी कृपा कभी समाप्त नहीं हो सकती। गुरु की कृपा संपूर्ण सांसारिक रोगों का नाश करने वाली है।

संत तुलसीदास ने गुरु के चरण कमलों की वंदना की है और उनकी कृपा को समुद्र तथा उन्हें नर रूप में श्री हरि का अवतार माना है, जिनके वचन मन में छाए अंधकार को दूर करने वाले हैं। वह मानते हैं कि गुरु के चरणों की महिमा तो अनंत है, उसके साथ ही उनके चरण रज की भी बड़ी महिमा है। गुरु के चरणों के जो नाखून की ज्योति होती है वह मणियों के प्रकाश के बराबर होती है, जिसको याद करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। यह दिव्य दृष्टि अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाली होती है। वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली होता है जिसके हृदय में यह प्रकाश आ जाता है।

राम चरित्र का वर्णन करने से पहले संत तुलसीदास गुरु को प्रणाम करते हैं और मानते हैं कि श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नैनामृत अंजन है जो नेत्रों के दोषों को नष्ट करने वाला है। गुरु पूर्णिमा के पावन दिन गुरु के चरणों में प्रणाम करना चाहिए और उनका सादर वंदन करना चाहिए। जब उन्हें याद किया जाता है तो वही दिन गुरु पूर्णिमा बन जाता है। इस तरह बालकांड में संत तुलसीदास ने गुरु महिमा का विषद और व्यापक वर्णन किया है।

(ख) अध्येय कविता

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥
बंदउ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि॥
महामोह तम पुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान॥
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान॥
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष विभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनऊँ राम चरित भव मोचन॥

निर्देश : इस कविता का, अर्थ पर ध्यान केंद्रित करते हुए मौन वाचन कीजिए।
इस कविता का, लय पर ध्यान केंद्रित करते हुए सस्वर वाचन कीजिए

(ग) विस्तृत व्याख्या

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

शब्दार्थ : बंदऊँ = वंदना करता हूँ। पद = चरणों में। सुरुचि = सुंदर। सुबास = सुगंध। समन = नाश करना। सकल = संपूर्ण। रुज = रोग।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ संत तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस के बालकांड में निहित गुरु वंदना से ली गई हैं। रामचरितमानस संत तुलसीदास द्वारा रचित प्रबंध काव्य है जिसमें रामकथा को केंद्र में रखते हुए पारिवारिक एवं सामाजिक स्थितियों तथा विसंगतियों का चित्रण हुआ है। रामचरितमानस में सात कांड हैं जिसमें से बालकांड अत्यंत प्रसिद्ध है।

प्रसंग : गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायक कहा जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में वर्तमान के धरातल पर अतीत के सहारे भविष्य की ओर संकेत किया है। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में रामचरितमानस, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, दोहावली, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न आदि महत्वपूर्ण है। इनकी जन प्रसिद्ध रचना रामचरितमानस में बालकांड अत्यंत महत्वपूर्ण है।

व्याख्या : मैं गुरु महाराज के चरण कमलों के रज की वंदना करता हूँ, जो सुंदर स्वाद, सुगंध और अनुराग रूपी रस से परिपूर्ण हैं। वह अमर मूल अर्थात् संजीवनी बूटी के सुंदर चूर्ण हैं जो संपूर्ण सांसारिक रोगों के परिवार का नाश करने वाले हैं।

बोध प्रश्न

1. रामचरितमानस कितने कांडों में विभक्त है?
2. रामचरितमानस का आधार किसे माना जाता है?
3. रामचरितमानस में राम को किसका अवतार माना गया है?
4. तुलसी किसके चरण कमलों की वंदना करना चाहते हैं?

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥

जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥

शब्दार्थ : संभु = शिव। तन = शरीर। मंजुल = कोमल। मोद = प्रसन्नता। जन मन = भक्तों का मन। मुकुर = दर्पण। मल हरनी = मैल को दूर करने वाली। गुन गन = गुणों का समूह।

प्रसंग : तुलसीदास का समन्वयवादी दृष्टिकोण उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग करता है। तुलसी के गुरु नरहरिदास थे। उन्होंने अपनी कई रचनाओं में गुरु महिमा के अलग-अलग रूपों का बखान किया है।

व्याख्या : वह रज पुण्यवान पुरुष के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर, कल्याणकारी तथा आनंद की जननी है। गुरु भक्ति, भक्त के सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली तथा तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है।

विशेष : गुरु भक्ति की महिमा का बखान, अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग, संस्कृत शब्दावली का प्रयोग, रूपक अलंकार।

बोध प्रश्न

5. गुरु भक्ति, भक्तों के मन को कैसा बना देती है?
6. वह रज किसके शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है?

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥

दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥

शब्दार्थ : गुरु पद = गुरु के चरणों की। मनि = मणि। जोती = ज्योति। सुमिरत = स्मरण करते ही। हियँ = हृदय में। दलन = नाश करने वाला। मोह तम = अज्ञान रूपी अंधकार। सप्रकासू =

प्रकाश करने वाला। बड़े भाग = भाग्यशाली। उर = हृदय। आवइ = आ जाता है। जासू = जिसके।

प्रसंग : तुलसीदास का यह मानना है कि गुरु के चरणों की ज्योति मणियों के समान हृदय को प्रकाशमान कर देती है। जो शिष्य हृदय गुरु की वंदना करता है, वह बड़ा ही भाग्यशाली होता है।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि श्री गुरु महाराज के चरणों की ज्योति, मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं।

विशेष: प्रतीक शब्दों का प्रयोग, दोहा छंद का प्रयोग, रूपक अलंकार।

बोध प्रश्न

7. गुरु महाराज के चरणों की ज्योति किसके समान है?
8. किसका स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है?

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

शब्दार्थ : उघरहिं = खुल जाना। बिमल बिलोचन = निर्मल नेत्र। ही के = हृदय में। मिटहिं = मिट जाते हैं। भव रजनी = संसार रूपी रात्रि। सूझहिं = दिखाई पड़ने लगते हैं। रामचरित = राम का चरित्र। गुपुत = गुप्त। प्रगट = प्रकट। जेहि खानिक = जिस खान में।

प्रसंग: तुलसीदास की बाल्यावस्था अनेक विसंगतियों से भरी रही। उनकी बारह प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनकी रचनाएँ विविधताओं से परिपूर्ण है। जहाँ एक ओर उन्होंने गुरु महिमा का बखान किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने इष्टदेव राम की महिमा का गुणगान किया है। जिस तरह कबीर ने गुरु महिमा का बखान किया है, उसी तरह तुलसी भी कहते हैं कि जब भक्त के हृदय में गुरु की भक्ति का उदय होता है तब उसके सभी सांसारिक कष्ट नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : गुरु की कृपा होने पर हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष-दुख मिट जाते हैं तथा श्री राम चरित्र रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं।

विशेष : अनुप्रास अलंकार, रूपक अलंकार, भाषा की प्रतीकात्मकता, मुहावरा प्रयोग।

बोध प्रश्न

10. हृदय के निर्मल नेत्र कब खुल जाते हैं?

11. संसार रूपी रात्रि के दोष-दुख कब मिटते हैं?

बंदउ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

शब्दार्थ : बंदउ = वंदना करता हूँ। पद कंज = चरण कमल। कृपासिंधु = कृपा के सागर। नररूप हरि = नर के रूप में हरि। महामोह तम = मोह रूपी अंधकार। पुंज = समूह। जासु = जिसके। रविकर = सूर्य की किरणें। निकर = समूह ।

प्रसंग : तुलसीदास गुरु के चरण कमलों को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि उनका यह मानना है कि गुरु महाराज के चरण कमल कृपा के सागर और नर रूप में श्रीहरि ही हैं।

व्याख्या : तुलसी कहते हैं कि मैं उन गुरु महाराज के चरण कमलों की वंदना करता हूँ जो कृपा के सागर और मानव रूप में श्रीहरि ही हैं। जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार का नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह के समान हैं।

विशेष: रूपक अलंकार। प्रतीक शब्दों का प्रयोग। अनुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

12. तुलसीदास किनके चरण कमलों की वंदना करना चाहते हैं?

13. नररूप हरि का क्या अर्थ है?

जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान॥

शब्दार्थ : जथा = जैसे। सुअंजन = सिद्धांजन। अंजि = लगाकर। दृग = नेत्र। सुजान = चतुर। कौतुक = कौतूहल। सैल = पर्वत। भूतल = पृथ्वी में। बन = वन। निधान = संचित खजाना।

प्रसंग : तुलसीदास जी का प्रादुर्भाव ऐसे समय हुआ जब समाज के हर क्षेत्र में विषमताएँ व्याप्त थीं। धर्म, दर्शन, समाज सभी क्षेत्रों में टकराव थे। ऐसे विषम वातावरण में तुलसी जैसे महापुरुष की आवश्यकता थी जो समन्वय स्थापित कर सकें। विरोध दूर करके पारस्परिक भेदभाव को मिटाकर समरसता उत्पन्न करना ही समन्वय है। तुलसीदास यह चाहते हैं कि जिस प्रकार साधक

और सिद्ध अपने नेत्रों में सिद्धांजन लगा कर सारी बातें जान लेते हैं उसी प्रकार वह भी अपने नेत्रों में गुरु के चरण कमलों को बसाना चाहते हैं।

व्याख्या : जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान अर्थात् चतुर पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत सी खाने देखते हैं।

विशेष : मुहावरा प्रयोग, अनुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

13. साधक और सिद्ध अपने नेत्रों में क्या लगा कर अपने इष्ट की पूर्ति करते हैं?

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष विभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनऊँ राम चरित भव मोचन॥

शब्दार्थ : गुरु पद = गुरु के चरण। रज = धूल। मंजुल = सुंदर। मृदु = कोमल। अंजन = काजल। नयन = नेत्र। विभंजन = नाश करने वाला। अमिअ = दोष। बिमल = निर्मल। करि = करना। बिलोचन = नेत्र। बरनऊँ = वर्णन करना। भव मोचन = सांसारिक कष्टों को दूर करना।

प्रसंग : गोस्वामी तुलसीदास गुरु के चरणों की धूल अपने माथे पर चढ़ा कर मन को निर्मल करना चाहते हैं तथा भवसागर से पार उतारने वाले श्री राम चरित्र का वर्णन करना चाहते हैं। वह कहते हैं कि -

व्याख्या : श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत अंजन है जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है। उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसार रूपी बंधन से छुड़ाने वाले श्री राम चरित्र का वर्णन करता हूँ।

विशेष : अनुप्रास अलंकार। प्रतीक शब्दों का प्रयोग। गुरु महिमा का बखान। इष्ट देव श्री राम के प्रति भक्ति का भाव ।

बोध प्रश्न

14. गोस्वामी तुलसीदास किसके चरणों की रज से अपने नेत्रों को निर्मल करना चाहते हैं?
15. संसार रूपी बंधन से जीव को छुड़ाने वाले कौन हैं?

काव्यगत विशेषता

गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति शाखा के सर्वोपरि कवि हैं। यह लोकमंगल की साधना के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यह तथ्य न सिर्फ उनकी काव्य संवेदना की दृष्टि से बल्कि काव्य भाषा के घटकों की दृष्टि से भी सत्य है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उन्होंने शास्त्रीय भाषा अर्थात् संस्कृत में सर्जन क्षमता होने के बावजूद लोक भाषा अर्थात् अवधी और ब्रज को ही

अपने साहित्य का माध्यम बनाया है। उन्होंने जीवन और जगत की व्यापक अनुभूतियों तथा मार्मिक प्रसंगों का अचूक वर्णन किया है। यही विशेषता उन्हें महाकवि बनाती है।

'रामचरितमानस' में प्रकृति और जीवन के विविध भावपूर्ण चित्र हैं, जिसके कारण यह हिंदी का अद्वितीय महाकाव्य बनकर उभरा है। इनके सीता राम ईश्वर की अपेक्षा तुलसी के देश काल के आदर्शों के अनुरूप मानवीय धरातल पर पुनः सृष्ट चरित्र हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय में हिंदी क्षेत्र में प्रचलित सारे भावात्मक तथा काव्य भाषाई शब्दों का प्रतिनिधित्व किया है। उनमें भाव-विचार का विरोध तथा काव्य भाषा की समृद्धि मिलती है।

अलंकारों के विभिन्न प्रयोग इनकी रचनाओं में दिखाई देते हैं - अनुप्रास अलंकार, प्रतीक शब्दों का प्रयोग, रूपक अलंकार, गुरु महिमा का बखान।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

'रामचरितमानस' के प्रथम भाग को बालकांड के नाम से जाना जाता है। बालकांड में तुलसीदास ने रामकथा की विशेषता का वर्णन किया है और यह माना है कि यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल बरसता है तो मुक्ता मणि के समान सुंदर कविता होती है। उन कविता रूपी मुक्ता मणियों को युक्ति से बेध कर रामचरित्र रूपी सुंदर धागे में पिरो कर सज्जन अपने हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यंत अनुराग रूपी शोभा होती है। जो वेद मार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपट की मूर्ति और कलियुग के पापों से सने हैं और जो श्री राम के भक्त कहलाकर लोगों को ठगते हैं, संसार के ऐसे लोगों में सबसे पहले तुलसी की गिनती होती है।

वे कहते हैं कि यदि मैं अपने अवगुणों को कहने लगूँ तो कथा बढ़ जाएगी। वह न तो स्वयं को कवि मानते हैं न चतुर, बल्कि अपनी बुद्धि के अनुसार श्री राम जी के गुणों का बखान करते हैं। कवि के पास भाषा एक ऐसा माध्यम होती है जिसके द्वारा वह अपने प्रतिपाद्य को शब्दार्थ करके पाठकों से तादात्म्य स्थापित करता है। काव्य में शब्द और अर्थ का संबंध महत्वपूर्ण होता है। शब्द संतुलन ही तुलसी के काव्य की विशेषता है और यही विशेषता तुलसी के काव्य के अंतर-बाह्य पक्ष अर्थात् अलंकार, चित्रात्मकता आदि विशेषताओं को मुखर बनाता है। तुलसीदास ने काव्य-भाषा के लिए लोक व्यवहार की भाषा को ही चुना है। भाषा और अलंकार की भाँति तुलसीदास ने छंद को भी काव्य का अनिवार्य उपकरण माना है।

'रामचरितमानस' के बालकांड में उन्होंने छंदों का सुंदर प्रयोग किया है। रचना कौशल, प्रबंध पटुता आदि अनेक गुणों का समावेश 'रामचरितमानस' में दृष्टिगत होता है। अपने कई काव्यों में तुलसीदास केवल कवि के रूप में ही नहीं अपितु उपदेशक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। तुलसी के काव्यों की कथा अनेक मार्मिक स्थलों से भरी पड़ी है। चित्रों के माध्यम से

मानव व्यवहार का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। विनय पत्रिका तुलसीदास का सर्वोत्तम गीतिकाव्य है। इसमें तुलसी की भक्ति भावना का पूर्ण परिपाक देखा जा सकता है। 'कवितावली' ब्रज भाषा में रचित काव्य है जिसमें रामकथा का सरस गायन हुआ है। गीतावली में भी गेय पदों में राम की कथा कही गई है।

'दोहावली' में तुलसी ने भक्ति, नीति, प्रेम आदि का विवेचन किया है। इस तरह तुलसीदास का संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। अपने युग की विषम परिस्थितियों में तुलसीदास जी ने समन्वय की विराट चेष्टा की है। तुलसी ने शैव एवं वैष्णव का समन्वय अपनी रचनाओं में दिखाया है। इसी प्रकार सगुण और निर्गुण का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, दार्शनिक क्षेत्र में समन्वय, राजा और प्रजा का समन्वय, साहित्यिक क्षेत्र में समन्वय तुलसी के काव्य की विशेषताएँ रही हैं। तुलसी की भक्ति दास्य भाव अर्थात् सेवक-सेव्य भाव की भक्ति रही है। इनकी भक्ति में संपूर्ण समर्पण का भाव और अनन्यता की भावना दृष्टिगोचर होती है।

बोध प्रश्न

16. गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की विशेषता क्या है?

17. तुलसी ने अपनी रचनाओं में किसका समन्वय दिखाया है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! आप जानते ही हैं कि हिंदी साहित्य के भक्ति काव्य को दो प्रमुख धाराओं में बाँटा गया है - निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इन्हें भी आगे दो-दो शाखाओं में बाँटा गया है - निर्गुण के अंतर्गत संत काव्य और प्रेमाख्यानक काव्य आते हैं। तो सगुण के अंतर्गत राम काव्य और कृष्ण काव्य शामिल हैं। यह विभाजन इन शाखाओं की अलग-अलग प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है। लेकिन इन सभी में कुछ चीजें एक समान हैं। भक्ति काव्य की सभी शाखाओं में गुरु वंदना और गुरु महिमा का वर्णन ऐसी ही सर्वनिष्ठ विशेषता है।

गुरु का महत्व भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु को उसी प्रकार भगवान के समान माना गया है जैसे माता-पिता को। भक्ति के क्षेत्र में जब गुरु का उल्लेख किया जाता है तो उसका अभिप्राय केवल अक्षर ज्ञान कराने वाला अध्यापक नहीं होता। बल्कि आचरण की सभ्यता, जीने की कला, साधना की राह और ईश्वर की अनुभूति कराने वाले को ही गुरु कहा जाता है।

संस्कृत में गुरु शब्द का अर्थ है - अंधकार को मिटाने वाला। अज्ञान और माया के अंधकार को मिटाकर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ऐसी ज्योति जगाने वाले को गुरु कहा गया है जिसके प्रकाश में वह आत्मतत्व का साक्षात्कार करता है और परम तत्व की अनुभूति द्वारा मुक्ति को प्राप्त करता है। कहा भी गया है -

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।

चक्षुरुन्मीलितम् येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

(अर्थात् उन गुरुदेव को नमस्कार है जो अज्ञान के अंधेरे से अंधे हुए मनुष्य की आँखों में ज्ञान रूपी अंजन आँज कर उन्हें खुली हुई दृष्टि प्रदान करते हैं।)

प्राचीन काल से चली आती इस परंपरा को भक्ति काल के कवियों ने अत्यंत श्रद्धा के साथ स्वीकार किया और आगे बढ़ाया। कबीरदास तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि गुरु और परमात्मा दोनों एक साथ सामने आ जाए तो परमात्मा से पहले गुरु को प्रणाम करना चाहिए। क्योंकि गुरु ही परम तत्व के दर्शन का मार्ग दिखाता है। वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर तत्व की चर्चा धार्मिक ग्रंथों में होने पर भी उसका बोध तब तक नहीं होगा जब तक गुरु ज्ञान का दीपक साधक के हाथ में न थमाए।

यह तो हुई संत काव्य की बात। अब जरा प्रेमाख्यानक काव्य के बारे में भी सोचकर देखिए। इस शाखा के सबसे बड़े कवि जायसी हैं। उनके महाकाव्य 'पद्मावत' का रूपक तब तक सार्थक नहीं होता जब तक हीरामन तोते का व्यंग्यार्थ समझ में न आए। इसकी व्याख्या करते हुए स्वयं जायसी ने कहा है कि चित्तौड़ मानव शरीर का प्रतीक है, राजा रतनसेन मन का। पद्मिनी बुद्धि का प्रतीक है और नागमती दुनिया-धंधा अर्थात् माया का प्रतीक है। हीरामन तोता गुरु का प्रतीक है जो रतनसेन रूपी मन को पद्मिनी रूपी बुद्धि को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। यदि रतनसेन और पद्मिनी को आत्मा और परमात्मा का प्रतीक माना जाए तो भी हीरामन तोता गुरु की भूमिका निभाता दिखाई देता है।

निर्गुण भक्ति की भाँति ही सगुण भक्ति काव्य में भी गुरु की महिमा अतुलनीय मानी गई है। कृष्ण काव्य परंपरा में स्वयं भगवान कृष्ण को जगद्गुरु माना गया है और कहा गया है कि - कृष्णम् वंदे जगद्गुरुम्। इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए राम काव्य के सिरमौर महाकवि तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर गुरु वंदना और गुरु महिमा का बखान किया है। वे मानते हैं कि सद्गुरु सब प्रकार की शक्तियों और सिद्धियों की ऊर्जा से भरे होते हैं। ऐसे सद्गुरु के चरण स्पर्श करने से इस ऊर्जा का अंतरण शिष्य के व्यक्तित्व में हो जाता है और वह ऐसी सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त कर लेता है जिसके द्वारा राम चरित रूपी परम तत्व का साक्षात्कार और अनुभव किया जा सकता है।

गुरु संसार में मायावश फँसे हुए व्यक्ति के मोह आदि सब रोगों का निवारण करने वाली संजीवनी बूटी के समान है। जैसे किसी मूर्छित व्यक्ति को संजीवनी मिल जाए तो वह नया जीवन प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार सांसारिक मोह जाल में पड़ा हुआ व्यक्ति भी मूर्छित के समान ही है। गुरु से प्राप्त बोध के द्वारा वह इस मूर्छा से बाहर निकलकर परमात्मा की साधना में प्रवृत्त होता है। गुरु के चरणों की धूल को भी तुलसी ने भगवान शिव के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति के समान कल्याण और आनंद प्रदान करने वाली माना है। इसका अर्थ यही है कि

वे गुरु के सान्निध्य को साधक के सारे मानसिक और बौद्धिक विकारों को दूर करने वाला मानते हैं। जो गुरु ऐसा न कर सके उसे सद्‌गुरु नहीं कहा जा सकता।

इतना ही नहीं, तुलसी ने सद्‌गुरु के चरणों के नाखूनों की ज्योति को भी मणियों के प्रकाश के समान माना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि गुरु के नाखूनों में हीरे जड़े होते हैं। बल्कि इसका लक्षणिक अर्थ यह है कि गुरु की सेवा करने से उनके ज्ञान का प्रकाश शिष्य को भी प्रकाशवान बना देता है। इससे शिष्य को ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है जो हर प्रकार के अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट कर देती है। इसका प्रभाव यह होता है कि साधक अथवा शिष्य के अंतर्ज्ञान के नेत्र खुल जाते हैं। परिणाम स्वरूप वह सर्वत्र व्याप्त ईश्वरीय तत्व रूपी माणिक्य के दर्शन कर पाता है।

11.4 पाठ-सार

गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। पूर्व मध्यकाल में मुख्य रूप से काव्य रचना की दो शैलियाँ प्रचलित थीं - प्रबंध और मुक्तक। संत तुलसीदास ने दोनों काव्य रूपों में रचनाएँ की हैं। उन्होंने रामचरितमानस की रचना प्रबंध शैली में की है और विनय पत्रिका तथा अन्य रचनाएँ मुक्तक शैली में। इनके बारह ग्रंथ अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

रामचरितमानस में तुलसी ने भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, भक्ति और कवित्व का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य की रचना अवधी भाषा में तथा दोहा, चौपाई शैली में की गई है। रचना कौशल, प्रबंध एवं सहृदयता आदि सारे गुणों का समावेश रामचरितमानस में दिखाई देता है। इस महाकाव्य में सात कांड हैं और प्रथम कांड बालकांड के नाम से जाना जाता है। इसमें राम कथा का प्रारंभ करते हुए तुलसी ने गुरु महिमा का बखान किया है। वास्तव में यह ग्रंथ व्यवहार का दर्पण है जिसमें विभिन्न चरित्रों के माध्यम से मानव व्यवहार का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। तुलसी के राम शक्ति, शील और सौंदर्य के भंडार हैं और वे लोकरक्षक भी हैं।

रामचरितमानस के बालकांड में तुलसीदास ने गुरु वंदना की है क्योंकि वह श्री राम के चरित्र को उजागर करने से पहले गुरु की वंदना करते हुए उनसे आशीर्वाद लेना चाहते हैं क्योंकि गुरु के चरण कमलों की रज जीव को संपूर्ण सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाती है, भक्तों के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करती है। गुरु के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है जिसका स्मरण करते ही हृदय प्रकाशमान होता है। गुरु की कृपा से हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार के सारे कष्ट मिट जाते हैं। तुलसीदास गुरु को श्रीहरि का ही रूप मानते हैं और उनका यह मानना है कि उनके वचन, मन में छाए दुख रूपी अंधकार का नाश करते हैं।

गुरु की महिमा से जीव सारी बातों को जान लेता है। उन्हीं की कृपा से तुलसी संसार रूपी बंधन से छुड़ाने वाले श्री राम का चरित्र गाना चाहते हैं।

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

सगुण भक्ति की राम काव्य धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास द्वारा रचित गुरु महिमा विषयक काव्यांश के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. गोस्वामी तुलसीदास समन्वयवादी चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं।
2. तुलसीदास का युग विषम परिस्थितियों और उनसे पैदा हुए दिग्भ्रम का युग था।
3. तुलसीदास की भक्ति भावना में गुरु का स्थान कबीरदास की भक्ति भावना के समान ही सच्चे मार्गदर्शक का है।
4. गुरु-शिष्य के आदर्श संबंधों की अभिव्यक्ति भक्ति का ही एक अंग है।
5. तुलसीदास के लोकनायकत्व का एक आधार भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा में निहित है।

11.6 शब्द संपदा

1. अंजन	= काजल, सुर्मा
2. अतीत	= भूतकाल
3. आषाढ़	= बरसात का पहला महीना
4. कौतुक	= क्रीड़ा, खिलवाड़
5. चरण रज	= पैरों की धूल
6. ज्योति	= प्रकाश
7. दलन	= नाश करना
8. पथप्रदर्शक	= रास्ते दिखाने वाले
9. पुनःसृष्ट	= फिर से रचा गया
10. भवतारक	= संसार से उद्धार करने वाले
11. भवसागर	= संसार रूपी समुद्र
12. भाषिक	= भाषा का
13. माणिक्य	= एक रत्न (लाल)
14. मुक्ता	= मोती
15. मोह तम	= मोह रूपी अंधकार
16. लोकभाषा	= जन साधारण की भाषा

17. वंदना = पूजा
18. विभूति = भभूत
19. विषद = बड़ा
20. विसंगति = संगति का बिगाड़ना
21. सनातन = प्राचीन
22. समरसता = भेदभाव हीन समानता
23. सर्जन/सृजन = बनाना, निर्माण करना
24. सुअंजन = सुंदर अंजन

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।

1. तुलसी के काव्य में 'गुरु महिमा' के महत्त्व को रूपायित कीजिए।
2. गोस्वामी तुलसीदास के समय के समाज की स्थिति पर अपने विचार दीजिए।
3. रामचरितमानस के बालकांड के भाव सौंदर्य को अपने शब्दों में लिखिए।
4. तुलसी के लोकनायकत्व पर प्रकाश डालिए।
5. 'रामचरितमानस में तुलसी ने भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, भक्ति और कवित्व का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. क्या तुलसी के युग की समस्याएँ वर्तमान समाज में भी विद्यमान हैं? अपने शब्दों में लिखिए।
2. गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन........... बरनऊँ राम चरित भव मोचन॥ इस काव्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
3. बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा .... सकल भव रुज परिवारू॥ इस काव्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
4. उघरहिं बिमल बिलोचन ही के .... गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥ इस काव्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
5. तुलसी के चित्रात्मक भाषा सौंदर्य को उदाहरण सहित समझाइए।

6. भक्तिकालीन काव्य में गुरु महिमा की परंपरा पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. रामचरितमानस का आधार .... को माना जाता है। ( )
   (अ) कंब रामायण (ब) वाल्मीकि रामायण (स) रंगनाथ रामायण

2. लोकनायक कौन हैं? ( )
   (अ) प्रसाद (ब) सूरदास (स) तुलसीदास

3. 'कवितावली' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) सुमित्रानंदन पंत (ब) केदारनाथ सिंह (स) तुलसीदास

4. तुलसीदास किस शाखा के कवि हैं? ( )
   (अ) कृष्णभक्ति शाखा (ब) रामभक्ति शाखा (स) प्रेममार्गी शाखा

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. बंदऊँ गुरु पद............ परागा ।
2. श्री गुरु पद………….... गन जोती।
3. जथा .... अंजि दृग।
4. सूझहिं .... मनि मानिक।
5. गोस्वामी तुलसीदास ....शाखा के कवि माने जाते हैं।
6. .... तुलसीदास का सर्वोत्तम गीतिकाव्य है।
7. साधक और सिद्ध अपने नेत्रों में .... लगा कर सारी बातें जान लेते हैं।
8. .... में तुलसी ने भक्ति, नीति, प्रेम आदि का विवेचन किया है।

III सुमेल कीजिए।

(क) तुलसीदास के गुरु	(अ) तुलसीदास
(ख) तुलसीदास की विधा	(ब) हुलसी
(ग) विनय पत्रिका	(स) रामललानहछू
(घ) तुलसी की माता का नाम	(द) नरहरिदास
(च) तुलसीदास का संस्कार गीत संग्रह	(य) पद्य

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. गोस्वामी तुलसीदास, रामचंद्र शुक्ल.

2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा.

3. तुलसी: आधुनिक वातायन से, रमेश कुंतल मेघ.

4. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.

5. मध्यकालीन कविता पुनर्पाठ, करुणाशंकर उपाध्याय.

इकाई 12 : राम वन गमन

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मूल पाठ : राम वन गमन
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
12.4 पाठ-सार
12.5 पाठ की उपलब्धियाँ
12.6 शब्द संपदा
12.7 परीक्षार्थ प्रश्न
12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

छात्रो! हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग में महान संत-महात्माओं, साहित्यकारों, कवियों और आदर्श व्यक्तियों का जन्म हुआ। इसी युग में साहित्य दरबारी संस्कृति को छोड़कर जनता के आस्वादन का साधन बना। सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों से त्रस्त जनता भक्ति का मार्ग अपनाने लगी। त्रस्त जनता को सांत्वना देने के लिए कुछ संतों ने अपना पूर्ण योगदान दिया। गोस्वामी तुलसीदास भी उन्हीं में से एक हैं। उनके साहित्य में लोक मंगल की भावना को देखा जा सकता है।

12.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अंतर्गत आप तुलसीदास की कविता 'राम वन गमन' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- तुलसीदास के व्यक्तित्व और जीवन दर्शन से परिचित हो सकेंगे।
- तुलसीदास की कविता 'राम वन गमन' की व्याख्या कर सकेंगे।
- तुलसीदास की लोकमंगल भावना को समझ सकेंगे।
- तुलसीदास कृत 'कवितावली' के संबंध में विस्तार से जान सकेंगे।

12.3 मूल पाठ : राम वन गमन

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

'राम वन गमन' शीर्षक इस कवितांश को तुलसीदास कृत 'कवितावली' के अयोध्या कांड से लिया गया है। यह राम कथा पर आधारित है। ब्रज भाषा में रचित 'कवितावली' सात कांडों में विभाजित है - बाल कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड, लंका कांड और उत्तर कांड।

राम के चौदह वर्ष का वनवास काटने के लिए जंगल की ओर प्रस्थान करते समय सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ चलते हैं। धूप में चलने की आदत न होने के कारण सीता को वन के मार्ग में चलते समय कष्ट सहना पड़ता है। इसके कारण वे व्याकुल होकर श्रीराम से पूछती हैं कि और कितना चलना होगा? पत्तों से बनी कुटिया कहाँ बनाएँगे? श्रीराम अपनी पत्नी की इस आतुरता को पहचान लेते हैं और दुखी हो जाते हैं क्योंकि लाड़-प्यार से पली सीता को कष्ट सहना पड़ रहा है।

लक्ष्मण जब पानी लाने के लिए जाते हैं, तो सीता श्रीराम से कहती हैं कि पेड़ की छाया में थोड़ी देर विश्राम कर लें ताकि वे श्रीराम को हवा कर सकें और धूप के कारण झुलसे हुए उनके पैरों को धो सकें। श्रीराम समझ जाते हैं कि सीता बहुत थकी हुई हैं। इसीलिए वे पैरों से काँटे निकालने के बहाने बहुत देर तक बैठ जाते हैं। अपने पति के प्रेम को समझकर सीता प्रफुल्लित हो उठती हैं। इस कविता में तुलसीदास ने अत्यंत मार्मिक रूप से सीता और श्रीराम के अनन्य प्रेम और समर्पण भाव को दर्शाया है।

(ख) अध्येय कविता

[1]

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सूखी गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्न कुटी करिहैं कित ह्वै?
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै॥

[2]

जल को गए लक्खनु, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै, बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाह को नेहु लख्यो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥

निर्देश : इस कविता का सस्वर वाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

[1]

पुर तें निकसि रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सूखी गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्न कुटी करिहैं कित ह्वै?
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै॥

शब्दार्थ : पुर = नगर। निकसि = निकली। रघुबीर = श्रीराम। बधू = वधू, पत्नी। धीर = धीरज। मग = मार्ग। डग = कदम। द्वै = दो। भाल = मस्तक, माथा। कनीं = बूँदें। मधुराधर = कोमल होंठ। केतिक = कितना। पर्न कुटी = पत्तों से बनी हुई कुटी, झोंपड़ी। कित = कहाँ। तिय = स्त्री, पत्नी। लखि = देखकर।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश तुलसीदास कृत 'राम वन गमन' शीर्षक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग : सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम वन जा रहे हैं। इस पद में तुलसीदास ने सीता के मन की व्याकुलता का स्वाभाविक वर्णन किया है। क्योंकि धूप में चलने की आदत न होने के कारण सीता को राह में कष्ट होता है।

व्याख्या : नगर से श्रीराम की पत्नी सीता धीरज धरकर वन के मार्ग में अपने पति के साथ चलने के लिए निकलती हैं। दो कदम चलते ही अर्थात् थोड़ी दूर चलते ही सीता के माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगती हैं। उनके कोमल होंठ सूखने लगते हैं। क्योंकि उन्हें पैदल चलने की आदत जो नहीं थी। वे आतुरता से राम से पूछती हैं कि अभी हमें कितना दूर पैदल चलना होगा? आप पत्तों की कुटिया किस स्थान पर बनाएँगे? अपनी प्रिय सीता की व्याकुलता को देखकर श्रीराम की मनोहर आँखों से आँसू बहने लगे।

काव्यागत विशेषता

1. सीता के माथे पर पसीने की बूँदों का झलकना यह व्यंजित करता है कि सीता को पैदल चलने की आदत नहीं है। अतः 'माथे पर पसीने की बूंदों का झलकना' मार्ग में पैदल चलने से उत्पन्न कष्ट की ओर इंगित करता है।
2. इस अवतरण में सीता की व्याकुलता का चित्रण है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि कष्ट सहने की आदत न होने के कारण स्त्रियाँ बहुत जल्दी व्याकुल हो उठती हैं।
3. इस पद में स्त्री के स्वभाव का उल्लेख है। अतः यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।
4. शृंगार एवं करुण रस का मनोहारी चित्रण है।

बोध प्रश्न

1. नगर से बाहर निकलकर दो पग चलने के बाद सीता की क्या दशा हुई?
2. अब और कितनी दूर चलना है, पर्णकुटी कहाँ बनाएँगे - किसने किससे कहा? और क्यों?

3. माथे पर पसीने की बूँदों का झलकना क्या व्यंजित करता है?
4. इस पद में कौन-सा अलंकार प्रयुक्त है?

[2]

जल को गए लक्खनु, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै, बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाह को नेहु लख्यो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥

शब्दार्थ : लक्खनु = लक्ष्मण। लरिका = लड़का, बालक। परिखौ = प्रतीक्षा। घरीक = घड़ी भर। ठाढ़े = खड़े। पसेउ = पसीना। बयारि = वायु, हवा। पांय = पाँव। पखारिहौं = धोना। भूभुरि = धूप से तप्ति बालू। डाढ़े = जले हुए। कंटक = काँटा। पुलको = हर्षवश रोमांचित होना, पुलकित हो उठना। तनु = शरीर। बारि = जल। नाह = पति। नेह = अनुराग, स्नेह। लख्यो = देखा।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश तुलसीदास कृत 'राम वन गमन' शीर्षक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग : इस पद में श्रीराम और सीता के आपसी प्रेम का मार्मिक चित्रण किया गया है। धूप के कारण सीता बहुत थक चुकी थीं। लेकिन वे यह बात न कहकर श्रीराम से कहती हैं कि जब तक लक्ष्मण पानी लेकर आएँगे, तब तक हम पेड़ की छाया में बैठ जाएँ तो मैं आपको हवा कर दूँगी तथा धूप से झुलसे हुए आपके पैरों को धो दूँगी।

व्याख्या : सीता राम से कहती हैं कि लक्ष्मण पानी लेने के लिए गए हैं। वे अभी बालक ही हैं। अतः उन्हें आने में देर तो लगेगी। जब तक वे आएँ, तब तक हम कहीं छाँव में खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा करेंगे। मैं आपका पसीना पोंछ कर हवा कर देती हूँ। धूप से तपे हुए आपके पैरों को धो देती हूँ। जानकी (सीता) की बातें सुनकर राम उनकी पीड़ा को समझ जाते हैं कि वे बहुत थक चुकी हैं। अतः श्रीराम पैरों से काँटे निकालने के बहाने बहुत देर तक बैठ जाते हैं। अपने पति के प्रेम को देखकर सीता प्रफुल्लित हो उठती हैं। उनकी आँखों से आँसू छलकने लगते हैं।

काव्यागत विशेषता

1. यहाँ दंपति के बीच सहज प्रेम की अभिव्यक्ति मार्मिक है।
2. राम ने अधिक समय तक विश्राम इसलिए किया, ताकि सीता की थकान दूर हो सके।
3. शृंगार रस की अभिव्यक्ति।
4. अनुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

5. सीता का मन क्यों प्रफुल्लित होता है?
6. 'पोंछि पसेउ बयारि करौं' का क्या अर्थ है?

7. 'अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े' का क्या अर्थ है?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विशेष रूप से भक्तिकाल में गोस्वामी तुलसीदास का विशिष्ट स्थान है। तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। राम के प्रति इनका समर्पण, स्नेह, दास्य भाव, आदर आदि प्रशंसनीय हैं।

हिंदी साहित्य में लोकनायक अथवा लोकवादी कवि के रूप में तुलसीदास प्रसिद्ध हैं। उनकी लोक साधना की आधार भूमि समन्वय भावना है। मध्यकालीन सांस्कृतिक चेतना के उदात्त रूप को उनके साहित्य में देखा जा सकता है। उन्होंने उत्कृष्ट राम काव्य का सृजन किया है। दरबारी संस्कृति से पूरा देश त्रस्त था। ऐसे समय में तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। उन्होंने साहित्य को दरबारी संस्कृति से निकाला तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श रूप को जनता के सम्मुख रखा। तुलसी ने एक ओर राम को भगवान विष्णु का अवतार और पूर्ण ब्रह्म माना है, तो दूसरी ओर राम को समाज में आदर्श स्थापित करने वाला अनुकरणीय नायक भी माना है।

तुलसीदास ने अपने आपको राम का दास मानकर अपनी भक्ति को व्यक्त किया है - 'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।' उनकी भक्ति भावना में लोक मंगल की कामना निहित है। वे जहाँ अपनी दास्य भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं, वहीं जनता की पीड़ा, समाज की विडंबना और देश की स्थिति पर भी विचार करते हैं। 'कवितावली' में जहाँ उन्होंने राम-कथा के कुछ मार्मिक प्रसंगों (पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े) का उल्लेख किया है, वहीं जनता की पीड़ा के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा है - खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, भलि,/ बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।/ जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,/ कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?' तुलसीदास ने राम को एक ऐसे लोकनायक के रूप में चित्रित किया है जिनकी आवश्यकता आज भी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास को भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि माना है। रामविलास शर्मा के अनुसार 'तुलसीदास का मूल संदेश यही है कि मनुष्य बड़ा होता है अपनी मनुष्यता से, न कि जाति और पद से।' रामकथा में तुलसी ने जिस सामाजिक और नैतिक आदर्श की स्थापना की है, वह निःसंदेह अतुलनीय है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सर्वांगपूर्णता को तुलसीदास की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता मानते हैं। क्योंकि वे जीवन के किसी एक पक्ष को छोड़कर नहीं चलते बल्कि सभी पक्षों के साथ सामंजस्य बिठाते हैं। "तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतना ही कि जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 97)।

हजारीप्रसाद द्विवेदी भी तुलसीदास के काव्य की सफलता का रहस्य समन्वय शक्ति को ही मानते थे। चूँकि तुलसी को लोक और शास्त्र दोनों का व्यापक ज्ञान प्राप्त था। "उनके काव्य ग्रंथों में जहाँ लोक-विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वहीं शास्त्र के गंभीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है। लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंतन का, ब्राह्मण और चांडाल का, पंडित और अपंडित का समन्वय" द्रष्टव्य है। (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 131)।

तुलसीदास की रचनाओं में प्रदर्शनप्रियता और शब्द चमत्कार को नहीं देखा जा सकता है। भावों या तथ्यों की अभिव्यंजना के लिए वे स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा के संबंध में रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि "गोस्वामी की वाक्य रचना अत्यंत प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है, एक भी शब्द फालतू नहीं। सब रसों की सम्यक व्यंजना इन्होंने की है, पर मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं किया है। प्रेम और शृंगार का ऐसा वर्णन जो बिना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पढ़ा जा सके, गोस्वामी जी का ही है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 101)

तुलसीदास की रचना शैली के संबंध में रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि "काव्यभाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्य क्षेत्र में गोस्वामी जी को मिलीं। तुलसीदास जी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से सबके सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिंदी कविता के प्रेमी मात्र जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ब्रज भाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं वही माधुर्य और भी संस्कृत रूप में हम गीतावली और कृष्णगीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी की पद्मावत में मिलती है वही जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवैरामायण और रामललानहछू में हम पाते हैं।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 91-92)। तुलसीदास का काव्य हमें कर्तव्य, त्याग, प्रेम, सहिष्णुता, लोकमंगलकारी भावना आदि के ऐसे लोक में ले जाता है कि जिससे हम अपने लक्ष्य को पहचान सकते हैं।

बोध प्रश्न

8. तुलसीदास के काव्य की सफलता का रहस्य क्या है?
9. तुलसीदास ने राम को किस तरह से माना है?
10. तुलसीदास की भक्ति पद्धति के संबंध में रामचंद्र शुक्ल का क्या कथन है?
11. तुलसीदास अपनी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग क्यों करते हैं?

12. तुलसीदास का मूल संदेश क्या है?

छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि 'राम वन गमन' शीर्षक यह कविता 'कवितावली' से गृहीत है। तो आइए, 'कवितावली' के कथ्य और मुख्य उद्देश्य के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करें।

कवितावली का नामकरण

यह मुक्तक छंदों का संग्रह है। इसका हर पद अपने आप में पूर्ण है। आरंभ में कवित्त छंद का अर्थ व्यापक था। अन्य छंदों के साथ सवैया और छप्पय छंदों की भी कवित्तों में गणना की जाती थी। लेकिन कालांतर में कवित्त का अर्थ संकुचित हो गया और सवैया तथा छप्पय अलग छंद के रूप में स्वीकार किए जाने लगे। कहने का आशय है कि इस कृति में कवित्तों की अवली होने के कारण इसका नामकरण 'कवितावली' किया गया है। कुछ विद्वानों ने इसे 'कवित्त रामायण' भी कहा। "कवितावली में रामचरित के अतिरिक्त तुलसीदास और उनका देशकाल भी है और उत्तर कांड में तो यह उभर कर आया है। इसलिए इसे कवित्त-रामायण की संज्ञा देना समुचित नहीं जान पड़ता। तुलसीदास ने अपने समय में सभी प्रचलित साहित्यिक पद्धतियों पर राम के गुणगान का सफल प्रयत्न किया है। कवितावली में उन्होंने कवित्त, सवैया और छप्पय की प्राचीन पद्धति जो पृथ्वीराजरासो आदि की रही है, अपनाई है। यह पद्धति लोक में प्रचलित और प्रिय थी। कवितावली में बहुत से ऐसे छंद हैं, जिन्हें रामचरित मानस के कथा-प्रवाह में जोड़ा जा सकता है और कहीं-कहीं कथा-प्रवाह को इससे गति मिल सकती है। इसलिए यह भी अनुमान किया जा सकता है कि हो सकता है रामचरित मानस के अंश के रूप में इसके बहुत से छंदों की रचना की गई हो और बाद में उसे शैली के कारण अनुपयुक्त मानकर अलग कर दिया गया हो।" (संपादक. सुधाकर पांडेय. तुलसीदास कृत कवितावली. पृ. 19)। अतः इस कृति की शैली के कारण 'कवितावली' नामकरण ही सार्थक है।

रचना काल

कहा जाता है कि 'कवितावली' का संग्रह तुलसीदास के बाद किसी तुलसी-भक्त ने किया होगा। 'कवितावली' में 'रुद्रबीसी', 'मीन की सनीचरी' और 'महामारी' आदि घटनाओं का उल्लेख है। मिश्रबंधुओं के अनुसार 'रुद्रबीसी' का समय सं. 1665-1685 है। 'मीन की सनीचरी' (मीन राशि में शनि की स्थिति) तुलसी के जीवन काल में दो बार (सं. 1669, सं. 1671) लगी थी। 'महामारी' के संबंध में "विद्वानों का अनुमान है कि यह 'ताऊन' रहा होगा जो भारत में पहली बार सं. 1673 में महामारी के रूप में फैला था। 'कवितावली' के छंदों की रचना इस लंबी अवधि के भीतर होती रही। 'कवितावली' में कुछ ऐसे छंद भी हैं जो कवि की वृद्धावस्था की सूचना देते हैं। इसीलिए यह अनुमान लगाया गया है कि सं. 1631 से लेकर सं. 1680 के बीच

‘कवितावली’ के छंद लिखे जाते रहे। इसलिए इनमें अनेक विषयों का समावेश हो सका है।” (रामचंद्र तिवारी, तुलसीदास, पृ. 30)

कवितावली की विधा

‘कवितावली’ का प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है। अतः इसे मुक्तक कहना ही उचित है।

विषय वस्तु

‘कवितावली’ की विषय वस्तु राम कथा है और इस कथा का विभाजन सात कांडों में किया गया है। विभिन्न कांड और उसमें संकलित कवित्तों की संख्या इस प्रकार हैं -

1. बाल कांड	=	21 छंद
2. अयोध्या कांड	=	28 छंद
3. अरण्य कांड	=	1 छंद
4. किष्किंधा कांड	=	1 छंद
5. सुंदर कांड	=	32 छंद
6. लंका कांड	=	58 छंद
7. उत्तर कांड	=	183 छंद

उपर्युक्त विभाजन को देखने से स्पष्ट होता है कि ‘कवितावली’ में अत्यधिक मात्रा में ‘उत्तर कांड’ से संबंधित प्रसंग हैं। ‘अरण्य कांड’ तथा ‘किष्किंधा कांड’ की घटनाओं का केवल एक-एक छंद में ही समाहार किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि इस कृति की रचना किसी निश्चित कालावधि में और प्रबंध रूप में नहीं की गई है।

बाल कांड में राम की बाल क्रीड़ाओं का चित्रण है। इसमें बाल रूप की झाँकी, बाल लीला, धनुर्यज्ञ और परशुराम-लक्ष्मण-संवाद हैं। अयोध्या कांड में वनगमन, केवट का पाद - प्रक्षालन, वन में राम यात्रा का वर्णन, अरण्य निवास का चित्रण है। अरण्य कांड में मारीच प्रसंग का चित्रण है तथा किष्किंधा कांड में हनुमान जी का समुद्र-लंघन है। सुंदर कांड में अशोक वन, लंका दहन, अशोक वाटिका से हनुमान की विदाई का वर्णन है। लंका कांड में राक्षसों की चिंता, त्रिजटा का आश्वासन, समुद्र पार करना, अंगद का दूत बनकर जाना, रावण-मंदोदरी संवाद, राक्षस-बंदर संग्राम, लक्ष्मण मूर्च्छा तथा राम-रावण युद्ध का अंत वर्णित है। उत्तर कांड में राम की कृपालुता, राम महिमा, नाम विश्वास, राम-नाम-महिमा, राम-कीर्ति गान, चित्रकूट वर्णन, प्रयाग-सुषमा वर्णन, गंगा माहात्म्य, अन्नपूर्णा-विश्वनाथ माहात्म्य और स्तवन, काशी में महामारी आदि अनेक विषयों का चित्रण है। कुल 324 पदों में तुलसीदास ने इन विषयों का मार्मिक चित्रण किया है।

बोध प्रश्न

13. कवितावली का क्या अर्थ है?

14. मीन की सनीचरी का क्या अर्थ है?
15. ‘कवितावली’ में कुल कितने छंद हैं?

साहित्यिक सौंदर्य

‘कवितावली’ में तुलसीदास का व्यक्तित्व राम-महिमा के साथ देश काल से तादात्म्य स्थापित करता है। लोक मंगल की कामना करने वाले भक्त के रूप में तुलसी प्रकट होते हैं। वे कहते हैं कि श्रमजीवी, किसान, व्यापारी, भिखारी, भाट, नौकर, नट, चोर, दूत और जादूगर आदि सभी पेट के लिए ही पढ़ते हैं, अनेक कार्य करते हैं, पर्वतों पर चढ़ते हैं, दुर्गम राहों पर चलते हैं। कहने का आशय है कि पेट की भूख मिटाने के लिए ऊँच-नीच, धर्म-अधर्म सभी करते हैं और बेटा-बेटी को भी बेचने के लिए नहीं हिचकते (ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि, पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी)।

तुलसी तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति को बखूबी उजागर करते हैं। उनके समय में “हिंदुओं के समाज का फौलादी ढाँचा जहाँ एक तरफ अतिरिक्त सावधानी के कारण अधिकाधिक कसा जा रहा था, वहाँ उसी कसाव के परिणामस्वरूप धार्मिक और साहियिक क्षेत्र में यथास्थिति मर्यादा पर कसके चोटें भी की जा रही थीं। अतिरिक्त सामाजिक सावधानी का शिकार स्वयं तुलसीदास को भी होना पड़ा था। समाज में धन की मर्यादा बढ़ी हुई थी। दरिद्रता हीनता का लक्षण मानी जाती थी।” (हजारीप्रसाद द्विवेदी. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास. पृ. 126)। लोग पेट के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार थे। यहाँ तक कि बेटे-बेटी को भी बेचने तक से नहीं हिचकते थे। उस समय किसान के पास खेती करने के लिए धरती नहीं थी। लोग आर्थिक दृष्टि से इतने कमजोर हो गए कि भिखारी को भीख तक देने की स्थिति में नहीं थे। व्यापारियों का व्यापार भी चौपट हो चुका था। जीविका के साधन भी समाप्त हो चुके थे। संसार दरिद्र-दसानन अर्थात् गरीबी रूपी रावण से पीड़ित था। ऐसी स्थिति में संसार की रक्षा कवल राम ही कर सकते हैं। अतः तुलसी कहते हैं कि

बेदहूँ पुराण कही, लोकहूँ बिलोकिअत,
साँकरे सबै पै, राम! रावरे कृपा करी।
दरिद्र-दसानन बयाई दुनी दीनबंधु!
दुरित-बहन देखि तुलसी हहा करी॥

तुलसीदास भक्त कवि थे। उनके जीवन और साहित्य का उद्देश्य था अपने आराध्य श्रीराम की स्तुति करना, उनकी महिमा का चित्रण करना, उनके रक्षक रूप के प्रति आस्था व्यक्त करना। उत्तर कांड में उन्होंने अनेक स्थलों पर श्रीराम की कृपालुता, राम नाम पर विश्वास, महिमा आदि का वर्णन किया है। यथा -

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूढ़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजाखुर वारिधि बाढ़े।
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटि तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुं मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥

श्रीराम और उनके संबंधियों के गुणों का वर्णन करते हुए तुलसी ने तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का चित्रण किया है। जाति-पाँति के बंधन से मनुष्य के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने का आह्वान भी 'कवितावली' में है।

भाषा शैली

तुलसीदास के समय हिंदी काव्य में दो ही भाषाओं का प्रचलन था - ब्रज और अवधी। इन दोनों भाषाओं में भी काव्य के लिए ब्रज भाषा का ही अधिक प्रयोग किया जाता था क्योंकि अवधी की तुलना में ब्रज भाषा में माधुर्य और लालित्य है। तुलसी ने अवधी का प्रयोग 'रामचरितमानस' में किया है और 'कवितावली' में ब्रज भाषा का। 'कवितावली' की भाषा अत्यंत परिमार्जित है। इसमें ब्रज भाषा के साथ-साथ अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, राजस्थानी, बंगला, गुजराती, मराठी, अरबी-फारसी के शब्द भी मिलते हैं। भावों के अनुरूप अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ इसके कथ्य को प्रामाणिकता प्रदान करती हैं। अलंकारों और सभी रसों का सुंदर प्रयोग पाया जाता है।

बोध प्रश्न

16. तुलसीदास के समय में समाज की क्या स्थिति थी?
17. 'कवितावली' में प्रयुक्त भाषा कैसी है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! राम कथा में 'राम वन गमन' का प्रसंग एक सर्वथा नए मोड़ को उपस्थित करने वाला प्रसंग तो है ही, यह अति कारुणिक भी है। चौदह वर्ष के लिए राम का वनवास हेतु जाना दशरथ बर्दाश्त नहीं कर पाते। वे राम का वियोग पहले भी सह चुके थे जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए माँग कर ले गए थे। लेकिन वह वियोग स्थायी नहीं था। इसके विपरीत कैकेयी के माँगे गए वरदान के रूप में इतनी लंबी अवधि के लिए राम को जंगलों में भेजने के अपने आदेश से दशरथ स्वयं टूट गए। इसी तरह अयोध्या के राजमहल से लेकर नगरवासी, सब स्त्री-पुरुष अपने आपको राम के बिना असहाय समझकर रोने लगे। तुलसी ने दर्शाया है कि पिता दशरथ से लेकर नगरवासियों तक के इस प्रकार दुखी होने के बावजूद राम पूरी तरह शांत रहते हैं। एक बार तो ऐसा भी होता है कि लक्ष्मण उत्तेजित हो जाते हैं और विद्रोह की बातें करने लगते हैं। लेकिन राम तनिक भी विचलित नहीं होते। ऐसा नहीं है कि राम को अपने माता-पिता अथवा प्रजा से प्रेम नहीं है। लेकिन यह प्रेम उन्हें इतना भावुक नहीं बना

पाता कि वे अपने कर्तव्य से डिग जाएँ। राम की कथा बड़ी हद तक भावना और कर्तव्य के द्वंद्व की कथा है। राम इसी कारण मर्यादा पुरुषोत्तम हैं कि वे भावुकता में नहीं बहते और दृढ़ता से कर्तव्य का पालन करते हैं। पिता के वचन का पालन करना अर्थात् सत्य पर टिके रहना उनका ऐसा कर्तव्य है जिसके लिए वे सारे सुखों और भोग-विलास को ठोकर मार देते हैं। इस से उनके धैर्यशाली और उदात्त होने का पता चलता है। काव्यशास्त्र में महाकाव्य के सर्वश्रेष्ठ नायक को धीरोदात्त नायक कहा गया है। राम ऐसे ही धीरोदात्त नायक हैं। कवि ने राम के धैर्य और औदात्य को प्रकट करने के लिए उन्हें विपरीत परिस्थितियों के बीच तनिक भी विचलित न होने वाले महा पुरुष के रूप में चित्रित किया है। तुलसी के राम एक अनासक्त कर्मयोगी हैं। वे जल में कमल की भाँति हैं। आसक्तियाँ उनके चित्त का स्पर्श नहीं करतीं। उन्हें अपने कष्ट की कोई परवाह नहीं है, लेकिन अपने प्रिय जन का कष्ट देखकर उनका भी हृदय पिघल जाता है। सीता उनकी परिणीता पत्नी है और सुख-दुख में साथ निभाने की अपनी प्रतिज्ञ के अनुसार वे राम के साथ जिद्द करके वन की ओर चलती है। अत्यंत सुकुमारी सीता कुछ दूर पैदल चलकर ही पसीने-पसीने हो जाती हैं। हाँफने लगती हैं। उनसे और नहीं चला जाता। राम उनकी यह दशा देखकर इतने विह्वल हो जाते हैं कि उनकी आँखों से आँसू झरने लगते हैं। कोई अन्य व्यक्ति होता तो इतना कष्ट को न सह कर पिता के आदेश की अवहेलना कर सकता था। लेकिन न तो सीता के मन में ही एक पल के लिए भी ऐसा विचार आता है और न राम के ही। यही सीता और राम की धीरता है। सीता एक बार भी यह नहीं कहतीं कि अयोध्या वापस लौट चलें। हाँ, जब लक्ष्मण पानी लेने के लिए जाते हैं तो इतना अवश्य कहती हैं कि कुछ देर छाया में खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा कर लें। राम उनके कष्ट को समझते हैं और इसीलिए देर तक बैठकर पैरों से काँटे निकालने का अभिनय करते रहते हैं ताकि सीता को कुछ देर आराम करने का अवसर मिल सके।

राम, लक्ष्मण और सीता के वन जाने का प्रसंग 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' दोनों में ही अत्यंत मार्मिक रूप में वर्णित है। यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि लोक मानस में यह मान्यता जड़ जमाए हुए है कि कैकेयी के कहने से राम को वनवास देकर दशरथ ने एक प्रकार से अन्याय किया। जब मार्ग में राम की भेंट निषाद राज से होती है तो राम उन्हें पिता के आदेश के बारे जानकारी देते हैं और उनके गाँव तक में प्रवेश करने से माना कर देते हैं। इससे निषाद राज बड़ा दुख होता है। यथा -

बरष चारिदस बासु बन, मुनि ब्रत बेषु अहारु।

ग्राम बासु नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखु भारु॥

अर्थात् राम ने कहा कि मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेश धारण कर और मुनियों के जैसा आहार करते हुए वन में ही बसना है। गाँव के भीतर निवास करना मेरे लिए उचित नहीं है। यह सुनकर निषाद राज को बड़ा दुख हुआ।

आगे राम, लक्ष्मण और सीता को वन गमन की आज्ञा देने वाले माता-पिता की आम जनता द्वारा आलोचना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है -

राम लखन सिय रूप निहारी।

कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।

जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

अर्थात् श्रीराम जी, लक्ष्मण जी और सीता जी के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। कोई कहते हैं - हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे सुंदर सुकुमार बालकों को वन में भेज दिया है।

इतना नहीं 'कवितावली' में तो ग्रामीण स्त्रियाँ रानी कैकेयी को पत्थर जैसे हृदय वाली और राज दशरथ को उचित और अनुचित का ज्ञान न रखने वाला तक कहकर उनकी आलोचना करती हैं। यथा -

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ ते कठोर हियो है।

राजहु काज अकाज न जान्यो, कह़ो तिय को जिन कान कियो है।।

ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?

आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हे किमि कै बनबास दियो है?

12.4 पाठ-सार

तुलसीदास असाधारण कवि-प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में काव्य सृजन किया था। 'कवितावली' में भक्ति भावना के साथ-साथ लोकमंगल की कामना भी निहित है। अयोध्या कांड में तुलसी ने राम वन गमन का वर्णन किया है। श्रीराम को चौदह साल का वनवास मिलता है। तब उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी जाते हैं। धूप में चलने की आदत न होने के कारण सीता को मार्ग में कष्ट सहना पड़ता है। वह व्याकुल होकर श्रीराम से पूछती है कि अब आगे कितना और चलना होगा, और कुटिया कहाँ बनाएँगे। सीता की आतुरता को देखकर राम समझ जाते हैं कि वह थक चुकी है। जब लक्ष्मण पानी लाने जाते हैं तो वह राम से कहती हैं कि थोड़ी देर पेड़ की शीतल छाया में विश्राम कर लेंगे। सीता की थकान को दूर करने के लिए राम बहुत देर तक बैठ जाते हैं। यहाँ तुलसीदास ने स्त्री की स्वाभाविक आतुरता और पति-पति के बीच निहित प्रेम हो अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि -

1. 'राम वन गमन' शीर्षक यह कविता 'कवितावली' के अयोध्या कांड से उद्धृत है।

2. इसमें तुलसीदास ने माथे पर पसीने की बूँदें झलकने की स्वाभाविक क्रिया का प्रयोग करते हुए अत्यंत मार्मिक ढंग से वन के मार्ग में उत्पन्न कष्ट को व्यक्त किया है।
3. तुलसी ने प्रेम और शृंगार का वर्णन किया है लेकिन कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया।
4. तुलसीदास के काव्य में कर्तव्य, त्याग, प्रेम, सहिष्णुता, लोकमंगलकारी भावना आदि निहित हैं।
5. तुलसी के काव्य की सफलता का रहस्य है लोक और शास्त्र की समन्वय शक्ति।
6. तुलसी के समय में समाज में धन की मर्यादा बढ़ी हुई थी और गरीबी को हीनता का लक्षण माना जाता था। लोग पेट की भूख मिटाने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार थे। पंडितों और ज्ञानियों की दुनिया अलग थी और साधारण जनता की अलग।
7. तुलसी जनता को पथभ्रष्ट होने से रोकते हैं और कहते हैं कि राम नाम पर विश्वास रखने से समस्या को दूर किया जा सकता है।

12.6 शब्द संपदा

1. आतुरता	=	अधीरता, उतावलापन
2. आश्वासन	=	दिलासा, सांतवाना
3. उत्कृष्ट	=	श्रेष्ठ, उन्नत
4. उदात्त	=	श्रेष्ठ, महान
5. गार्हस्थ्य	=	गृहस्थ होने की अवस्था
6. त्रस्त	=	पीड़ित, जो कष्ट में हो
7. परिमार्जित	=	स्वच्छ किया हुआ
8. लालित्य	=	ललित होने का भाव, सरसता
9. लोकमंगल	=	जनकल्याण
10. व्याकुलता	=	बेचैनी, परेशानी
11. समन्वय	=	सम्मिलित होने की क्रिया या भाव, समान रूप से मिलना
12. समर्पण	=	सौंप देने का भाव

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. पठित पाठ के आधार पर 'राम वन गमन' की व्याख्या कीजिए।
2. 'तुलसी की भक्ति भावना में लोक मंगल की कामना निहित है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. तुलसीदास के समय की सामाजिक स्थितियों का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. गोस्वामी तुलसीदास का परिचय दीजिए।
2. 'जल को गए लक्खनु, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। / पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥' इस काव्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
3. 'पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै। / झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥' इस काव्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
4. 'कवितावली' के साहित्यिक सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'कवितावली' के नामकरण पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. 'बरवै रामायण' के रचनाकार कौन हैं? ( )

   (अ) तुलसीदास (आ) सूरदास (इ) बेनीमाधवदास (ई) नरहरिदास

2. 'मूल गोसाई चरित' के रचनाकर कौन हैं? ( )

   (अ) तुलसीदास (आ) सूरदास (इ) बेनीमाधवदास (ई) नरहरिदास

3. 'कवितावली' की भाषा .... है। ( )

   (अ) अवधी (आ) अवहट्ठ (इ) ब्रज (ई) भोजपुरी

4. बयारि का पर्याय क्या है? ( )

   (अ) हवा (आ) धूप (इ) पानी (ई) छाया

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. तुलसीदास की लोक साधना की आधार भूमि .... है।

2. तुलसीदास ने साहित्य को .... से बाहर निकाला।

3. 'माथे पर पसीने की बूंदों का झलकना' ....की ओर सूचित करता है।

4. तुलसी की भक्ति भावना में .... की कामना निहित है।

III सुमेल कीजिए।

i) परशुराम-लक्ष्मण-संवाद	(अ) अयोध्या कांड
ii) वन गमन	(आ) उत्तर कांड
iii) लंका दहन	(इ) बाल कांड
iv) महामारी	(ई) सुंदर कांड

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. तुलसी शब्द-कोश, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी.
2. तुलसीदास : परिवेश और प्रदेय, (सं) मदनगोपाल गुप्त.
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
4. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी.
5. तुलसीदास, रामचंद्र तिवारी.

इकाई 13 : मीराँबाई : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मूल पाठ : मीराँबाई : व्यक्तित्व और कृतित्व
    13.3.1 जीवन परिचय
    13.3.2 रचना संसार
    13.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान
13.4 पाठ सार
13.5 पाठ की उपलब्धियाँ
13.6 शब्द संपदा
13.7 परीक्षार्थ प्रश्न
13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

मध्य काल में भक्ति आंदोलन का आरंभ सर्वप्रथम दक्षिण के आलवार भक्तों द्वारा हुआ। दक्षिण भारत से उत्तर भारत में बारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में रामानंद द्वारा यह आंदोलन लाया गया। भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण उद्देश्य था - हिंदू धर्म एवं समाज में सुधार, तथा इस्लाम एवं हिंदू धर्म में समन्वय स्थापित करना। भक्ति आंदोलन का भारतीय साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ा। हिंदी का भक्ति साहित्य भी भक्ति आंदोलन के कारण ही उपजा।

आप जानते ही हैं कि हिंदी का भक्ति साहित्य चार शाखाओं में बंटा हुआ है, इनमें से कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर, उनकी बाललीला और रासलीला का वर्णन अपने काव्य में किया है। कृष्णभक्त कवियों में मीराँबाई का विशेष स्थान है क्योंकि कृष्ण के प्रति जो आसक्ति इनके काव्य में दिखाई देती है, वह अन्य किसी में नहीं। प्रस्तुत इकाई में कृष्ण भक्ति साहित्य में मीराँबाई की भक्ति भावना तथा मीराँबाई के संपूर्ण जीवन को रेखांकित किया गया है।

13.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के द्वारा आप -

- मीराँबाई के जीवनवृत्त को समझ सकेंगे।
- मीराँबाई के जीवन संघर्ष को समझ सकेंगे।
- मीराँबाई की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।

- मीराँबाई की भक्ति के वैशिष्ट्य से अवगत हो सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति धारा में मीराँबाई का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

13.3 मूल पाठ : मीराँबाई : व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रिय छात्रो! मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य-परंपरा में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिनका किसी भक्ति संप्रदाय से सीधा संबंध नहीं था। ऐसे कवियों को संप्रदाय-निरपेक्ष कृष्ण भक्त कवि कहा जाता है। इन कवियों में मीराँबाई तथा रसखान प्रमुख हैं। इनमें भी मीराँबाई का स्थान इसलिए विशिष्ट है कि वे घोर जड़ सामंती संस्कारों से बंधे हुए समाज की पूर्वाग्रह ग्रसित मानसिकता के विरुद्ध एक जागरूक महिला के आग्रहपूर्ण विद्रोह का प्रतिनिधित्व करती हैं। उल्लेखनीय है कि मीराँबाई कृष्ण को पति के रूप में मानती थीं। इसलिए उनके पदों में जो भाव उभर कर आए हैं, वे अन्य कवियों में नहीं मिलते। कृष्ण के रूप पर रीझना और उनका गुणगान करना मीराँ की सगुण भक्ति का परिचायक है। मीराँबाई की भक्ति में श्रद्धा के साथ प्रेम का योग ही नहीं, प्रेम की अधिकता भी है।

13.3.1 जीवन परिचय

मीराँबाई के जन्मविषयक मान्यताएँ अन्य भक्त कवियों की तरह अप्रामाणिक सूचनाओं पर आधारित हैं। साहित्यकारों तथा विद्वानों ने बड़े श्रम से मीराँबाई के संबंध में जो सूचनाएँ संकलित की हैं, उन्हीं के आधार पर उनके जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। डॉ. सी. एल. प्रभात ने विभिन्न स्रोतों की छान-बीन करके मीराँबाई की जन्म तिथि संवत 1561 (अर्थात् 1504 ई.) निर्धारित की है। गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने मीराँबाई का जन्म संवत 1555 (अर्थात् 1498 ई.) और संवत 1561 (अर्थात् 1504 ई.) के बीच और मृत्यु संवत 1603 (अर्थात् 1546 ई.) माना है। मिश्रबन्धुओं का मत जन्म के संबंध में सर्वथा भिन्न है। ये उनका जन्म संवत 1573 (अर्थात् 1516 ई.) में मानते हैं, किंतु संवत 1573 (अर्थात् 1516 ई.) उनके विवाह का संवत था। मीराँबाई का जन्म संवत 1555 (अर्थात् 1498 ई.) में मानना ही उचित है।

मीराँबाई के मूल नाम के संबंध में भी आलोचकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। कुछ विद्वान 'मीराँबाई' का संबंध फ़ारसी शब्द 'मेरे' से जोड़ते हैं, जिसका अर्थ 'परम पुरुष' है। 'बाई' गुजरात में प्रचलित अर्थानुसार 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होता है। ये विद्वान 'मीराँबाई' का अर्थ 'ईश्वर की पत्नी' से करते हैं और इसे परवर्ती संत कवियों द्वारा दिया गया नाम मानते हैं। इस मत को मान्यता प्राप्त नहीं है। दूसरे वर्ग के विद्वानों के अनुसार 'मीराँबाई' शब्द संस्कृत के 'मीरः' का स्त्रीलिंग रूप है, जो सरस्वती, सरिता आदि शब्दों का बोधक है।

'बाई' शब्द का प्रयोग गुजरात में स्त्रियों के लिए सम्मानार्थ होता है। अतः 'मीराँबाई' माता-पिता द्वारा दिया गया मूल नाम मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

बोध प्रश्न

1. डॉ. सी. एल प्रभात ने मीराँ का जन्म कब माना है?
2. मीराँबाई की मृत्यु कब हुई?
3. मीराँबाई ने नाम के संबंध में आलोचकों का क्या दृष्टिकोण रहा है?

जन्म स्थान तथा परिवार

मीराँबाई के जन्म स्थान और वंश के संबंध में कोई मतभेद नहीं है। मीराँबाई का जन्म मेड़ता राज्य के अंतर्गत कुड़की ग्राम में राठौर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। इस शाखा के प्रवर्तक राव दूदा थे। कहीं-कहीं चौकड़ी नामक गाँव का उल्लेख मिलता है, जो कि सही नहीं है। चौकड़ी गाँव मीराँबाई के ग्यारहवें जन्मदिन पर उनके पिता को भेंट में मिला था। मीराँबाई की माता का नाम वीर कुमारी था। मीराँबाई के पिता का नाम राव रतनसिंह था, जो राव दूदा के चतुर्थ पुत्र थे। मीराँबाई के पिता राव रतनसिंह को 12 गाँव की जागीर प्राप्त थी। मीराँबाई बचपन से ही एकान्तप्रिय और प्रसन्नचित्त थीं। मीराँबाई जब दो वर्ष की थीं, तभी उनकी माता जी का देहांत हो गया था। राव रतनसिंह प्रायः युद्ध में रहते थे और पुत्री मीराँबाई के पालन पोषण पर अधिक समय नहीं दे पाते थे। इसलिए राव दूदा ने मीराँबाई को अपने पास मेड़ता बुला लिया। राव दूदा तलवार के धनी होने के साथ-साथ परम वैष्णव भक्त भी थे। उन्हीं की छत्रछाया में रहकर बालिका मीराँबाई के हृदय में गिरधर गोपाल के प्रति अनन्य आस्था उत्पन्न हो गई। एक किंवदन्ती यह है कि एक बार एक बारात को जाते देखकर मीराँबाई बड़ी उत्साहित हुईं। दूदा जी उस समय पूजा कर रहे थे, मीराँबाई ने उनसे सजे सजाए युवक के बारे में प्रश्न किया तो, उन्होंने बताया इसे 'दूल्हा' कहते हैं। इस पर मीराँबाई ने पूछा, मेरा दूल्हा कौन होगा? पहले तो उन्होंने ने मुस्कराकर इसे टालना चाहा, लेकिन जब बालिका ने बार-बार आग्रह किया, तो उन्होंने झुंझलाकर कह दिया कि-तेरे दूल्हा ये गिरधर गोपाल होंगे। यह बात सुनकर मीराँबाई ने गिरधर गोपाल को अपना पति स्वीकार कर लिया।

बोध प्रश्न

4. मीराँबाई के व्यक्तित्व के बारे में बताइए।
5. मीराँबाई ने गिरिधर गोपाल को अपना पति क्यों माना?

विवाह

मीराँबाई का विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ सन 1516 में हुआ। भोजराज सिसौदिया वंश के थे। मीराँबाई मेवाड़ आकर पति के संग सुखपूर्वक

रहने लगी। मीराँबाई अपने साथ गिरधर गोपाल की मूर्ति भी लाई थीं। दुर्भाग्यवश विवाह के सात वर्ष पश्चात अर्थात् सन 1523 में वें विधवा हो गईं। सन 1527 में बाबर और राणा सांगा के बीच हुए खानवा के युद्ध में इनके पिता भी मारे गए। शीघ्र ही राणा सांगा भी चल बसे। इस तरह तीस वर्ष की आयु होते-होते इन्होंने अपने माता-पिता, बाबा, पति और ससुर को खो दिया।

बोध प्रश्न

6. राणा सांगा की मृत्यु कैसे हुई?

भक्ति साधना

भोजराज की मृत्यु के बाद मीराँबाई कृष्ण भक्ति में और दृढ़ता से लीन हो गईं। मीराँबाई तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं हुईं, क्योंकि वे स्वयं को अजर-अमर स्वामी की चिर सुहागिनी मानती थीं। उन्होंने अपनी संपूर्ण भावना से कृष्ण को अपना पति मान लिया। उन्होंने स्वप्न में कृष्ण का वरण कर लिया और अपने को पूर्वजन्म की गोपी मानने लगीं। मीराँबाई मंदिरों में जाकर भजन गाने लगीं और भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगीं।

कहा जाता है कि मीराँबाई ने पारिवारिक पीड़ा से व्यथित होकर मार्गदर्शन के लिए तुलसीदास को एक पत्र लिखा। पत्र की भाषा इस प्रकार थी -

श्री तुलसी सुख निधान दुःख हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करूँ, अब हरो सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरु भजन करत, मोहिं देत कलेस महाई।
बालपने तें मीराँ कीन्हीं, गिरधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूं, लगी लगन बरियाई।
मेरे मात पिता के सम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिये समझाई।

'मीराँबाई की पदावली' में यह पद उपलब्ध है। तुलसी ने इसके उत्तर में जो पद लिखा था वह सर्वविदित है -

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।
नाते सबै राम के मनियत सहृदय जहाँ लौं।

अंजन कहा आँखि जौ फूटै, बहुतक कहाँ कहाँ लौं॥

मीराँबाई और तुलसी के इस पत्र व्यवहार को कुछ विचारक प्रामाणिक नहीं मानते हैं।

मीराँबाई का जीवन वैष्णव साधुओं के साथ व्यतीत होने लगा। प्रेम की भावना में वे कभी-कभी भगवान की मूर्ति के सामने नृत्य भी करने लगती थीं। वृन्दावन पहुंचकर ही इनकी भक्तिधारा माधुर्योपासना के रस में समाहित हुई। यहाँ मीराँबाई प्रसिद्ध वैष्णव जीव गोस्वामी से भेंट करना चाहती थीं। जीव गोस्वामी ने कहला भेजा कि - मैं स्त्रियों से नहीं मिलता। मीराँबाई ने उत्तर दिया "मैं तो समझती थी वृन्दावन में कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, पर अब पता चला यहाँ कोई दूसरा पुरुष भी रहता है।" इस पर जीव गोस्वामी जी नंगे पाँव मीराँबाई के दर्शन को दौड़ आए।

वृन्दावन में गीत गाते-गाते न जाने मीराँबाई को कब और कैसे यह आभास हुआ कि उनके नटवर नागर तो कभी का वृन्दावन छोड़ द्वारका जा विराजे हैं। यह आभास होते ही मीराँबाई द्वारका चली गईं। यहीं इनका शेष जीवन बीता। सन 1546 ई. में द्वारका में ही रणछोड़ जी के मन्दिर में उपासना करते समय मीराँबाई की आत्मा अपने आराध्य में लीन हो गई। गौरीशंकर ओझा, मुंशी देवी प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा सभी ने इसकी पुष्टि की है।

कृष्ण को आराध्य मानकर कविता करने वाली मीराँबाई की पदावली हिंदी साहित्य के लिए अनमोल है। कृष्ण के प्रति मीराँबाई की विरह वेदना सूरदास की गोपियों से कम नहीं है।

बोध प्रश्न

7. तत्कालीन प्रथा के अनुसार मीरान सती क्यों नहीं हुईं?
8. पारिवारिक पीड़ा से व्यथित होकर मीराँ ने किसे पत्र लिखा?
9. वृन्दावन पहुंचने के बाद मीराँ की भक्तिधारा में क्या परिवर्तन हुआ?
10. मीराँबाई का अंतिम समय कहाँ बीता?

13.3.2 रचना संसार

मीराँबाई के पद गेय हैं, अतः एक प्रांत से दूसरे प्रांत में साधु, संतों तथा गायकों के द्वारा मौखिक ढंग से प्रचारित प्रसारित होते रहे। मीराँबाई के पदों की यह विशेषता है कि वे अपने भावों और संगीत के कारण हर किसी को अपनी ओर खींच लेते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि भक्तों और संगीतकारों के उनके पदों में अपने अपने ढंग से बहुत सारे परिवर्तन कर लिए। यहाँ तक कि उनकी भावनाओं के विपरीत भी सामाग्री जोड़कर मीराँबाई के नाम से प्रचारित कर दिया। इसलिए यह पता लगाना कठिन है कि कितने पद मीराँबाई ने रचे थे और कितने पद बाद के रचनाकारों ने जोड़ दिए।

मीराँबाई की जिन रचनाओं की चर्चा विद्वानों ने की है वे निम्न प्रकार हैं:

- नरसी जी रो मायरो
- गीत गोविन्द की टीका
- राग गोविन्द
- सोरठ के पद
- मीराँबाई की मलार
- गरबागीत
- स्फुट पद

मीराँ के जितने भी पद अब तक प्राप्त हुए हैं चाहे वह किसी भी भाषा अथवा किसी रूप में क्यों न हों उनको स्फुट पदों के रूप में संग्रहीत कर दिया गया है। इनमें से केवल 'स्फुट पद' ही मीराँबाई की प्रामाणिक रचना है। अन्य रचनाओं में से कुछ तो किसी अन्य कृतिकार द्वारा रचित हैं या कुछ लोक प्रचलित जनश्रुतियों के नाम पर मीराँबाई के नाम से संबद्ध हो गई हैं। मीराँबाई के स्फुट पद 'मीराँबाई की पदावली' के नाम से प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं।

मीराँबाई अपने जीवन काल में ही कृष्णभक्त के रूप में व्यापक ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, कवि के रूप में भी उनको प्रसिद्धि मिलती गई। कबीरदास और तुलसीदास के समान उनके पद भी लोक प्रचलित हुए। संगीत के क्षेत्र में भी उनके पद विद्वानों द्वारा संकलित किए गए हैं। 'मीराँबाई की पदावली' के नाम से प्रसिद्ध इन संकलनों की भाषा एक-दूसरे से भिन्न पाई जाती है। किसी में राजस्थानी का पुट कम है, किसी में अधिक। कुछ संपादकों ने तो 'न' के स्थान पर कहीं 'ण' कर दिया है, जैसे 'णा' (ना) 'तण' (तन), 'मण' (मन), 'घणा' (घना) आदि। संभव है कि मीराँबाई के मूल पदों की भाषा संगीतज्ञों, भक्तों और जन साधारण द्वारा बदल दी गई हो। मीराँबाई की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है, जिसमें कहीं-कहीं खड़ी बोली और फ़ारसी का पुट पाया जाता है। यह पदावली राग-रागिनियों में बंधी हुई मिलती है।

मीराँबाई का व्यक्तित्व भक्ति आंदोलन की प्रेरणाओं से निर्मित हुआ है। मीराँबाई ने कृष्ण भक्ति में लीन होकर अपने पदों की रचना की है। मीराँबाई कृष्ण भक्ति के प्रति पूर्णतया समर्पित थीं। भक्ति की गहन अनुभूति को ही वे अपने पदों में व्यक्त करती हैं।

बोध प्रश्न

11. मीराँबाई के नाम से प्रसिद्ध चार रचनाओं के नाम बताइए?
12. मीराँबाई की प्राप्त अधिकतर रचनाओं को अप्रामाणिक क्यों माना जाता है?
13. मीराँबाई का व्यक्तित्व कि की प्रेरणाओं से निर्मित हुआ है?
14. मीराँबाई के काव्य की भाषा कैसी है?

13.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान

प्रिय छात्रो! मीराँबाई की भक्ति माधुर्य भाव की है। मीराँबाई का नाम सगुण भक्त कवियों में कृष्ण-भक्ति शाखा के अंतर्गत लिया जाता है। मीराँबाई को मरुस्थल की मंदाकिनी, कृष्ण प्रेमदीवानी आदि नाम आलोचकों द्वारा दिए गए हैं। मीराँबाई की भक्ति भावना और मीराँबाई के भजन अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। मीराँबाई गोपीभाव से जिस नटवर नागर गोपाल का वरण करती हैं, वह रूपवान तो है ही, प्रेम की ऊर्जा का स्रोत भी है। मीराँबाई अविनाशी पति के वरण के लिए संकल्पबद्ध थीं। वे कहती है कि-

मीराँबाई के प्रभु हरि अविनासी।
चेरी भई बिन मोल।।

यहाँ ध्यान देनी की बात यह भी है कि "जिस समाज में स्त्री को ज़मीन समझा जाता हो, उस समाज में एक राजपुत्री और राजवधू का लोकलाज और कुल की मर्यादा तोड़कर प्रेम दीवानी होकर इधर उधर डोलना व्यवस्था के गले कभी नहीं उतरा होगा। इसका पता मीराँ की पदावली और अन्य साक्ष्यों से चलता है। स्वयं मीराँ ने कहा है –

पग घुंघरू बाँध मीराँ नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, सास कहै कुलनासी रे॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे॥

महात्मा गांधी ने मीराँबाई के 'रे मन परसि हरि के चरण' भजन को अपनी प्रार्थना में शामिल किया था। मीराँबाई के भजन आज भी भारतभर में भक्तिभाव से गाए जाते हैं। मीराँबाई कृष्ण की अनन्य उपासिका थीं। आध्यात्मिक दृष्टि से वह कृष्ण को अपना पति मानती हैं। मीराँबाई अपने कृष्ण की प्रेम-दीवानी हैं। उन्होंने अपनी इस प्रेम बेलि की आंसुओं के जल से सिंचाई की है। जैसे -

असुवन जल सींची सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई, आनंद फल होई॥

सोलहवीं सदी में भक्ति की जिस धारा का उद्गम मीराँबाई ने किया था, आज भी वही भक्ति धारा उसी प्रथा से प्रवाहित हो रही है। वास्तव में मीराँबाई नारी संतो में ईश्वर प्राप्ति हेतु लगी रहने वाली साधिकाओं में प्रमुख थीं। भक्ति से ओत-प्रोत उनका साहित्य अन्य भक्तों के लिए मार्ग-निर्देशन करता रहा है। मीराँबाई के काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग और ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव दृष्टिगत होता है। उनकी दृष्टि में सुख, वैभव, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा आदि सभी मिथ्या हैं। यदि कोई सत्य है तो वह है - 'गिरधर गोपाल'। मीराँबाई के विचार अतीत और

वर्तमान से संबद्ध होकर भी मौलिक थे। परंपरा-समर्पित होकर भी पूर्णतः स्वतंत्र थे, व्यापक होकर भी सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे।

संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्ति काव्य धारा में मीराँबाई का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। मीराँबाई प्रेम की साकार प्रतिमा हैं। उनका पद-साहित्य पवित्रता, तन्मयता और संगीतात्मकता में बेजोड़ है। कृष्ण-भक्ति की गायिका इस कवयित्री जैसा प्रेम-भाव अन्यत्र नहीं मिलता।

बोध प्रश्न

15. आलोचकों ने मीराँबाई को कौन-कौन से नाम दिए हैं?
16. महात्मा गांधी ने मीराँबाई के कौनसे भजन को अपनी प्रार्थना में शामिल किया था?
17. मीराँबाई का नाम सगुण भक्ति की किस शाखा के अंतर्गत लिया जाता है?
18. मीराँ के काव्य की तीन विशेषताएँ बताइए।

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! आपने देखा होगा कि मध्यकाल के ज़्यादातर संतों और भक्तों के जीवन के बारे में बहुत अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय जानकारियाँ नहीं मिलतीं। यहाँ तक कि कबीर, सूर और तुलसी जैसे दिग्गज रचनाकारों के बारे में ज़्यादातर मान्यताएँ लोक प्रचलित किंवदंतियों पर आधारित हैं। इनकी तुलना में मीराँबाई के बारे में परंपरा से काफी जानकारी मिलती है। साथ ही उनकी रचनाओं में भी उनके जीवन के बारे में अन्तःसाक्ष्य प्राप्त होते हैं। डॉ.नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में यह स्वीकार किया गया है कि मीराँबाई के स्वरचित विविध पद उनके जीवन पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों और उनके अन्य परिणामों के साक्षात प्रमाण हैं। यह भी कहा गया है कि -

> "उन (मीराँबाई के) भक्ति पदों की सर्वजनमनोहारिणी रसवत्ता ने उन्हें अल्पकाल में ही इतना लोकप्रिय बना दिया कि विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न वर्गों के संतों, भक्तों, कवियों तथा रचनाकारों ने अपनी कृतियों में उनकी चर्चा कई रूपों में की है। विभिन्न भक्तमालों एवं वार्ताग्रंथों में भी मीरा संबंधी अनेक साक्ष्य प्राप्त हैं। राजपूताना के कतिपय प्रशस्तिपत्रों, अभिलेखों, दानपत्रों और कुछ प्राचीन चित्रों में भी उनके जीवन से संबंधित कई तथ्य उपलब्ध हैं।" (पृ. 220)

यह जानकर अनेक साहित्य प्रेमियों को आश्चर्य होता है कि मध्यकालीन रूढ़िवादी परिवेश में मीराँबाई जैसी विद्रोही भक्त कवयित्री ने जन्म लिया। उन्होंने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के बीच आने वाली किसी भी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की परवाह नहीं की। यही कारण है कि उन्हें परिवार और राज्य दोनों ही का कोपभाजन बनना पड़ा। इतना ही नहीं उन्हें कृष्ण भक्त संप्रदायों में भी अपमानित होना पड़ा। क्योंकि उन्होंने किसी संप्रदाय की विधिवत दीक्षा नहीं ली थीं। बल्कि रैदास को गुरु माना था।

यहाँ डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस मान्यता का उल्लेख आवश्यक है कि -

> "मीराँ का काव्य उन विरल उदाहरणों में है जहाँ रचनाकार का जीवन और काव्य एक-दूसरे में घुल-मिल गए हैं, परस्पर के संपर्क से एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि जीवन-वृत्त से अलग किए जाने पर इस काव्य की सर्जनात्मक क्षमता घट जाती है। मिलता-जुलता नारी-चरित्र होने के कारण गोपियों की विरह-भावना का अध्यारोपण मीराँ पर आसानी से हो जाता है। उनका काव्य सूर द्वारा विस्तार में चित्रित गोपियों की विरहोन्मुखता का 'डिटेल' या ब्यौरा है। जीवन-वृत्त में ब्रज की गोपियों से, और रचना-धर्मिता में सूरदास से एकबारगी साम्य मीराँ के पदों में अतिरिक्त तीव्रता भरता है।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 50)

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल' में दिए गए मीराँ के जीवन संबंधी विवरण को बड़ी हद तक प्रामाणिक माना हैं। इस ग्रंथ में मीराँ के कृष्ण भक्त रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

> लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भा जी
> सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुग ही दिखायो।
> मिर अंकुश आते निडर रासिक उस रसना गये।
> दुष्टिनि दोष विचारि मृत्यु का उद्यम कीयो।
> बार न बाके भयों गरल अमृत जो पीयों।

इससे स्पष्ट है कि मीराँ अत्यंत निर्भीक भक्तिन थीं। लोक नंदा और लोक लाज से भय खाने वाली नहीं थीं। उन्होंने डटकर अपने तमाम विरोधियों का सामना किया। डॉ. मल्लकुंटल रामनाथम ने इसे उनका परम गोपी भाव माना है और लिखा है कि -

> "द्वापर में जिस भाँति गोपिकाओं ने कृष्ण के प्रति प्रेम का भाव रखा, उसी भाँति कलियुग में मीरा ने लोक लाज से निडर होकर अपना प्रेम व्यक्त किया। ... मीरा ने कभी लोक लाज की परवाह न की। वे निरंतर गिरिधर गोपाल का भजन करती थीं। वे भक्ति की खान थीं। वृंदावन में वे बड़े आनंद भाव को प्रकट करते हुए, कृष्ण के प्रेम में मुग्ध व लीन हो जाती थीं। राजपूत घराने की कुलवधू के रूप में उनके हृदय में न घमंड था और न ही लोक निंदा का भय ही था। मीरा के लिए जीवन का अर्थ हरिभजन व हरिकीर्तन मात्र था।" (मीराबाई और मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा की भक्ति भावना, पृ. 37)

मीराँबाई के मन में इस कृष्ण भक्ति का बीज बचपन में ही पड़ गया था। उनके पालनकर्ता रावदूदा तलवार के धनी होने के साथ-साथ परम वैष्णव भक्त भी थे। उनका प्रभाव मीराँ के हृदय में गिरिधर गोपाल के प्रति अटूट आस्था का आधार बना। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का मत है कि-

> “मीराँ का चचेरा भाई जयमल भी भक्त-प्रकृति का राजकुमार था। निरंतर युद्ध और मृत्यु से होली खेलने वाले राजपूतों के यहाँ उन दिनों शिक्षा-दीक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं था। अतः पारिवारिक वातवरण, समाज में प्रचलित लोकगीत एवं यदा-कदा राजमहलों में आने वाले सिद्ध संन्यासियों या रमते जोगियों के भक्तिमय उपदेश ही मीराँ की पाठशाला बने। लोकगीतों की मधुरता एवं राजसी कलाप्रियता ने उन्हें अनायास संगीतप्रेमी बना दिया, तो साधु-संगति के प्रभाववश उनका हृदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ, जिसकी अनुगूँज उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है।” (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ.220)

यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि विधिवत पुष्टिमार्ग में दीक्षा न लेने के कारण मीराँबाई को कई बार उस संप्रदाय के समर्थकों द्वारा अपमानित भी होना पड़ा। यहाँ तक कि वार्ता साहित्य में भी उनके प्रति विरोध, अपमान और निंदा के प्रसंग प्राप्त होते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ‘हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास’ में यह उल्लेख किया है कि जब भी वृंदावन में पुष्टिमार्ग के संत मीराँबाई से मिलते, तब वे मीराँबाई का मज़ाक उड़ाते और अपमान करते थे। यहाँ तक कि एक बार कृष्णदास अधिकारी ने भगवान श्रीनाथ को समर्पित करने के लिए मीराँ के हाथ से छुई मोहर तक को स्वीकार करने से मना कर दिया था। पुरोहित रामदास ने भी उन्हें इसलिए अपशब्द कहे थे कि वे वल्लभाचार्य को ठाकुर नहीं मानती थीं। लेकिन मीराँ ने इन सब विरोधों और अवरोधों की कभी परवाह नहीं की तथा एकमात्र श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति के बल पर कालजयी यश प्राप्त किया।

अंततः डॉ. मल्लकुंटल रामनाथम के शब्दों में -

> मीराँबाई का व्यक्तित्व सामान्य लौकिक जीवन तक अपने को सीमित रखने वाली औरतों की भाँति न रहकर, ऐहिक सुखों से तृप्ति पाने वाली और पति को ही साक्षात भगवान मानने वाली अंधविश्वासी स्त्रियों की तरह न होकर, एक विभिन्न स्वभाव का रहा। बचपन से ही भगवत् भक्ति हृदय में धारण करके, जीवन पर्यंत उसी भक्ति भाव में विभोर रहकर काम, क्रोध, लोभ, मत्सर जैसे षट् रिपुओं को जीतकर, केवल गोपाल की स्तुति में तल्लीन रहना अति दुष्कर बात है। इन सभी को पार करके मीराँ अपने को पुण्यात्मा की कोटि में पहुँचा देती हैं। (मीराबाई और मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा की भक्तिभावना, पृ.52)

13.4 पाठ-सार

मीराँबाई के जन्मकाल के विषय में पर्याप्त मतभेद है, लेकिन उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर उनका जन्म संवत 1555 विक्रमी(अर्थात् 1498 ई.) में माना जाता है। उनका जन्म मेड़ता राज्य के अंतर्गत कुड़की ग्राम में राठौर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। मीराँबाई के पिता का नाम रतनसिंह राव था, जो राव दूदा के चतुर्थ पुत्र थे। मीराँबाई का विवाह मेवाड़ के राणा

सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ सन 1516 में हुआ। दुर्भाग्यवश विवाह के सात वर्ष पश्चात अर्थात् सन 1523 में वे विधवा हो गईं। सन 1527 में बाबर और राणा सांगा के बीच हुए खानवा के युद्ध में इनके पिता भी मारे गए। तीस वर्ष की आयु होते-होते इन्होंने अपने माता-पिता, बाबा, पति और ससुर को खो दिया। परिवार में अनुकूल वातावरण न होने के कारण उन्होंने घर त्याग दिया और अपने आराध्य श्रीकृष्ण की लीलस्थली वृन्दावन में चली गईं। वृन्दावन में मीराँबाई ने प्रसिद्ध वैष्णव जीव गोस्वामी से भेंट की। अपने अंतिम समय में वे वृन्दावन से द्वारका चली गईं। वहीं 1546 में ही रणछोड़ जी के मन्दिर में उपासना करते समय वे अपने आराध्य में लीन हो गई।

मीराँबाई के नाम से रचित (1) राग गोविंद (2) राग सोरठ के पद (3) नरसी जी रो मायरा (4) गीत गोविन्द की टीका - ग्रंथ बताए जाते हैं। लेकिन स्फुट पदों को ही उनकी प्रामाणिक रचना माना जाता है। इन पदों का संग्रह 'मीराँबाई की पदावली' नाम से प्रकाशित है।

मीराँबाई का व्यक्तित्व भक्ति आंदोलन की प्रेरणाओं से निर्मित हुआ है। मीराँबाई ने कृष्ण भक्ति में लीन होकर अपने पदों की रचना की है। वे कृष्ण भक्ति के प्रति पूर्णतया समर्पित थीं। उनका काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेम का साकार रूप है। उनकी वृत्ति पूरी तरह प्रेम-माधुरी में रमी है। अपने आराध्य गिरधर गोपाल की विलक्षण रूप छटा के प्रति उनकी अनन्य आसक्ति काव्यधारा बन कर फूट पड़ी है। मीराँबाई के काव्य में जहाँ उनके जीवन संघर्ष के अंश दिखाई देते हैं, वहीं कृष्ण के प्रति प्रेम, मिलन की उत्कंठा, प्रतीक्षा, वियोग आदि का चित्रण भी देखने को मिलता है। मीराँबाई की उपासना गोपी-भाव की है। उन्होंने सगुण ब्रह्म लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के प्रति अपने आप को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। मीराँबाई ने कृष्ण मिलन का वर्णन कम और वियोग का वर्णन अधिक किया है। उनके विरह में जो तत्व हैं, वे पाठक के मर्म को छू जाते हैं।

मीराँबाई के पदों में कई भाषाओं की झलक दिखाई पड़ती है - राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती आदि। कुछ पदों में पंजाबी, खड़ी बोली तथा पूर्वी बोलियों का भी मिश्रण हुआ है। मीराँबाई के पदों की भाषा-शैली अधिकतर सीधी-सादी, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। उन्होने स्वाभाविक रीति से प्रतीकों और बिंबों का विधान किया है। काव्य भाषा को सृजनात्मक रूप देने के लिए मीराँबाई ने बिम्ब योजना की। मीराँबाई के काव्य में ज़्यादातर सूक्ष्म, लघु और अलंकृत बिंबों का प्रयोग दिखाई देता है। अलंकारों के प्रयोग में भाव, रूप तथा प्रभाव साम्य को

मीराँबाई ने ध्यान में रखा है। सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग भी उनके काव्य में दिखाई देता है।

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति की एक धारा संप्रदाय-निरपेक्ष भी है। रसखान और मीराँ इसी धारा में शामिल हैं।
2. मीराँ अपने बाल्यकाल से कृष्ण को अपना पति मानती थीं। बाद में यही भाव सुदृढ़ होकर कृष्ण भक्ति के रूप में बदल गया।
3. मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की चरम उपलब्धि है, इसीलिए उन्हें कृष्ण की प्रेम-दीवानी कहा जाता है।
4. मीराँ के नाम से कई ग्रंथ मिलते हैं, लेकिन उनकी प्रामाणिक रचनाएँ केवल स्फुट पदों के रूप में हैं।
5. मीराँ का जीवन और साहित्य मध्यकालीन सामंति रूढ़ियों से विद्रोह का प्रतीक है।
6. मीराँबाई भक्तिकाल में स्त्री विमर्श का प्रतिनिधित्व करती हैं।

13.6 शब्द संपदा

1. अजर = जो कभी बूढ़ा न हो
2. अमर = जिसकी कभी मृत्यु न हो
3. अभिलाषा = इच्छा, कामना
4. अवलंब = आधार
5. आध्यात्मिक = परमात्मा या आत्मा से संबंधित
6. उत्कंठा = तीव्र अभिलाषा
7. जनश्रुति = लोगों द्वारा कही हुई बात
8. तन्मयता = तल्लीनता
9. परवर्ती = बाद के काल का
10. रिझाना = प्रसन्न करना
11. व्यग्रता = व्याकुलता
12. स्फुट = फुटकर

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. मीराँबाई का जीवन परिचय दीजिए?
2. मीराँबाई की रचनाओं और उनकी विषयवस्तु पर चर्चा कीजिए?
3. मीराँबाई की भक्तिभावना पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मीराँबाई की पदावली की विशेषताएँ बताइए।
2. मीराँबाई और तुलसी के पत्र व्यवहार पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदी साहित्य में मीराँबाई का स्थान निर्धारित कीजिए।
4. 'मीराँबाई का व्यक्तित्व भक्ति आंदोलन की प्रेरणाओं से निर्मित हुआ है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. मीराँबाई के जीवन संघर्ष पर प्रकाश डालिए।
6. मीराँबाई की भक्ति के वैशिष्ट्य की चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. मीराँबाई का जन्म कब हुआ? (   )

    (अ) सं 1590   (आ) सं 1600

    (इ) सं 1555   (ई) सं 1525

2. मीराँबाई के पिता का क्या नाम था? (   )

    (अ) राव रतनसिंह   (आ) राव दादू

    (इ) राव जगन्नाथ   (ई) राव रतनसेन

3. मीराँबाई के पति का क्या नाम था? ( )

(अ) राणा सांगा (आ) भोजराज

(इ) शिवराज (ई) कुमारराज

4. मीराँबाई के पिता किस युद्ध में मारे गए? ( )

(अ) प्लासी के (आ) खानवा के

(इ) तराई के (ई) इनमें से कोई नहीं

5. मीराँबाई की मृत्यु कहाँ हुई? ( )

(अ) मेवाड़ (आ) वृन्दावन

(इ) द्वारका (ई) पुरि

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मीराँबाई का जन्म …………… वंश में हुआ था।
2. मीराँबाई का विवाह सन …………… में हुआ।
3. कुछ विद्वान 'मीराँबाई' शब्द को फ़ारसी के …………….. से जोड़ते हैं।
4. मीराँ की भक्ति .... भाव की है।
5. मीराँ का जीवन और साहित्य .... रूढ़ियों से विद्रोह का प्रतीक है।
6. मीराँबाई भक्तिकाल में .... विमर्श का प्रतिनिधित्व करती हैं।

III सुमेल कीजिए।

1.	जीव गोस्वामी	(अ) द्वारका
2.	रणछोड़ जी मंदिर	(आ) माता
3.	वीरकुमारी	(इ) ससुर
4.	राणा सांघा	(ई) वृंदावन

13.8 पठनीय पुस्तकें

1. मीराँबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी.

2. मीराँबाई और उनकी पदावली, देशराज सिंह भाटी.

3. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र.

4. हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीलाल वैरागी.

5. कविता के पक्ष में, ऋषभदेव शर्मा. पूर्णिमा शर्मा.

6. मीराबाई और मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा की भक्ति भावना, मल्लकुंटल रामनाथम.

इकाई 14 : कृष्ण भक्ति

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मूल पाठ : कृष्ण भक्ति
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
14.4 पाठ-सार
14.5 पाठ की उपलब्धियाँ
14.6 शब्द संपदा
14.7 परीक्षार्थ प्रश्न
14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

भक्ति आंदोलन एक जन आंदोलन के रूप में उभरा था। इसने सबको सोचने के लिए विवश कर दिया था। इसे सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन का रूप देने में कबीर, तुलसी, नानक, सूर, रैदास, मीराँ, दादू और रसखान का महत्वपूर्ण योगदान है। मीराँ ने तत्कालीन रूढ़वादी सामंती व्यवस्था को चुनौती दी। उन्होंने अपने कृष्ण-प्रेम की तीव्रता को और उसके रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को पदों के रूप में अभिव्यक्त किया। इस इकाई में आप मीराँ की कविता 'कृष्ण भक्ति' का अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अंतर्गत आप मीराँबाई की कविता 'कृष्ण भक्ति' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- मीराँबाई के जीवन दर्शन से परिचित हो सकेंगे।
- निर्धारित कविता 'कृष्ण भक्ति' की व्याख्या कर सकेंगे।
- मीराँबाई की कृष्ण भक्ति को समझ सकेंगे।
- मीराँबाई की भक्ति-भावना और काव्य-भाषा के बारे में जान सकेंगे।
- तत्कालीन सामंती व्यवस्था के प्रति मीराँ के विद्रोह के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.3 मूल पाठ : कृष्ण भक्ति

(क) निर्धारित कविता का सामान्य परिचय

मीराँ बचपन से ही भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त थीं। उन्होंने कृष्ण को सब कुछ मान लिया था। बचपन में उन्होंने सपने में ही गिरिधर गोपाल से विवाह किया और उन्हीं को अपना जीवन समर्पित किया। कृष्ण की मनोहर छवि के प्रति मीराँ आकर्षित थीं। इस दुनिया में कृष्ण के अलावा उन्हें कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। वे अपनी आँखों में उस गिरिधर गोपाल की मनोहर छवि को बसा लेती हैं जो मोरमुकुट, घंटीदार करधनी, वैजयंती माला और पीतांबर पहनते हैं। कृष्ण के प्रेम में दीवानी मीराँ सब रिश्ते-नाते छोड़ देती हैं और सांसारिक सुखों को त्याग कर वैराग्य अपना लेती हैं। कष्टों को सहकर वे कृष्ण-प्रेम रूपी लता को आँसुओं से सींचकर बढ़ाती हैं। कृष्ण के प्रेम में लीन होकर वे आनंद विभोर होती हैं ।

(ख) अध्येय कविता

[1]

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति सांवरि सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजंती-माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल॥

[2]

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोरमुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु, आपनो न कोई॥
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई॥
संतन ढिग बैठि बैठि, लोकलाज खोई॥
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूंगे उतार, बनमाला पोई॥
अंसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई॥
दूध की मथनियाँ, बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।

दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोही॥

निर्देश : इस कविता का सस्वर वाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

[1]

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति सांवरि सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजंती-माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल॥

शब्दार्थ : बसो = छाये रहो। नैनन = आँखें, नेत्र। मोहनी मूरति = मनोहर छवि। सूरति = स्वरूप। बिसाल = विशाल। अधर = होंठ। सुधारस = अमृत जैसा माधुर्य उत्पन्न करने वाला। राजत = शोभित। उर = हृदय। बैजंती-माल = वैजयंती नाम की माला (श्रीकृष्ण जिसे धारण करते हैं)। छुद्र घंटिका = घुंघुरूदार करधनी। कटि तट = कमर। सबद = शब्द। रसाल = मधुर। संतन = संत, सज्जन। भगत बछल = भक्त वत्सल (भक्तों को प्यार करने वाला)।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश मीराँबाई की कविता 'कृष्ण भक्ति' से उद्धृत है।

प्रसंग : मीराँ श्रीकृष्ण की परम भक्त थीं। वे कृष्ण की मोहिनी मूर्ति को अपनी आँखों में बसाना चाहती थीं। इस पद में कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का सजीव चित्रण है। कृष्ण की भक्ति में लीन मीराँ उन्हें संबोधित करते हुए कहती हैं -

व्याख्या : हे नंदलाल! श्रीकृष्ण! आप मेरे नेत्रों में निवास कीजिए। आपका सौंदर्य अत्यंत आकर्षक है। विशाल नेत्रों से युक्त आपका श्यामवर्ण का शरीर अत्यंत मन मोहक है। अमृत रस से भरे आपके होंठों पर बाँसुरी शोभायमान है तथा हृदय पर वैजयंती माला। कमर में बंधी करधनी में छोटी-छोटी घुंघुरुओं की मधुर ध्वनि बहुत रसीली प्रतीत होती है। संतों व सज्जनों को सुख देनेवाले और भक्तों से अपार प्रेम करने वाले हे प्रभु! मेरी आँखों में बस जाओ।

काव्यगत विशेषता

1. भगवान श्रीकृष्ण की मनमोहक छवि का वर्णन है।
2. मीराँबाई की कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति भावना की अभिव्यक्ति है।
3. मुक्तक, गेय पद।
4. 'मोहनी मूरति सांवरि सूरति' - अनुप्रास अलंकार

5. इस पद की तुलना बिहारी के निम्न्लिखित दोहे से किया जा सकता है –

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहिं बानक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल॥

बोध प्रश्न

1. मीराँ किसको आँखों में बसने के लिए कहती हैं?
2. 'बैजंती-माल' का क्या अर्थ है?
3. 'मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछ्छल गोपाल' का क्या अर्थ है?

[2]

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोरमुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु, आपनो न कोई॥
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई॥
संतन ढिग बैठि बैठि, लोकलाज खोई॥
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूंगे उतार, बनमाला पोई॥

शब्दार्थ : गिरिधर = पर्वत को धारण करने वाला, कृष्ण। गोपाल = गाएँ पालने वाला, कृष्ण। मोरमुकुट = मोर के पंखों का बना हुआ मुकुट। सोई = वही। तात = पिता। भ्रात = भाई। छांड़ि दई = छोड़ दी। कुल = परिवार। कानि = मर्यादा, प्रतिष्ठा। करिहै = करेगा। संतन ढिग = संतों के संग। लोकलाज = समाज की मर्यादा। टूक = टुकड़े। लोई = कंबल। मूंगे = रत्न। बनमाला = वनमाला, वन के फूलों से निर्मित माला।

संदर्भ : ये काव्य पंक्तियाँ मीराँबाई की कविता 'कृष्ण भक्ति' से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रेम-दीवानी मीराँ भगवान श्रीकृष्ण को ही सब कुछ मानती हैं और उनके प्रेम में अपना सर्वस्व अर्पित करती हैं। संसार के सारे रिश्ते-नाते तोड़कर, लोकलाज छोड़कर वह श्रीकृष्ण के प्रेम में लीन होकर आनंद प्राप्त करती हैं। मीराँबाई कहती हैं -

व्याख्या : गिरिधर गोपाल, श्रीकृष्ण ही मेरा सर्वस्व हैं और इस संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। सिर पर मोर मुकुट धारण करने वाले श्रीकृष्ण ही मेरे पति हैं। पिता, माता, भाई, बंधु आदि से अब मेरा कोई नाता नहीं रहा। मैंने तो कृष्ण के प्रेम पाने के लिए अपने कुल की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा को भी त्याग दिया है। अब मेरा कोई क्या कर लेगा? सभी कहते हैं कि मैंने संतों के संग बैठकर स्त्रियोचित लोकलाज भी छोड़ दी है। पर मुझे इसकी कोई चिंता नहीं। कुलवधू के द्वारा ओढ़ी जाने वाली चुनरी अथवा ओढ़नी के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उसे त्याग कर मैंने लोई (कंबल) ओढ़ ली। कीमती मोती और रत्नों को छोड़कर मैंने वनमाला पहन ली। कहने का

तात्पर्य है कि मीराँ ने वैभव भरी कुलवधू की ज़िंदगी त्यागकर वैराग्य को अपना लिया तथा श्रीकृष्ण को ही वरण किया।

काव्यगत विशेषता

1. श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव और भक्ति का अंकन।
2. आत्म-निवेदनात्मक शैली।
3. प्रसाद गुण।
4. छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई - इसमें सामंती व्यवस्था के प्रति विरोध द्रष्टव्य है।
5. लोई ओढ़ना वैराग्य का प्रतीक है।
6. बनमाला श्रीकृष्ण का प्रतीक है।
7. मोर मुकुट, कुल की कानि कहा करि, लोक लाज - अनुप्रास अलंकार
8. बैठि बैठि - पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार

बोध प्रश्न

4. मीराँ कृष्ण-प्रेम के विषय में क्या बताती हैं?
5. लोकलाज खोने का अभिप्राय क्या है?
6. कुलवधू की चुनरी त्याग कर मीराँ ने लोई क्यों ओढ़ ली?

अंसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई॥
दूध की मथनियाँ, बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोही॥

शब्दार्थ : अंसुवन = आँसू। सींचि = सींचकर। बेल = लता। भगती = भक्त।

संदर्भ :ये काव्य पंक्तियाँ मीराँबाई की कविता 'कृष्ण भक्ति' से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रेम-दीवानी मीराँ भगवान श्रीकृष्ण को ही सब कुछ मानती हैं और उनके प्रेम में अपना सर्वस्व अर्पित करती हैं। संसार के सारे रिश्ते-नाते तोड़कर, लोकलाज छोड़कर वे श्रीकृष्ण के प्रेम में लीन होकर आनंद प्राप्त करती हैं और कहती हैं -

व्याख्या : मैंने तो अपने कृष्ण-प्रेम की लता को आँसुओं से सींच-सींच कर प्यार से बढ़ाया है। अर्थात् कृष्ण-प्रेम रूपी लता को बढ़ाने के लिए अत्यंत कष्ट सहना पड़ा। अब तो यह प्रेम-लता बहुत फैल चुकी है। अब इस पर आनंद रूपी फल लगने लगे हैं। मुझे तो अब केवल प्रियतम श्रीकृष्ण ही दिखाई देते हैं और उनकी भक्ति में ही सुख मिलता है। मैंने जीवन रूपी दूध को

साधना की मथनी से अत्यंत प्रेमपूर्वक बिलोया है। इससे कृष्ण की कृपा रूपी मक्खन मुझे प्राप्त हो गया है। इस अनुभूति की उपलब्धि के बाद केवल सांसारिक विषय रूपी छाछ ही बचता है, उसे कोई भी पिये! मेरी उसमें रुचि नहीं। मैं भक्तों को देखकर प्रसन्न होती हूँ, लेकिन संसार के अज्ञान और दुर्दशा को देखकर दुखी होती हूँ। मैं तो श्रीकृष्ण की दासी हूँ। अब वे ही मुझे इस भवसागर से पार उतारेंगे।

काव्यगत विशेष

1. सींचि-सींचि – पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार
2. प्रेम बेलि, आनंद फल – रूपक अलंकार

बोध प्रश्न

7. आँसुओं से सींचने का क्या अर्थ है?
8. मथनी और छाछ किसके प्रतीक हैं?
9. मीराँ कृष्ण की उपासना किस रूप में करती हैं?
10. मीराँ के रोने और खुश होने का क्या कारण है?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

संपूर्ण भारत में भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है चूँकि वह जन-जागरण का आंदोलन था। उसने हर भारतवासी को झकझोर कर जागृत किया था। "इसमें भी कृष्णोपासना ने भारत की जनता को क्षेत्र, भाषा, धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से परे जाकर सामान्य रूप से प्रभावित किया। उसका स्वर उस काल में उत्तर के पंजाब से लेकर दक्षिण के तमिलनाडु एवं केरल राज्यों तक और पश्चिम में गुजरात और राजस्थान से लेकर असम तक प्रखरता से गूँज उठा था।" (ऋषभदेव शर्मा, कविता के पक्ष में, पृ. 94)। भक्तिकाल के कवियों ने भक्ति आंदोलन को प्रखर बनाया। इनमें मीराँबाई का स्थान विशिष्ट है क्योंकि एक स्त्री होते हुए उन्होंने जड़ सामंती संस्कारों का विरोध किया।

मीराँ बचपन से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थीं। उन्होंने बाल्यावस्था में ही स्वप्न में कृष्ण को वर लिया था –

> माई म्हाँने सुपने में वारी गोपाल।
> राती पीती चुनरी ओढ़ी मेहँदी हाथ रसाल॥

विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में पति का परलोक-वास हो जाने के बाद तत्कालीन प्रथा के अनुसार वे सती नहीं हुईं, क्योंकि वे अपने आपको अजर अमर स्वामी की चिर-सुहागिनी मानती थीं–

> जग सुहाग मिथ्या री सजनी हांवा हो मिट जासी।

वरन कर्यां हरि अविनाशी म्हारो काल-व्याल न खासी॥

मीराँ ने श्रीकृष्ण को पति के रूप में स्वीकार किया था। वे प्रायः मंदिर में जाकर संतों और भक्तों के बीच भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने आनंद विभोर होकर नाचती और गाती थीं। कहा जाता है कि उनके इस आचरण के कारण परिवारीजन लोक निंदा के भय से मीराँ से रुष्ट रहा करते थे। सामंती रूढ़ियों को तोड़ने के लिए मीराँ को सामाजिक प्रतिष्ठा खोनी पड़ी। सामंती व्यवस्था स्त्री को चारदीवारी में समेट कर रखती है और उस व्यवस्था में पराधीनता ही स्त्री की नियति है। लेकिन मीराँ ने इस रूढ़ सामंती व्यवस्था का अतिक्रमण किया और घर से बाहर निकलीं। मीराँ के लिए यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि भक्ति आंदोलन ने स्त्री को भी घर से बाहर निकलने का निमंत्रण दिया था। मीराँ ने इस विद्रोह को अपने पदों में भी दर्ज किया है।

मीराँ ने कृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति के साथ-साथ अपने पदों में सामंती व्यवस्था के प्रति असहमति और अस्वीकार को भी बखूबी दर्शाया है। मीराँ की विद्रोहिणी भूमिका को विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'मीराँ का काव्य' में रेखांकित किया है। "मीराँबाई की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा और तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति से उनकी टकराहट का प्रतिफलन है। यह प्रतिफलन उस मानवीयता में प्रकट हुआ जो अपने समय की धार्मिक साधनाओं के ही सहारे रूपायित हो सकती थी। ... निस्संदेह मीराँ का विद्रोह एवं संघर्ष भक्ति, प्रेम, रहस्य की अनुभूति के साथ अभिव्यक्त हुआ है। इन सबका एकीकृत, अखंड रूप हमारे सामने उनकी कविता में प्रकट हुआ है।" (विश्वनाथ त्रिपाठी, प्राक्कथन, मीराँ का काव्य, पृ. 7)।

मीराँ के प्रेम में आत्मसमर्पण और आत्मविश्वास को देखा जा सकता है। उनके इस प्रेम में जहाँ कृष्ण के सामने आत्मसमर्पण है, वहीं सामंती व्यवस्था का दृढ़ विरोध भी है -

राणाजी रूठ्याँ वांरो देस रखासी।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ, हो माई॥

या

राजा रूठै नगरी राखे, हरि रूठ्या कहँ जाणा।

मैनेजर पांडेय ने अपनी पुस्तक 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य' में प्रसंगवश यह स्पष्ट किया है कि "मीराँ का विद्रोह एक विकल्पहीन व्यवस्था में अपनी स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज का संघर्ष है।" (पृ. 43)। यदि कहा जाए कि मीराँ को यह शक्ति कृष्ण की भक्ति से मिली है तो गलत नहीं होगा। उनकी कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री-स्वर मुखरित है। मीराँ की स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है उतनी ही सामाजिक भी है। इसीलिए जैसा कि मैनेजर पांडेय ने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा है, नाभादास ने मीराँ के इस संघर्ष के महत्व को 'भक्तमाल' में इस प्रकार व्यक्त किया है -

सदरिस गोपिन प्रम प्रकट, कलियुग गहि दिखायो।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो॥

×××

भक्ति नीसान बजाय के काहूते आहिन लजी।
लोकलाज कुल शृंखला, तजि मीराँ गिरधर भजी॥

बोध प्रश्न

11. सामंती व्यवस्था में स्त्री की स्थिति क्या थी?
12. मीराँ की कविता किसका प्रतिफलन है?
13. मीराँ को सामंती व्यवस्था का विरोध करने के लिए शक्ति कहाँ से मिली?

मीराँ की प्रेम साधना

प्रेम एक ऐसी भावना है जिससे मनुष्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। मीराँ कृष्ण के प्रेम में विभोर थीं। उनके काव्य का मूल स्वर कृष्ण-प्रेम ही है। इसीलिए वे कह उठती हैं -

लगण म्हारी श्याम सूँ लागी नेणा निरख सुख पाय।

मीराँ अपने प्रियतम के चरणों में सब कुछ न्यौछावर कर देती हैं। उनके काव्य में वियोग को देखा जा सकता है। काव्य में शृंगार रस के दो भेद हैं - संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। संयोग शृंगार में प्रिया-प्रियतम का मिलन होता है। जबकि वियोग शृंगार में दोनों अलग-अलग रहते हैं। मीराँ अपने प्रियतम से मिलने की इच्छा रखती हैं लेकिन मिल नहीं सकतीं। उनके दर्द को समझने वाला कोई नहीं हैं। इसीलिए तो कहती हैं –

हेरी मैं तो दरस दिवाणी, मेरो दरद न जाने कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटै जद, वैद साँवलिया होइ॥

मीराँ की उपासना माधुर्य भाव की थी। वे अपने आराध्य गिरिधर गोपाल की विलक्षण छवि के प्रति आकर्षित थीं। उनके प्रति आसक्ति ही उनकी कविता का मूल है। कृष्ण-प्रेम में डूबी हुई "मीराँबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छ्‌वास का साकार रूप है। उनकी वृत्ति एकांततः और समग्रतः प्रेम-माधुरी में ही रमी है।

अपने आराध्य 'गिरिधर गोपाल' की विलक्षण रूप छटा के प्रति उनकी अनन्य आसक्ति अनेकत्र शब्दधारा बन कर फूट पड़ी है। कृष्णप्रेम में मतवाली मीराँ ने मन-ही-मन उनके मधुर मिलन के स्वप्न सँजो कर तज्जन्य आनंद की अनेकविध व्यंजना की है।" (विजयेंद्र स्नातक, हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 221)। मीराँ के एक-एक पद में उनकी व्याकुलता द्रष्टव्य है – बिरहनी बावरी सी भई; दरस बिन दूखन लागे नैन; इक अरज सुणों प्रिय मोरी, मैं किण संग खेलूँ होरी आदि।

मीराँ अपने प्रियतम गिरिधर गोपाल के न मिलने पर व्याकुल हो जाती हैं। उनके मन में अनेक शंकाएँ उठने लगती हैं। उन्हें लगता है कि कृष्ण उनसे दूर होने लगे हैं -

हो गए स्याम दूझ के चंदा
मधुबन जाइ भये मधु बनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा॥

मीराँबाई की कविता के संबंध में विद्यानिवास मिश्र का कथन है कि उनके काव्य में "विछोह की तड़पन ही ज्यादा है, मिलन के सुख का वर्णन अपेक्षाकृत बहुत कम है।" (विद्यानिवास मिश्र, भूमिका, मीराँ का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 9)। प्रिय का यह विरह तब और ज्यादा हो जाता है जब सावन के बादल उमड़ने लगते हैं। फागुन के गीत में मीराँ के उल्लास को देखा जा सकता है -

फागुन के दिन चार रे, होली खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै, अनहद की झंकार रे।
बिन सुर राग छतीसूँ गावै, रोम-रोम, संगसार रे।

मीराँ का प्रेम कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण की उदात्त भावना से भरा हुआ है। उनका प्रेम लौकिक नहीं है। यह अशरीरी और अतींद्रिय प्रेम है। वह कृष्ण के ध्यान में तन्मय होकर अपनी सुध-बुध खो बैठती है -

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची, रे।
मैं तो मेरे नारायण की, हो गई आपहि दासी रे।
लोग कहें मीराँ भई बावरी, न्यात कहं कुल नासों रे।

बोध प्रश्न

14. संयोग और वियोग शृंगार किसे कहते हैं?
15. मीराँ की उपासना में क्या भाव निहित है?

मीराँ की भक्ति भावना

वस्तुतः भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन की प्रवृत्तियाँ होती हैं। नवधा भक्ति की इन सभी प्रवृत्तियों को मीराँ की भक्ति में भी देख सकते हैं।

श्रवण : वे संतों की संगति में रहकर भगवद-चर्चा करती थीं तथा श्रवण भक्ति का आस्वादन करती थीं -

म्हाँ सुण्यां हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भव भय तारण॥

कीर्तन : मीराँ कीर्तन को भक्ति का प्रधान अंग मानती थीं - मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर भजण विणा नर फीकाँ।

स्मरण : मीराँ अपने आराध्य का नाम स्मरण प्रतिक्षण करती थीं - म्हारो मण सांवरों णाम रट्याँरी।

पादसेवन : मीराँ कृष्ण के चरणों का सेवन करके उनकी कृपा से अपना उद्धार करना चाहती थीं-

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कंवल कोमल जगत ज्वाला हरण।
×××
दासि मीराँ लाल गिरधर अगम तारण तरण।

अर्चन : मीराँ गिरधर गोपाल के पूजन-अर्चन के समय राजभोग अर्पित करती थीं -

मीराँ दासी अरज करयाँ छो, म्हारो लाल दयाल।
छप्पण भोग छतीशां बिंजण पावाँ जण प्रतिफल।
राजभोग आरोग्याँ गिरधर सष्मुख राखाँ थाल।
मीराँ दासी सरणा ज्यांशी, कीज्यां वेग निहाल॥

वंदन : मीराँ बार-बार कृष्ण से यही प्रार्थना करती थीं कि हे गिरधर गोपाल तुम्हारे बिना मेरी खबर कौन लेगा - तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरिधारी रे।

दास्य : मीराँ की भक्ति भावना में दास्य प्रवृत्ति विद्यमान है। वे अपने आपको कृष्ण की जन्म-जन्म की दासी मानती हैं - प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय। ××× मीराँ दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारो पाय॥

सख्य : मीराँ ने कृष्ण को जन्म-जन्म का साथी माना था।

आत्मनिवेदन : मीराँ का अधिकांश काव्य आत्मनिवेदन ही है - हरि मेरे जीवन प्राण आधार।

कहने का आशय है कि मीराँ की भक्ति में प्रेम तत्व का परम उदात्त रूप दिखाई देता है। परम प्रेम का ही नाम भक्ति है। मीराँ कृष्ण भक्ति के सहारे इस भवसागर से पार होना चाहती थीं। उनका प्रेम अशरीरी और उदात्त था।

बोध प्रश्न

16. मीराँ की भक्ति में किन प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है?

मीराँ की काव्य-भाषा

मीराँ की काव्य-भाषा सामान्य रूप से राजस्थानी मिश्रित ब्रज है। पंजाबी और गुजराती के शब्द भी उनके पदों में दिखाई देते हैं। 'मीराँबाई की पदावली' की भूमिका में परशुराम चतुर्वेदी ने दिखाया है कि मीराँ की कविता में चार भाषा-रूपों का प्रयोग है -

राजस्थानी

थें तो पलक उघाड़ो दीननाथ, मैं हाजिर-नाजिर कब की खड़ी

साजनियाँ दुसमण होय बैठ्याँ, सब ने लगूँ कड़ी

ब्रज भाषा

यह विधि भक्ति कैसे होय
मण की मैल हिय तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय

पंजाबी

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ

गुजराती

प्रेमनी-प्रेमनी-प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी
जल-जमुनाँ माँ भरवाँ गयाँताँ, हती गागर माथे हेमनी रे

मीराँ की काव्य-भाषा में आत्मीयतापरक संबोधनात्मक शब्द (हे मेरो मनमोहना! माई री! स्याम! पपइया रे!), संगीतात्मकता, प्रवाहमयता, भावानुकूल शब्द प्रयोग आदि विशेषताओं को देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

17. मीराँ की काव्य-भाषा में किन बोलियों के शब्द पाए जाते हैं?
18. मीराँ की काव्य-भाषा की क्या विशेषताएँ हैं?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! कृष्ण भक्ति संबंधी मीराँ के पदों के अध्ययन से आप यह समझ गए होंगे कि उन्होंने भी सूरदास जैसे कृष्ण भक्त कवियों की तरह कृष्ण के बाल और किशोर रूप की आराधना की है। लेकिन यह इस अर्थ में विशिष्ट है कि अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए मीराँ को किसी कथा या आख्यान की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे तो सीधे-सीधे कृष्ण के प्रति अपने प्रणय का निवेदन कर देती हैं। यह बात अलग है कि उनका यह प्रणय निवेदन पुष्टिमार्ग द्वारा स्वीकृत माधुर्य भक्ति के अंतर्गत स्वतः ही आ जाता है। लेकिन यह सच है कि उन्होंने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। इसीलिए मीराँ की कृष्ण भक्ति को संप्रदाय-निरपेक्ष भक्ति कहा जाता है।

मीराँ के पदों के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि उनके लिए कृष्ण की लीलाएँ कहीं बाहर चल रही गतिविधियाँ नहीं हैं। बल्कि इन लीलाओं में मीराँ स्वयं कृष्ण की प्रेमिका के रूप में सम्मिलित हैं। इसी भावपूर्ण अवस्था का नाम गोपी-भाव है। मीराँ ने स्वयं को कृष्ण के प्रेम में लीन गोपियों के साथ इस तरह एकाकार कर दिया है कि वे स्वयं कृष्ण की गोपी बन गई हैं और गोपीवल्लभ गिरिधर कृष्ण उनके एकमात्र आराध्य और पति।

मीराँ कृष्ण की रूप माधुरी, वंशी माधुरी और प्रेम माधुरी में पूरी तरह सराबोर हैं। वे प्रति क्षण अपने आराध्य नंदलाल कृष्ण का साक्षात्कार करते रहना चाहती हैं। जिस प्रकार कबीर

चाहते हैं कि उनके प्रियतम उनके नेत्रों में आकर इस तरह समा जाएँ कि – ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन देऊँ। उसी प्रकार मीराँ भी चाहती हैं कि प्रियतम कृष्ण उनके नेत्रों में बसे रहें।

कृष्ण मीराँ के एकमात्र आराध्य हैं। बल्कि वे तो यह कहती हैं कि संपूर्ण जगत में कोई और उनका अपना है ही नहीं। इस स्वार्थी संसार के बीच एकमात्र कृष्ण उन्हें अपने प्रतीत होते हैं और वे गा उठती हैं - मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई। यहाँ गिरिधर और गोपाल ये दोनों नाम अत्यंत विशिष्ट हैं।

सर्वविदित है कि कृष्ण ने इंद्र के प्रकोप से ब्रजमंडल की रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपनी उंगली पर उठा लिया था। इसी लिए उन्हें गिरिधर कहा जाता है। उनका यह नाम उनके लोक रक्षक रूप का प्रतीक है।

आम तौर पर कृष्ण को लोक रंजक के रूप में देखा जाता है। लेकिन मीराँ जैसे समर्पित भक्तों के लिए वे संरक्षक हैं। यही कारण है कि मीराँ अपने पति के रूप में गिरिधर कृष्ण को चुनती हैं। कृष्ण का दूसरा नाम गोपाल यहाँ इसलिए महत्वपूर्ण है कि गो अर्थात् गायों का पालन करने वाले के रूप में कृष्ण समस्त इंद्रियों को संयमित रखने वाले हैं। क्योंकि गो का एक अर्थ इंद्रियाँ भी है। इस रूप में कृष्ण आत्मनियंत्रण और संयम के स्रोत हैं।

गोपाल कृष्ण को पति मानने का अर्थ है अपने समस्त संसारी संबंधों को एकमात्र कृष्ण को समर्पित कर देना। इसी का नाम शरणागति है जो अनन्य भक्ति की अनिवार्य शर्त है। इस प्रकार गिरिधर गोपाल को अपना पति मानने का अर्थ है स्वयं को पूरी तरह कृष्ण के प्रति समर्पित कर देना। यह गीता के उस श्लोक के अनुरूप है जिसमें कृष्ण अर्जुन से कहते हैं - 'हे अर्जुन! सब संकल्पों-विकल्पों को छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें तुम्हारे सब पापों से मुक्त कर दूँगा।' यही नहीं दूसरे स्थान पर कृष्ण यह भी कहते हैं कि 'जो भक्त मेरी शरण में आता है उसके कुशल क्षेम की चिंता मैं स्वयं करता हूँ।' मीराँ भी स्वयं के लिए चिंता नहीं करती। उन्होंने तो एकमात्र कृष्ण को अपना पति स्वीकार लिया है जो उनके योगक्षेम की स्वयं चिंता करेंगे। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसे राजस्थान के सहज स्वभाव के साथ जोड़कर समझाने का प्रयास किया है। उनकी राय है कि -

> "सूर के काव्य में गोचारण वातावरण की जो स्वच्छंद तन्मयता है उस की जगह मीराँ में राजस्थान से ब्रज की प्रणय यात्रा की उदग्रता है। ब्रज, राजस्थान और गुजरात में कृष्ण लीला की दृष्टि से जो सांस्कृतिक एकता रही है, मीराँ की काव्य-भाषा में वह भली-भाँति प्रतिफलित होती दिखाई देती है। मीराँ का प्रणय संचरण उनके भाषिक स्वरूप से जुड़ा हुआ है।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 51)

14.4 पाठ-सार

मीराँ श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन होकर अपना सर्वस्व उन्हीं को समर्पित करती हैं। सांसारिक मोह-माया को छोड़कर वे कृष्ण की अनन्य भक्ति में डूब जाती हैं। माता-पिता, भाई-बंधु सब तरह के रिश्ते-नाते तोड़कर, कुलवधू की ज़िंदगी त्यागकर वैराग्य अपना लेती हैं। उन्हें चारों ओर कृष्ण ही दिखाई देते हैं। कृष्ण की मनोहर छवि को वह अपनी आँखों में बसा लेती हैं। अत्यंत कष्ट सहकर भी वे कृष्ण की भक्ति में तल्लीन रहती हैं। वे कृष्ण रूपी सार तत्व को ग्रहण करके सारहीन सांसारिक सुखों को त्याग देती हैं।

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से ये निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं कि –

1. मीराँ श्रीकृष्ण को ही अपना सब कुछ मानती थीं। उनकी उपासना माधुर्य भाव की थी। वे अपने गिरिधर गोपाल की विलक्षण छवि के प्रति आकर्षित थीं।
2. मीराँ कृष्ण-प्रेम के सहारे इस संसार को पार करना चाहती थीं।
3. मीराँ की भक्ति भावना में दास्य प्रवृत्ति भी विद्यमान है।
4. मीराँ की काव्य-भाषा में भावों के अनुकूल शब्द प्रयोग, संगीतात्मकता, संबोध्यता और प्रवाहमयता को देखा जा सकता है।
5. मीराँ का प्रेम कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण की उदात्त भावना से भरा हुआ है।
6. तत्कालीन सामंती व्यवस्था स्त्री को चारदीवारी में समेट कर रखती थी। मीराँ ने ऐसी व्यवस्था का विरोध किया और सांसारिक बंधनों को त्यागकर वैराग्य ग्रहण किया तथा भगवद-प्रेम में जीवन बिताया।

14.6 शब्द संपदा

1. अस्तित्व	=	होने का भाव, वजूद
2. आसक्ति	=	अनुराग, लिप्तता
3. तल्लीन	=	डूबा हुआ
4. भवसागर	=	संसार रूपी समुद्र
5. विछोह	=	प्रिय का वियोग
6. वियोग	=	विरह
7. विलक्षण	=	अद्भुत
8. वैराग्य	=	सांसारिक बंधनों से विमुखता
9. संयोग शृंगार	=	शृंगार रस का एक भेद जिसमें प्रेमियों का मिलन होता है

10. सामंती = सामंत होने की अवस्था या भाव, पद

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. पठित पाठ के आधार पर 'कृष्ण भक्ति' कविता की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
2. मीराँ के काव्य में व्यक्त प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3. मीराँ की भक्ति भावना को समझाइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मीराँ के विरह वर्णन को स्पष्ट कीजिए।
2. मीराँ ने सामंती व्यवस्था का विरोध कैसे किया? स्पष्ट कीजिए।
3. मीराँ की काव्य-भाषा पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. लोई किसका प्रतीक है? ( )

(अ) प्रेम (आ) वैराग्य (इ) मुक्ति (ई) विरह

2. सामंती व्यवस्था को तोड़ने के लिए मीराँ को क्या खोनी पड़ी? ( )

(अ) लोक निंदा (आ) प्रेम (इ) भक्ति (ई) सामाजिक प्रतिष्ठा

3. 'मीराँ के काव्य में विछोह की तड़पन ही ज्यादा है।' यह किसकी उक्ति है? ( )

(अ) विश्वनाथ त्रिपाठी (आ) विद्यानिवास मिश्र
(इ) परशुराम चतुर्वेदी (ई) विजयेंद्र स्नातक

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मीराँ का प्रेम कृष्ण के प्रति .... की उदात्त भावना से भरा हुआ है।
2. मीराँ की भक्ति में .... तत्व का सम्मिश्रण है।
3. मीराँ के प्रेम में .... और .... को देखा जा सकता है।
4. मीराँ का विद्रोह एक विकल्पहीन व्यवस्था में .... के लिए संघर्ष है।

III सुमेल कीजिए।

i) प्रेम-बेलि (अ) पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार

ii) सींचि-सींचि (आ) अनुप्रास अलंकार

iii) लोक-लाज (इ) रूपक अलंकार

14.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल.

2. मीराँ का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी.

3. मीराँबाई ग्रंथावली (मीराँबाई की पदावली), सं. कल्याणसिंह शेखावत.

4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी.

इकाई 15 : रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मूल पाठ : रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व
    15.3.1 जीवन परिचय
    15.3.2 रचना यात्रा
    15.3.3 भक्ति भावना
    15.3.4 प्रेम निरूपण
    15.3.5 सांप्रदायिक सद्भाव
    15.3.6 भाषा-शैली
    15.3.7 हिंदी साहित्य में स्थान
15.4 पाठ सार
15.5 पाठ की उपलब्धियाँ
15.6 शब्द संपदा
15.7 परीक्षार्थ प्रश्न
15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! कवि या रचनाकार की वास्तविक पहचान उसकी काव्य-प्रतिभा के माध्यम से होती है। इस प्रतिभा को जन्म देने के लिए उसका निजी व्यक्तित्व, सामयिक परिस्थितियाँ, समाज तथा अन्य कवि-लेखकों का योगदान भी रहता है, तो कभी अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से काव्य पृष्ठभूमि के निर्माण की भी प्रेरणा तथा कभी अपने समकालीन कवियों का प्रभाव भी विद्यमान रहता है। रसखान ने भी अपने की काव्य पृष्ठभूमि के लिए श्रीमद् भागवत्, सूर साहित्य आदि को आधार बनाया। श्रीमद् भागवत् की कथा सुनने के बाद इसमें वर्णित कृष्ण-कथा को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- रसखान के जीवन वृत्त से अवगत हो सकेंगे।
- रसखान की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- रसखान के काव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- रसखान की भाषा-शैली से परिचित हो सकेंगे।
- रसखान की भक्ति भावना को समझ सकेगे।
- सांप्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से रसखान का महत्व समझ सकेंगे।
- भक्ति साहित्य में रसखान के स्थान से परिचित हो सकेंगे।

15.3 मूल पाठ : रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व

भक्तिकाल के दो संप्रदाय निरपेक्ष मुस्लिम कवि विशेष रूप से उल्लेखनिय हैं - रसखान और रहीम। इनमें रसखान पठान वंश के थे। उनकी कृष्णभक्ति को देखते हुए 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में उन्हें वल्लभचार्य का अनुयायी माना गया है। इतना ही नहीं, 'मूल गोसाईं चरित' में उन्हें तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का प्रथम श्रोता बताया गया है।

15.3.1 जीवन परिचय

रसखान कृष्णभक्ति काव्यधारा के 'संप्रदाय निरपेक्ष' कवि हैं। इनका पूरा नाम सैयद इब्राहीम 'रसखान' है। उनके जीवन के संबंध में गहरा मतभेद है। इनके जीवन के संबंध में कुछ जानकारी 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' में मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ परिचय 'भक्तमाल' तथा 'शिवसिंह सरोज' में भी दिया गया है। कुछ बातें जनश्रुतियों के आधार पर भी अनुमानित हैं। रसखान द्वारा रचित 'प्रेम वाटिका' में एक दोहा उनके जन्मकाल के बारे में भी कहा गया है -

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की, ठसक छांड़ि रसखान।।

रसखान का जन्म उपलब्ध स्रोतों के अनुसार सन् 1533 से 1558 के बीच माना जाता है। अकबर का राज्यकाल 1556-1605 है, अर्थात् ये लगभग अकबर के समकालीन हैं। प्रो. देशराज भाटी के अनुसार रसखान का संबंध तत्कालीन शाही वंश से था, किंतु जब शाही वंश से था और दिल्ली उजाड़ गई तो ये दिल्ली दरबार छोड़ कर ब्रज चले गए थे। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर भी पता चलता है कि यह गदर सन् 1613 ई. में हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस रसखान इस समय व्यस्क हो चुके होंगे। इसलिए उनका जन्म सन 1533 ई. अधिक समीचीन प्रतीत होता है। भवानी शंकर याग्निक का भी यही मानना है। अनेक तथ्यों के आधार पर उन्होंने अपने मत की पुष्टि भी की है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर भी यही तथ्य सामने आता है। अंतत: अधिकांश विद्वान भी यही मनाने के पक्षधर हैं।

जन्म काल की तरह जन्म स्थान के संबंध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रसखान का जन्म स्थान पिहानी, जिला हरदोई माना जाता है। रसखान के

जन्म स्थान तथा जन्म काल की तरह उनके नाम और उपनाम के संबंध में भी अनेक मतभेद हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रसखान के दो नाम लिखे हैं - 'सैयद इब्राहीम' और 'सुजान रसखान'। जबकि सुजान रसखान उनकी एक रचना का नाम भी है। हालांकि अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि रसखान का असली नाम सैयद इब्राहीम था और 'खान' उनकी उपाधि थी। नवलगढ़ के राजकुमार संग्राम सिंह द्वारा प्राप्त रसखान के चित्र पर नागरी लिपि के साथ फारसी लिपि में भी एक स्थान पर 'रसखान' एवं दूसरे स्थान पर 'रसखाँ' लिखा पाया गया है। साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्होंने अपना नाम रसखान सिर्फ इसलिए रखा कि वह कविता में इसका प्रयोग कर सकें। रसखान की मृत्यु सन् 1628 ई. में हुई थी।

बोध प्रश्न

1. रसखान ने दिल्ली क्यों छोड़ी?
2. रसखान किस काव्यधारा के कवि थे?

रसखान किसी परंपरा में बंधकर नहीं रहना चाहते थे। विश्व-चेतना के धरातल पर उनका कृष्ण प्रेम स्वच्छंद विचरण करता है। कृष्ण प्रेम को लौकिक पृष्ठभूमि में दिखाकर कवि ने जिस प्रेम तत्व को अपने जीवन में स्वीकारा है, वह ज्ञान, विद्या, बुद्धि, मत, विश्वास की परिधि से बढ़कर है। इसके बिना संसार के समस्त पदार्थ धूल के समान है। यही परमधर्म है। इसी से लोक को ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। इस प्रेम तत्व के दिव्य आसन पर रसखान आसीन हैं। जिस कारण उन्हें कृष्ण प्रेम के सिवा कुछ भी दर्शन करना आवश्यक नहीं लगता है। इसलिए उनकी गोपियाँ भी इन बंधनों को लाँघकर प्रीतम दर्शन के लिए चली जाती हैं। कवि की यह विशेषता है कि वह इस अलौकिक धरातल पर रहकर ही प्रभु प्रेम में लीन रहना चाहते हैं। इस प्रेम की चोट को बार-बार सहने पर ही प्रेम की मिठास रोम-रोम में भरती है। इस भाव को देखते हुए रसखान को भावुक कवि कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- "ये बड़े भारी कृष्ण भक्त थे। भक्ति काल के कवि होने के बावजूद भी रसखान किसी काव्य धारा से बंधकर नहीं रहे है।" रसखान को हिंदी साहित्य में स्वतंत्र स्थान प्राप्त प्रदान किया गया हैं।

बोध प्रश्न

3. रामचंद्र शुक्ल ने रसखान के विषय में क्या कहा है?

15.3.2 रचना यात्रा

रसखान ने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा। उन्होंने मुक्तक रूप में सवैये रचे। साथ ही, 52 दोहों की रचना भी की, जो 'प्रेमवाटिका' में संकलित है। उनका उद्देश्य प्रेम का पूर्ण रूप दिखाना

था। रसखान प्रेम की पीर में विह्वल रहा करते थे। उस अवस्था में जो भी माधुर्य भाव उनके हृदय में आता उसे वे कवित्त-सवैया के रूप में व्यक्त कर देते थे। इसलिए उनका कोई प्रबंध काव्य नहीं है। रसखान की तीन रचनाएँ उपलब्ध है- 'सुजान रसखान', 'प्रेम वाटिका' और 'दानलीला'। रसखान की बहुत अधिक रचनाएँ नहीं हैं, परंतु आज भी लोग उनकी रचनाओं को सुनकर भाव-विभोर हो जाते हैं।

सर्वप्रथम किशोरीलाल गोस्वामी ने 'खड़गपुर प्रेस' से 'रसखान शतक' नाम से रसखान की कुछ रचनाएँ प्रकाशित करवाई थीं, फिर भी गोस्वामी जी को संतोष नहीं था। उन्हें विश्वास था कि यदि अधिक खोज की जाए तो रसखान की और भी रचनाएँ मिल सकती हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी रसखान की रचना प्रकाशित की है। परंतु उसमें और गोस्वामी जी द्वारा प्रकाशित पुस्तक में कोई खास फ़र्क नहीं है।

बोध प्रश्न

4. रसखान की रचनाओं के नाम बताइए?

15.3.3 भक्ति भावना

प्रिय छात्रो! जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, रसखान किसी निश्चित संप्रदाय में दीक्षित नहीं थे। फिर भी ये माना जाता है कि वे वल्लभ संप्रदाय के समर्थक वैष्णव भक्त कवि थे। रसखान ने अपनी भक्ति में कृष्ण के अनेक भावों का मनोहर और मनोरम वर्णन किया हैं। रसखान स्वच्छंद विचारधारा के अमर कवि हैं। उनकी भक्ति में मधुरता का स्थान विशेष है। माधुर्य भाव के रूप वर्णन, विरह वर्णन और आत्म निवेदन इन तीनों सोपानों को सफलतापूर्वक रसखान ने अपने काव्य में स्पष्ट किया है। कृष्ण के रूप और राधा के रूप वर्णन आदि में रसखान की बुद्धि अच्छी तरह रमती हैं। परंपरागत होते हुए भी उनका काव्य नवीनता से ओत-प्रोत हैं।

रसखान ने कृष्ण को सब कुछ मानकर काव्य लिखा है। विरह का सच्चा समाधान गोपियों के लिये कृष्ण हैं। रसखान की यह मान्यता अकाट्य है। विरहिणी अचेतन अवस्था से किसी भौतिक उपचार से ठीक न होकर कृष्ण दर्शन और प्रेम से हे भलीभांति स्वस्थ हो पाती है। आत्म समर्पण की भावना रसखान की निजी विशेषता है। वह कृष्ण से विमुख रहने पर प्रेम को अधूरा मानते हैं। कृष्ण पर रसखान का अटल विश्वास है। कृष्ण ही उनका सहारा हैं, और उनके होते हुए कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

रसखान को कृष्ण से इतना घनिष्ठ प्रेम है कि वे हर जन्म में कृष्ण का दर्शन और सान्निध्य चाहते है। शरीर की सार्थकता कृष्ण नाम स्मरण और उनकी सेवा पूजा आदि में ही है। इनका

मूल स्वर है कृष्ण की भक्ति, उनकी कीर्ति और वैभव। इनका हृदय कृष्ण के प्रति संकुचित न होकर उन्मुक्त है। इस प्रकार रसखान किसी संप्रदाय की परंपरा में न रहकर कठोर नियमों आदि से दूर रहे। रसखान ने भक्ति के माध्यम से कृष्ण से अपना पूर्ण तादात्म्य स्थापित करके सर्वमान्य जन का मार्ग सफल एवं सहज कर दिया। भक्ति में आंतरिक शुचिता रखकर अपने आराध्य की शरण में चला जाना ही उत्तम है। एकै साधै सब सधै के नियम पर चलकर रसखान काव्य में नवीन चमत्कार पैदा कर देते हैं।

बोध प्रश्न

5. माधुर्य भाव के तीन सोपान क्या हैं?

15.3.4 प्रेम निरूपण

रसखान कृष्ण को प्रेम करने वाले भक्त कवियों की कोटि में आते हैं। उन्होंने कवित्त-सवैया में राधा-कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की अभिव्यक्ति की है। 'प्रेम वाटिका' में प्रेम तत्व का स्वतंत्र निरूपण भी किया है। प्रेम के संबंध में इनकी अपनी अलग राय थी। उन्होंने आचार्यों की भांति प्रेम के लक्षण, उसके भेद, उसकी व्यापकता एवं उसके प्रभावों का वर्णन किया, परंतु प्रमाण देकर स्पष्ट भी किया है।

प्रेम तत्व निरूपण की दृष्टि से इनकी 'प्रेम वाटिका' महत्वपूर्ण है। रसखान का कहना है कि प्रेम वही है जो गुण, रूप, यौवन, धन की अपेक्षा न रखता हो, जिसमें स्वार्थ की गंध न आती हो और जो कामना से रहित हो। यह सत्य भी है कि किसी वस्तु की आशा कर के स्वार्थवश किया हुआ प्रेम उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्वार्थ की सिद्धि पर प्रेम का बढ़ना-घटना निर्भर रहता है। जो प्रेम बढ़-घट सकता है, वह प्रेम नहीं कहला सकता। शुद्ध प्रेम धारण करने वाला प्रेमी अपने प्रिय से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता। वह कामना रहित होता है। रसखान के शब्दों में-

बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि।।

प्रेम की इस स्वार्थ-हीनता को रसखान आगे चलकर और अधिक स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि प्रेम एकनिष्ठ होना चाहिए। अर्थात् प्रेमी का एकमात्र धर्म यही है कि वह अपने प्रिय से प्रेम करे और वह इस बात की उससे अपेक्षा न रखे कि उसका प्रिय भी उससे प्रेम करे। प्रेम करना तो दूर रहा यदि उसका प्रिय उससे घृणा भी करे, तो भी प्रेमी के प्रेम में तनिक भी अंतर नहीं आना चाहिए। इनके काव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि रसखान फारसी प्रेम पद्धति से भली-भांति

परिचित रहे होंगे। तभी तो वह कहते हैं, बिना किसी कारण से एकनिष्ठ प्रेम होना चाहिए और प्रत्येक दशा में प्रेमी प्रिय को ही अपना सर्वस्व समझे -

इकअंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान।।

इस प्रकार रसखान ने पहले प्रेम का स्वरूप स्पष्ट किया और फिर उस प्रेम को आनंद स्वरूप माना। रसखान ने शुद्ध प्रेम की पहचान को भी स्पष्ट किया। वे कहते हैं कि जिस प्रेम के प्राप्त होने पर ईश्वर की भी इच्छा न रह जाए उसे शुद्ध प्रेम समझना चाहिए -

जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध, सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि।।

शृंगार रस के उपरांत रसखान-काव्य में चित्रित दूसरा प्रमुख रस वात्सल्य है। श्री कृष्ण के बाल रूप की माधुरी का वर्णन उन्होंने यद्यपि गिने-चुने कवित्तों में ही किया है पर उनकी काव्यात्मक गरिमा सूर और तुलसी के बाल वर्णन की समानता करने वाली हैं-

धूरि भरे अति सोहत स्याम जू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैंजनि बाजति, पीरि कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सो ले गयो माखन रोटी।

यहाँ वात्सल्य के स्वरूप का मनोरम अंकन किया गया है।

रसखान के काव्य में विरह वर्णन सहज, स्वाभाविक और मार्मिक है। यदा-कदा अतिशयोक्ति कथन भी है। वस्तुतः वह युग-युग से प्रियतम प्रभु से बिछड़ी प्रीति कथा व्यक्त करते हैं। यह व्यथा उनके पदों में और हृदय में संपूर्ण आवेग के साथ दिखती है। यही कारण है कि कवि की रूपासक्ति, प्रेम और विरह की चरम परिणति उसके आत्मसमर्पण में होती है। विरह वर्णन में कहीं-कहीं रसखान ने चमत्कारपूर्ण वर्णन पद्धति का भी सहारा लिया है-

बिरहा की जू आँच लगी तन में तब जाय परी जमुना जल में।
बिरहानल तैं जल सूखि गयौ मछली बहीं छांड़ि गई तल में।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्यौ धरती-तल में।
रसखान तबै इहि आँच मिटे जब आय कै स्याम लगैं गल मैं।

बोध प्रश्न

6. 'प्रेमवाटिका' का विषय क्या है?
7. रसखान ने शुद्ध प्रेम किसे माना है?

15.3.5 सांप्रदायिक सद्भाव

यह पूर्णतः सत्य है कि प्रायः भक्त अपने आराध्य देव को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है और दूसरों के आराध्य देव के प्रति थोड़ा अनादर रखता है। तत्कालीन समाज में इस प्रकार की दुशप्रवरट्टी विद्यमान थी कि भक्ति के अलग अलग संप्रदायों को मानने वाले एक दूसरे से द्वेष रखते थे।

छात्रो! आपने अन्यत्र पढ़ा है कि तुलसीदास ने इन अलग अलग संप्रदायों के आपसी द्वेष को मिटाकर समन्वय का प्रयास किया। इसीलिए उन्हें लोकनायक कहा गया है। ध्यान देने वाली बात यह है कि रसखान ने भी अपने स्तर पर ऐसी ही कल्याणकारी चेष्टा की। रसखान उन कृष्ण भक्तों में से नहीं थे जो कृष्ण के अतिरिक्त राम, शंकर या अन्य किसी देवी देवता के नाम से चिढ़ते हों। उनके लिए कृष्ण सर्वोपरि अवश्य थे, किंतु साथ ही उन्हें किसी अन्य देवी- देवता से विरोध न था। विरोध की बात तो दूर, वह अन्य किसी देवी देवता का तनिक भी अनादर नहीं कर सकते थे। अनेक स्थानों पर उन्होंने भगवान शंकर की भी स्तुति की है, जैसे -

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत है।
चहुँ ओर जटा अंटकै लटके फनि सों कफनी पहरावत हैं।
रसखानि गेई चितवैं चित दे तिनके दुखदुंद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत है।

जिस भक्ति भाव से रसखान ने शिव की महिमा का बखान किया है, उसी भक्ति-भाव से वे गंगा का गुणगान भी करते है -

बैद की औषध खाइ कछु न करै बहु संजम री सुनि मोसे।
तो जलपान कियौ रसखानि सजीवन जानि लियो रस तोसे।
एरी सुघामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बने तोहिं पोसे।
आक धतूरो चबात फिरे विष खात फिरै सिव तेऐ भरोसें।

गंगा के प्रति उनका यह प्रेम कहीं भी बनावटी नहीं है। इन्हीं सब कारणों को देखकर कहा जा सकता है कि रसखान वास्तव में उदार मानसिकता वाले कवि थे, जिन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव को अपने काव्य द्वारा चरितार्थ किया।

बोध प्रश्न

8. तत्कालीन समाज में क्या दुष्प्रवृत्ति विद्यमान थी?

15.3.6 भाषा-शैली

भाषा प्रवाह

बोलचाल की भाषा जब परिष्कृत भाषा के साथ घुलमिल जाती है, तब उसमें एक प्रवाह आ जाता है। रसखान की भाषा में भी ऐसा ही प्रवाह है। विषय की सरलता और सहजता के अनुरूप ही रसखान की कविता कि भाषा भी सरल और सहज है। उनके सवैयों में गेयता, लय और प्रवाह जैसे गुण पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए-

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन॥

यहाँ रसखान श्रीकृष्ण के प्रति अपने स्वतंत्र भाव की भक्ति व प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि यदि मुझे अगले जन्म में मनुष्य के रूप में पैदा होना हो तो मैं ऐसा मनुष्य बनू जिसे ब्रज और गोकुल गाँव के ग्वालों के साथ रहने का अवसर मिले। यदि मुझे पशु योनि मिले तो मेरा जन्म ब्रज या गोकुल में ही हो। ताकि नित्य नंद की गायों के साथ में विचरण कर सकूँ। अगर मुझे पत्थर बनना पड़े तो मैं वह पर्वत बनना चाहूँगा जिसे श्री कृष्ण ने इंद्र का गर्व नष्ट करने के लिए अपनी उंगली पर उठा लिया था। यदि मुझे पक्षी बनना पड़े, तो मैं ब्रज में ही जन्म पाऊँ। ताकि यमुना के तट पर खड़े हुए कदंब के पेड़ की डालियों पर निवास कर सकूँ।

अलंकार

रसखान की कविता की महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता यह है कि उसमें अलंकारों का प्रयोग अत्यंत सहज रूप में हुआ है। सच बात यह है कि प्रेम की दृढ़ता तथा अनुभूति और स्पंदन की अवस्था में रसखान की रुचि अलंकारों का चमत्कार दिखाने में नहीं थी। वैसे भी रसखान रससिद्ध कवि हैं, काव्यशास्त्री कवि नहीं हैं। फिर भी उनके काव्य में यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास इत्यादि के उदाहरण मिल जाते हैं-

सोहत है चँदवा सिर मोर को, तैसिय सुन्दर पाग कसी है।
तैसिय गोरज भाल विराजत, तैसी हिये बनमाल लसी है।

'रसखानि' बिलोकत बौरी भई, दृग, मूंदि कै ग्वालि पुकार हँसी है।
खोलि री घूंघट, खौलौं कहा, वह मूरति नैनन मांझ बसी है।

काव्य भाषा

केवल भाव पक्ष की दृष्टि से ही नहीं बल्कि कलापक्ष की दृष्टि से भी रसखान का काव्य उच्च कोटि का है। कृष्ण लीला का गान करने के लिए उन्होंने मुक्तक शैली को अपनाया। ब्रजभाषा में अन्य प्रादेशिक बोलियों को मिलाकर उन्होंने काव्य भाषा को एक आदर्श रूप दिया है। उनकी भाषा में शुद्धता, सरलता, सादगी एवं मिठास है। ब्रज संस्कृति की झलक उनके काव्य की अन्यतम विशेषता है। अलंकार उनके काव्य में समाहित हैं, जिनसे भाषा भावों के अनुरूप बन गई है। माधुर्य और प्रसाद गुणों का संयोजन भी दृष्टव्य है।

रसखान को तीन युगों का प्रतिनिधित्व करते हुए देखा जा सकता है। अपने पूर्ववर्ती कवियों से उन्होंने अपने काव्य की पृष्ठभूमि की प्रेरणा ली। समकालीन कवि सूरदास, नंददास, मीराँबाई आदि से भी रसखान प्रभावित थे। परन्तु उन्होंने गीति पद्धति की पद शैली को त्याग कर कवित्त-सवैया पद्धति में काव्य रचना की। आगे आने वाले कवियों ने इसी परंपरा को विकसित किया।

भक्ति काल के कवि कहे जाने वाले रसखान की यह मुख्य विशेषता है कि वे स्वच्छंद काव्यधारा के भी जन्मदाता हैं। उनकी प्रेमाभक्ति की धारा अबाध गति से मुक्त होकर बह रही है। जो स्वयं किसी भी प्रतिबंध को स्वीकार नहीं करती। परंतु रस की खान कहलाए जाने वाली सरिता के जल से सभी अपनी तृष्णा शांत करना चाहते हैं। सभी उनसे प्रभावित हैं। उनके मौलिक दृष्टिकोण में हिंदी कृष्ण भक्ति धारा में उन्हें एक स्वतंत्र स्थान प्रदान किया है।

बोध प्रश्न

9. रसखान के अलंकार प्रयोग की क्या विशेषता है?
10. रसखान ने कौनसी शैली अपनाई?
11. रसखान किन समकालीन कवियों से प्रभावित थे?

15.3.7 हिंदी साहित्य में स्थान

रसखान हिंदी साहित्य की उस परंपरा के कवि हैं, जिसे हिंदू और मुस्लिम दोनों की साझी विरासत कहा जाता है। उनकी अनन्य कृष्णभक्ति पर मुग्ध होकर भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने कहा है कि - ऐसे मुस्लिम भक्त-कवियों पर करोड़ों हिंदू न्योछावर हैं। यहाँ डॉ. विद्यानिवास मिश्र का यह कथन भी उल्लेखनीय है कि, “आज जाति, धर्म और समुदाय के नाम पर विखंडित राष्ट्र को ऐसे प्रतिभावान साहित्यकारों की आवश्यकता है जो भारतीय जनमानस में समन्वयवादी भाव भर सकें। कहना न होगा कि मुसलमान होते हुए भी रसखान का कृष्ण-प्रेम इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस दृष्टि से रसखान काव्य पर पुनर्विचार समय की मांग है।

इतिहास ही नहीं अपितु साहित्य में भी ऐसे रचनाकारों की लंबी परंपरा विद्यमान है जिन्होंने भारतीय समाज में समन्वय और सांप्रदायिक सौहार्द के लिए साहित्य सृजन किया। रसखान उनमें सबसे लोकप्रिय कवि हैं क्योंकि उन्होंने कृष्णभक्ति का आश्रय लेकर प्रेम की प्रबल भावधारा को अपने काव्य में दर्शाया है। यह ऐसी धारा है जो हिंदू-मुस्लिम समन्वय के सेतु को निर्धारित करती है।" कहना न होगा कि वर्तमान युग में रसखान की प्रासंगिकता का यह सबसे बड़े आधार है।

रसखान ने अपने साहित्य में प्रेम का वास्तविक रूप व्यंजित किया है। उनकी वृत्ति शृंगार रस में अधिक रमी है। भावपक्ष की दृष्टि से वे सूरदास से किसी भी दृष्टि से हीन नहीं सिद्ध होते हैं। उल्लेखनीय है कि रसखान प्रेमनिरूपण में सूफी कवियों से भी एक कदम आगे हैं। रसखान कृष्ण के प्रेम में ऐसे डूबे कि उन्हीं के हो गये। सच तो यह है कि वे जाति और धर्म से ऊपर उठे एक सच्चे मनुष्य थे। एक कवि के प्रासंगिक होने के लिए उसका मनुष्य होना बहुत बड़ी योग्यता है। ऐसा कवि 'मनुष्यता' के पक्ष में अवश्य खड़ा होता है और तमाम अवमूल्यन के मध्य मनुष्यत्व को बचाने के लिये कृत संकल्प होता है। रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि "मनुष्यता को समय-समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ चली आ रही है और चलेगी।" रसखान के काव्य की अंतर्वस्तु वही है, जो प्रमुख कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं की आधारशिला है। हिंदी काव्य जगत में रसखान का काव्य अमूल्य धरोहर है।

बोध प्रश्न

12. रसखान के संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने क्या कहा?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! रसखान के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करते समय कई बार मन में यह प्रश्न उठता है कि पठान वंश से संबंधित होने के बावजूद रसखान कृष्ण की भक्ति में इतने लीन कैसे हो गए! आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका श्रेय उस समय के परिवेश को दिया है। एक ओर तो रसखान का समय अपने से पहले के समय की तुलना में अधिक धार्मिक सहिष्णुता का समय था। तथा दूसरी ओर उस समय कृष्ण भक्ति की धारा अत्यंत प्रबल रूप में उत्तर भारत में प्रवाहित हो रही थी। वे मानते हैं कि कृष्ण भक्ति विषयक काव्य में एक ऐसी मिठास है जो धर्म और विश्वास के बंधनों से बहुत ऊपर है। वे यह भी याद दिलाते हैं कि -

> "इस काल में मुगल सम्राटों का शासन था। कितने ही भक्तों के विषय में प्रसिद्ध हैं
>
> कि उन्हें सम्राट अकबर ने बुलाकर सम्मानित किया। सूरदास, कुंभन्दास, स्वामी हरिदास आदि के मधुर भाव से भावित भजनों ने सम्राट का हृदय हरण किया था। ... वृंदावन उन दिनों ऐसी ही मधुर भक्ति का केंद्र था। शायद ही संसार के किसी अन्य साहित्य में मनुष्य की भीतरी अनुराग-लालसा को इतनी महिमा से

> मंडित करके प्रकट किया गया हो। वृंदावन का भक्ति साहित्य सब प्रकार से अपूर्व है।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ.117)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आगे यह कहते हैं कि कृष्ण भक्ति साहित्य में जिस मधुर भाव पर सबसे अधिक ज़ोर दिया गया है उसमें 'विश्वजनीन तत्व' है। इसका अर्थ यह है कि धर्म, संप्रदाय और विश्वासों के बाहरी बंधन कृष्ण भक्ति के माधुर्य तत्व के आकर्षण को रोक नहीं सके है। यही कारण है कि -

> "उन दिनों अनेक मुस्लिम सहृदय इस मधुर भाव की भक्ति-साधना से आकृष्ट हुए थे। इन सब में प्रमुख हैं 'बादसा वंश की ठसक' छोड़ने वाले सुजान रसखानि। इस नाम के दो मुसलमान भक्त कवि बताए जाते हैं। एक तो सैयद इब्राहिम पिहानीवाले और दूसरे गोसाईं विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य सुजान रसखान। दूसरे अधिक प्रसिद्ध हैं। संभवतः ये पठान थे, इसीलिए अपने को 'बादसा वंश' का लिखा है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इनके आरंभिक यौवन-काल की कुत्सित प्रेम भावना का उल्लेख है।" (वही, पृ. 117)

'बादसा वंश की ठसक' छोड़ने के प्रसंग की व्याख्या करते हुए डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने यह रेखांकित किया है कि जिस गदर में दिल्ली श्मसान बन गई थी उसका संबंध मुगल सम्राट हुमायूँ द्वारा दिल्ली के सूरवंशीय पठान शासकों से अपनी खोई हुई सत्ता पुनः छीन लेने से है। इस अवसर पर भयंकर नरसंहार और विध्वंस हुआ था। ऐसे में कवि प्रकृति के कोमल हृदय रसखान द्वारा उस गदर के तांडव रूप को देखकर विरक्त हो जाना संभव है। इस गदर के समय रसखान युवावस्था में रहे होंगे।

रसखान के विषय में एक रोचक तथ्य 'मूलगुसाईं चरित' में प्राप्त होता है। वहाँ यह उल्लेख है कि गोस्वामी तुलसीदास ने स्वरचित 'रामचरितमानस' की कथा सर्वप्रथम रसखान को ही सुनाई थी - "जमुना तट पै त्रय वत्सर लौ, रसखानहिं जाई सुनावत भौ।" यह उल्लेख कितना प्रामाणिक है, इस बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तय है कि-

> "रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है। वस्तुतः वे 'भक्त' और 'कवि' से भी पहले एक सहृदय भावुक व्यक्ति हैं। उनका अंतर प्रेम ताप की उष्णता से विगलित होकर मानो विविध भाव सरणियों के रूप में उमड़ पड़ा है। उनकी इस ऐकांतिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को सचमुच 'रस की खान' बना दिया है। बादशाह वंश के जन्मजात मुसलमान रसखान ने स्वयं को राज्य लिप्सा जन्य द्वंद्व से मुक्त कर जिस श्रद्धा, प्रेम और भक्तिमय रस सागर में निमज्जित किया, उसीमें उनके वास्तविक काव्य व्यक्तित्व का मधुर रूप ढला। काव्य रचना उनका साध्य नहीं था और न ही उनकी वाणी का विलास यश-धन-प्राप्ति के निमित्त था।

उन्होंने तो अनंत अलौकिक रस के आगार श्रीकृष्ण के लीला गान के रसास्वादन में ही स्वयं को कृतकृत्य समझा।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 223)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रसखान एक कोमल हृदय वाले भावुक व्यक्ति थे। कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति गहन भावपूर्ण समर्पण से भरी हुई है। उन्होंने अपनी रचनाओं में कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, राधा-कृष्ण की रूप माधुरी, वंशी मोहिनी और कृष्ण लीला संबंधी अनेक सरस प्रसंगों का वर्णन किया है। वे राधा और कृष्ण को प्रेम रूपी उद्यान के मालिन और माली मानते हैं। इस रूपक के सहारे उन्होंने प्रेम तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया है। यही नहीं 'अष्टयाम' में उन्होंने सवेरे जागने से लेकर रात को सोने तक की भगवान कृष्ण की दिनचर्या और विभिन्न क्रीड़ाओं का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। उनके काव्य का प्रमुख रस शृंगार है और उनके आरध्या कृष्ण इस शृंगार के आलंबन। कृष्ण के रूप पर मुग्ध राधा और गोपिकाओं की भावनाओं के रूप में रसखान ने अपने ही मनोभावों की उदात्त अभिव्यंजना की है। इसके साथ ही कृष्ण के बाल रूप के प्रति वात्सल्यपूर्ण पद भी रसखान के काव्य में उपलब्ध होते हैं जो उनकी गहन भावानुभूति और भक्तिप्रवणता के प्रतीक है।

15.4 पाठ सार

रसखान ने अपने काव्य में कृष्ण के संयोग, वियोग, बाल-लीलाएं इत्यादि का चित्रण अत्यंत ही मनोहारी ढंग से किया है। रसखान ने अपने काव्य में कृष्ण भक्ति का ऐसा अविस्मरणीय चित्र प्रस्तुत किया है जो अद्वितीय है। उन्होंने अपने काव्य में कृष्ण के अनेक रूपों का चित्रण किया है। रसखान स्वयं कृष्ण में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ दिखता ही नहीं था। रसखान के काव्य में ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है। रसखान ने अपने काव्य के द्वारा विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के बीच समन्वय स्थापित किया। उनके मन में जितना सम्मान कृष्ण के प्रति था, उतना ही शिव एवं गंगा इत्यादि के प्रति था। रसखान की भाषा अत्यंत मधुर और सुगठित है। भक्ति काल में जहाँ कृष्ण काव्य गीतात्मक रूप में लिखा जा रहा था वहीं रसखान ने कृष्ण काव्य की रचना कवित्त-सवैया शैली में की और आगे के कवियों के लिये मार्ग प्रशस्त किया।

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. रसखान कृष्णभक्ति शाखा के कवि हैं।
2. रसखान का संबंध किसी विशेष संप्रदाय से नहीं है। इसीलिए उन्हें संप्रदाय-निरपेक्ष कवि कहा जाता है।

3. मुस्लिम रचनाकार के रूप में रसखान भारतीय संस्कृति की साझा विरासत के एक निर्माता हैं।
4. रसखान की कृष्णभक्ति एक निष्ठ और निस्वार्थ है।
5. रसखान ने हिंदी कृष्ण काव्य में कवित्त सवैया शैली का प्रवर्तन किया।

15.6 शब्द संपदा

1. अतिसय	=	आवश्यकता से अधिक
2. अविस्मरणीय	=	जो भूले जाने योग्य न हो
3. उन्मुक्त	=	आजाद
4. किवदंती	=	ऐसी बात जो लोग परंपरा से सुनते चले आ रहे हो
5. गदर	=	विद्रोह
6. निरूपण	=	विवेचन करना, अच्छी तरह समझाना
7. परमार्थ	=	वह परम तत्त्व जो नाम, रूप आदि से परे और सबसे बढ़कर वास्तविक माना गया है
8. ब्रह्मानंद	=	ब्रह्म ज्ञान से उत्पन्न आत्म तृप्ति

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रसखान का जीवन परिचय लिखिए।
2. रसखान की रचनाओं के बारे में विस्तार से लिखिए।
3. रसखान की कृष्ण भक्ति का विवेचन कीजिए।
4. रसखान के सांप्रदायिक सद्भाव को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रसखान के प्रेम वर्णन की विशेषता बताइए।
2. रसखान की भाषा-शैली पर चर्चा कीजिए।
3. हिंदी साहित्य में रसखान का स्थान निर्धारित कीजिए।
4. पठान वंश से संबंधित होने के बावजूद रसखान कृष्ण की भक्ति में इतने लीन कैसे हो सके?

5. रसखान के भाषा प्रवाह पर चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. रसखान का मूल नाम क्या था? ( )

   क. सैयद हुसेन ख. सैयद इब्राहीम

   ग. सैयद इसरार घ. सैयद अल्ताफ

2. रसखान किस धारा के कवि हैं? ( )

   क. रामभक्ति ख. कृष्णभक्ति

   ग. रीतिसिद्ध घ. रीतिबद्ध

3. रसखान ने मुख्यतः किस भाषा में रचना की? ( )

   क. अवधि ख. ब्रज

   ग. राजस्थानी घ. खड़ी बोली

4. रसखान ने कृष्ण के अलावा और किसकी स्तुति की है? ( )

   क. कर्तिकेय ख. साईबाबा

   ग. शंकर घ. हनुमान

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. रसखान .... काल के कवि थे।
2. देखि गदर हिट साहिबी, ... नगर मसान।
3. मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के .... ।
4. खोलि री ...., खौलौं कहा, वह मूरति नैनन मांझ बसी है।

III सुमेल कीजिए।

i) रसखान का जन्म (क) 1628 ई.

ii) रसखान की मृत्यु (ख) 1613 ई.

iii) दिल्ली में गदर (ग) 1533 ई.

15.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र.
3. रसखान और उनका काव्य, चंद्रशेखर पांडे.
4. रसखान काव्य तथा भक्ति भावना, माजदा असद.
5. हिंदी और उर्दू की साझी विरासत, सं. करन सिंह ऊटवाल.

इकाई 16 : भक्ति भावना

रुपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मलू पाठ : भक्ति भावना
   (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
   (ख) अध्येय कविता
   (ग) विस्तृत व्याख्या
   (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
16.4 पाठ सार
16.5 पाठ की उपलब्धियाँ
16.6 शब्द सपंदा
16.7 परीक्षार्थ प्रश्न
16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! कवि रसखान रीतिकालीन काव्य धारा में रीतिमुक्त काव्य के प्रतिनिधि कवियों में से एक हैं। कहा जाता है कि रसखान ने भागवत् का अनुवाद फारसी में किया। इस दौरान कृष्ण-भक्ति ने उन्हें ऐसा मुग्ध कर दिया कि गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली और ब्रजभूमि में जा बसे। सुजान रसखान और प्रेमवाटिका उनकी उपलब्ध कृतियाँ हैं। रसखान रचनावली के नाम से उनकी रचनाओं का संग्रह प्राप्त होता है।

रीतिकालीन कवियों में कृष्ण भक्त कवि रसखान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इनके काव्य में भक्ति और शृंगार रस दोनों मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और वे सगुण और निर्गुण निराकार रूप दोनों के प्रति श्रद्धावनत हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीलाएँ करते हैं, जो कृष्ण लीला में प्रचलित रही हैं। यथा - बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला। प्रेम प्रसंग, शृंगार को लेकर भी उनके द्वारा रचित पंक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप कृष्ण भक्त परंपरा में रीतिकालीन कवि रसखान की प्रतिनिधि कविता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप –

- कृष्णभक्त कवि रसखान की कविता के जरिए उनके साहित्य से भी परिचित हो सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा में मौजूद लोक-जीवन को समझ सकेंगे।

- रसखान की कविता 'भक्ति भावना' की व्याख्या कर सकेंगे।
- रसखान की इन पंक्तियों के माध्यम से कृष्ण भक्ति के साथ-साथ भक्ति में विद्यमान सगुण-निर्गुण द्वंद को भी पहचान सकेंगे।

16.3 मूल पाठ : भक्ति भावना

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

रसखान प्रेममार्गी रीतिमुक्त कवि थे। उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को अपने इष्ट कृष्ण की ओर उन्मुख कर दिया था। कोई शास्त्रज्ञ या ज्ञानी न होकर उन्होंने कृष्ण के एक सामान्य भक्त की तरह कविता लिखी। प्रेमी कवि की प्रेम-प्रधान रचना में तत्वज्ञान-प्रधान भक्ति का निरूपण संभव नहीं हो सकता - यह रसखान के यहाँ भी पाया जाता है। दास्य और सख्य के प्रति भी उन्होंने कोई रुचि नहीं दिखलाई। दास्य में प्रेमी भक्त और प्रेमपात्र भगवान के बीच दूरी बनी रहती है। सख्य में भी उतनी तन्मयता नहीं आ पाती जितनी की माधुर्य में हो सकती है। प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण के प्रति रसखान के भक्तिभाव की हृदयहारिणी अभिव्यक्ति हुई है।

(ख) अध्येय कविता

- मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
  जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
  पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर कारन।
  जो खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

- या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
  आठहुँ सिद्धि, नवों निधि को सुख, नंद की धेनु चराय बिसारौं॥
  रसखान कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
  कोटिक हू कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

- सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
  जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
  नारद से सुक व्यास रटें, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
  ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

निर्देश : इस कविता का सस्वर वाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

[1]

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

शब्दार्थ : धेनु = गाय। पाहन = पत्थर। गिरि = पहाड़। पुरंदर = इंद्र। खग = पक्षी। कालिंदी कूल = यमुना तट।

संदर्भ : रीतिमुक्त कवि रसखान प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कृष्ण भक्ति परंपरा का परिचय देते हैं। इन पंक्तियों में रसखान कृष्ण प्रेम में ऐसे डूबे हैं कि वह जगत की इच्छाओं, आकाँक्षाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भी कृष्ण को ही देखते हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिकालीन कृष्ण भक्त कवि रसखान द्वारा रचित हैं। इन पंक्तियों के माध्यम से अपने इष्ट के प्रति अनुराग की जो आकांक्षा है उसको प्रकट किया गया है। इसके साथ ही लोक जीवन में जो अनुरक्ति है उसको भी दर्शाया गया है।

व्याख्या : कृष्णभक्ति के सम्मुख संसार का समस्त ऐश्वर्य तथा सुख उनकी दृष्टि में तुच्छ है। भोग, जप, ताप, तीर्थ आदि को वह कृष्ण भक्ति के सामने व्यर्थ समझते थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन सभी सांसारिक अपेक्षाओं के बजाए वह अपने प्रभु के प्रेम को ही जीवन का अमूल्य वस्तु समझता है। अपने इष्ट के प्रति निःस्वार्थ प्रेम ही उसके जीवन का केंद्रीय लक्ष्य है।

रसखान की कृष्ण भक्ति उनके प्रेम निरूपण के अनुकूल हुई है। वे कृष्ण के अनन्य भक्त हैं और उनको विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार करते हैं। कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति सखा भाव की है और उनकी भक्ति का आधार है रूपासक्ति। कृष्ण के अलौकिक सौंदर्य ने ही उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया है। कृष्ण प्रेम की वजह से ही उन्होंने ब्रजभूमि, गोप और ग्वाल ही नहीं बल्कि ब्रज की प्रत्येक कण-कण से लगाव को अभिव्यक्त किया है।

रसखान का अपने आराध्य के प्रति इतना गंभीर लगाव है कि वे प्रत्येक स्थिति में उनका सान्निध्य चाहते हैं। चाहे इसके लिए इन्हें कुछ भी सहना क्यों न पड़े। इसीलिए वे कहते हैं कि आगामी जन्मों में मुझे फिर मनुष्य की योनि मिले तो मुझे गोकुल गाँव के ग्वालों के बीच रहने का ही सुयोग मिले। यदि मनुष्य बनूँ तो गोकुल गाँव के ग्वालों के बीच रहूँ, यदि पशु बनूँ तो नंद की गायों के बीच रहकर घास चरूँ, पत्थर बनू तो उसी पहाड़ पर जिसे इंद्र के कोप से बचने के लिए कृष्ण ने छाते की तरह उठा लिया था और पक्षी बनूँ तो कालिंदी (यमुना) के किनारे कदंब

की डालों पर बसेरा करूँ। अगर पशु योनि मिले तो मुझे ब्रज में ही रखना प्रभु ताकि मैं नंद की गायों के साथ विचरण कर सकूँ। अगर पत्थर भी बनूँ तो भी उस पर्वत का बनूँ जिसे हरि ने अपनी तर्जनी पर उठाकर ब्रज को इंद्र के प्रकोप से बचाया था। पक्षी बना तो यमुना किनारे कदंब की डालों से अच्छी जगह तो कोई हो ही नहीं सकती बसेरा करने के लिए।

विशेष: अपने आराध्य के प्रति रसखान का लगाव इतना है कि सभी जन्मों और योनियों में वे उनके समीप ही रहना चाहते हैं।

बोध प्रश्न

1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि किसकी आराधना कर रहा है?
2. गोकुल के गाँव-ग्वारन के साथ कवि क्यों रहना चाहता है?

[2]

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि, नवों निधि को सुख, नंद की धेनु चराय बिसारौं॥
रसखान कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

शब्दार्थ : लकुटी = लाठी। कामरिया =छोटा कंबल। तिहूँ पुर = तीन लोक (पृथ्वी, आकाश, पाताल)। तड़ाग = तालाब। कोटिक = करोड़। कलधौत = चांदी। करील = कीकर।

संदर्भ : कवि रसखान प्रस्तुत सवैये के माध्यम से कृष्ण भक्ति में त्याग की भावना को प्रदर्शित करते हैं। वह कहते हैं की अपने इष्ट कृष्ण के लिए वह संपूर्ण भौतिक संसाधनों का भी त्याग कर सकते हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कृष्ण काव्य परंपरा के अप्रतिम कवि रसखान द्वारा रचित है। इन पंक्तियों में कवि कृष्ण भक्ति के अनूठे रंग को प्रदर्शित कर रहा है। वह कह रहा है कि कृष्ण भक्ति के लिए वह सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है।

व्याख्या : रसखान अपने कृष्ण प्रेम में भौतिक साधनों-संसाधनों को त्याग कर अपनी सार्थकता को जाहिर करते हैं। यही नहीं रसखान अपने शारीरिक उपस्थिति को भी कृष्ण प्रेम में त्यागने की बात करते हैं। यही कारण है कि रसखान वाणी की सार्थकता कृष्ण भक्ति में लीन होने की बात को बारम्बार करते रहते हैं। रसखान के लिए वाणी की सार्थकता जाप में, हाथों की कुंज-कुटीर की सफाई में, पाँवों की सार्थकता कृष्ण स्थान जाने में, कानों की सार्थकता कृष्ण गान सुनने में ही हैं।

ग्वालों की लाठी और कंबल के लिए तीनों लोकों का राज भी त्यागना पड़े तो कवि उसके लिए तैयार हैं। नंद की गाय चराने का मौका मिल जाए तो आठों सिद्धि और नवों निधि के सुख वे भुला देंगे। अपनी आँखों से ब्रज के वन-उपवन और तालाब को जीवन भर निहारते रहना चाहते हैं। यहाँ तक कि ब्रज की काँटेदार झाड़ियों के लिए भी वे सौ महलों को भी न्यौछावर कर देंगे। रसखान कृष्ण की लकुटी और कंबल पर तीन लोकों के राज्य न्यौछावर करना चाहते हैं। कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को साकार मानकर उसकी लीलाओं का गान किया हैं किंतु वे उसके परमब्रह्म को भूल नहीं पाए हैं।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण के सौंदर्य-पक्ष की ही प्रधानता रही। उनके माधुर्य पक्ष को कवि ने अभिव्यक्त किया है।

बोध प्रश्न

3. 'आठहूँ सिद्धि नवों निधि के सुख' को प्राप्त करने का क्या अर्थ है?

4. रसखान अपने आँखों से जीवन भर किसे निहारना चाहते हैं?

[3]

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटें, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

शब्दार्थ : सेस = शेषनाग। गनेस = गणेश। महेस = शिव। दिनेस = सूर्य। सुरेस = इंद्र। अहीर की छोहरियाँ = गोप कन्याएँ। छछिया = थोड़ा सा।

संदर्भ : रसखान इस सवैये के माध्यम से सगुण-निर्गुण के द्वंद को सामने लाने की कोशिश करते हैं।

प्रसंग : कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को साकार मानकर उनकी लीलाओं का गान किया है किंतु वे उनके परम-ब्रह्मत्व को भूल नहीं पाए। यह निर्गुण परब्रह्म सबके लिए दुर्लभ हैं किंतु भाव के अधीन होकर गोपियों के छाछ के लिए अनुनय-विनय करते हैं।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कृष्णभक्त कवि रसखान ने सगुण-निर्गुण के स्वरूप को सामने लाने की कोशिश की हैं। इस कोशिश में उन्होंने राधा के प्रेम स्वरूप के जरिए उस प्रेम के लिए विवश कृष्ण के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है।

उपरोक्त पंक्तियों में रसखान ने भक्ति भाव के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस निराकर ब्रह्म को पुराणों में ढूँढने का प्रयास किया, उसके लिए वेदों को बड़े चाव से सुना किंतु कोई भी उसके स्वरूप तथा स्वभाव के बारे में बता नहीं पाए लेकिन उसी को कुंज कुटीर में राधिका के साथ विहार करते हुए देखा।

निर्गुण और सगुण, ज्ञान और प्रेम का ऐसा संगम कहीं और देखने को नहीं मिलेगा। जिनकी महिमा शेषनाग, गणेश, महेश, सूर्य और इंद्र लगातार गाते रहते हैं; वेदों ने जिन्हें अनादि, अनंत, अखंड, अछेद और अभेद बताया है; नारद, शुकदेव और व्यास ने जिन्हें पहचान कर संसार को पार कर लिया; उसी भगवान कृष्ण को अहीर की छोरियाँ (लड़कियाँ) कटोरे भर छाछ पर नचाती हैं। इस पद में कृष्ण भक्त कवि रसखान ने भक्ति भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस निराकार ब्रह्म को पुराणों में ढूँढने का प्रयास किया, वेदों को बड़े चाव से सुना किंतु कोई भी उसके स्वरूप तथा स्वभाव के बारे में बता नहीं पाए, उसी को कुंज-कुटीर में राधिका के साथ विहार करते हुए देखा। राधा प्रेम का स्वरूप होने के कारण उस प्रेम के लिए विवश कृष्ण के स्वरूप पर कवि ने प्रकाश डाला है।

विशेष : निगुर्ण और सगुण, ज्ञान और प्रेम का ऐसा संगम कहीं और देखने को नहीं मिलेगा। रसखान कृष्ण भक्ति के माध्यम से इस अभिव्यक्ति को सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं।

बोध प्रश्न

5. किस भेद को कवि मिटाना चाहता है?

6. लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति में कवि किसकी भक्ति करना चाहता है?

काव्यगत विशेषताएँ

हिंदी के कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में रसखान अपने कवित्व के कारण एक अलग छवि को गढ़ते नजर आते हैं। 1700 से 1900 ई. तक हिंदी साहित्य में रीतिकालीन काव्यधारा निर्बाध ढंग से चलती रही। रीतिकालीन कविता में रीतिमुक्त कवि न तो किसी काव्यशास्त्रीय नियम से बंधे रहें न तो किसी खास परंपरा से संचालित होते रहें। रीतिमुक्त काव्यधारा में घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर और रसखान प्रमुख कवि रहें।

रसखान सहित रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि मूलतः भावावेश के कवि हैं। इनके मन में जो भाव स्फुरित हुआ, उसे उन्होंने अत्यंत सबल एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट किया। रसखान ऐसे कवि हैं जिन्होंने शृंगार से आप्लावित रीतिकाव्य को कृष्ण भक्ति के सुगंध से सुगंधित कर दिया। भक्ति मूलतः एक मानसिक प्रवृत्ति है जो हमारे जीवन के भाव जगत की संपत्ति है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति माना है। भक्ति

जाति-पाँति, धर्म, संप्रदाय, लैंगिक भेदभाव से परे जाकर पुष्पित और विकसित होती है। पुज्येषु अनुरागः भक्ति कहा गया है, अपने पूज्य के प्रति दृढ़ अनुराग ही भक्ति है।

रसखान के पूज्य कृष्ण हैं, कृष्ण नितांत अद्‌भुत और वैविध्यपूर्ण चरित्र के स्वामी और लीलापुरुषोत्तम हैं। प्रेम के विविध रंगों, रसों को अपनी लीलाओं के जरिए वह उद्घाटित करते रहते हैं। कवि रसखान के लिए कृष्ण का रूप कोमल तथा मनोहारी हैं। रसखान की विशेषता यह है कि वे माधुर्य रस से ओतप्रोत अपनी वाणी के माध्यम से लोकरंजनकारी आनंद रस के सागर कृष्ण के लीलागान से रसिक जनों को भाव विभोर कर देते हैं। रसखान की रचनाओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि वे मुक्तक रचनाओं के कवि हैं।

वस्तुत: कृष्ण-भक्त कवियों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने प्रबंध रचना में रुचि नहीं दिखाई। इसका मूल कारण यह था कि उनकी दृष्टि कृष्ण की सौंदर्य मूर्ति पर ही केंद्रित थी, शक्ति और शील पर नहीं। रसखान स्वभाव से ही सौंदर्योपासक और प्रेमी जीव थे। अत: उनमें भी इस प्रवृत्ति का पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक था। अपने प्रेम विह्वल चित्र के भावों की प्रवाहमयी और प्रेमोत्पादक व्यंजना के लिए मुक्तक का माध्यम ही अधिक उपयुक्त था।

रसखान ने अपनी स्वानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक के इस माध्यम का असाधारण सफलता के साथ प्रयोग किया है। मुक्तक के लिए प्रौढ़, प्रांजल तथा समासयुक्त भाषा आवश्यक है। मुक्तक के छोटे से कलेवर में भावों का सागर भरने के लिए इस प्रकार की भाषा को उत्तम कहा गया है। रसखान की भाषा मृदुल, मंजुल, और गति पूर्ण होते हुए भी बोझिल नहीं है। उसमें व्यक्त एक-एक चित्र अमर है। सानुप्रास शब्दों से भाषा की गतिपूर्ण लय में आंतरिक संगीत ध्वनित होता है। आवेग की तीव्रता के द्वारा कोमल प्रभाव की अभिव्यंजना होती है। साधारण मुक्तक काव्य की गीतात्मकता में हृदय को झंकृत कर देने की शक्ति है।

रसखान के मुक्तकों की सबसे बड़ी विशेषता है, भाव एवं अभिव्यंजना की एकतानता, जो उन्हें गीति काव्य के निकट ला देती है। इस प्रकार रसखान ने भक्ति काल की पद परंपरा से हटकर सवैया छंद को अपनाया।

बोध प्रश्न

7. रसखान के काव्य की विशेषताएँ बताइए।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

सैयद इब्राहिम रसखान हिंदी साहित्य में भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके परिचय को लेकर हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में भी उनके बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है।

गार्सां द तासी के इतिहास-ग्रंथ में तो उनका कोई खास जिक्र नहीं मिलता। शिवसिंह सेंगर लिखित 'शिवसिंह सरोज' (1878 ई.) में उन्हें 'पिहानी वाले' बताया गया है और यह विवरण दिया गया है कि 'ये कवि मुसलमान थे। जो आगे चलकर वृंदावन में जा यह कृष्ण चंद्र की भक्ति भाव में ऐसे डूबे कि फिर वह माला कंठी धारण किए हुए वृंदावन की भक्ति-संस्कृति में मिल गए। इनकी कविता निपट ललित माधुर्यता से भरी हुई है। इतना तो स्पष्ट है कि मध्यकालीन भारतीय समाज और संस्कृति में व्यापक तौर पर हिंदुओं और मुसलमानों में मिश्रण हुआ था। निश्चय ही हिंदुओं और मुसलमानों के जीवन जीने के तरीके, खान-पान, मान्यताएँ और विश्वास अलग-अलग रहे होंगे पर जीवन की आवश्यकताओं ने उन्हें एक-दूसरे के बेहद नजदीक भी ला दिया था। इसलिए आगे चलकर जीवन जीने के तरीके, खान-पान, मान्यताएँ और विश्वास और यहाँ तक कि भाषा में भी व्यापक मेल-जोल दिखाई देता है। पर यह सवाल तो है ही कि रसखान कृष्ण-भक्ति की ओर कैसे आकृष्ट हुए?

रसखान को लेकर किंवदंतियों और जनश्रुतियों से जुड़ी यह बात भी सामने आती है कि रसखान फारसी में श्रीमद्भागवत, पुराण का अनुवाद पढ़ा करते थे। पर हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि मध्यकालीन धार्मिक विविधता को केवल हिंदू-मुसलमान के खाँचे में रखकर नहीं समझा जा सकता है और इतने सीमित संदर्भों में समझना भी उचित नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब वे भक्त हैं और उनकी रचना भक्ति प्रधान है तो उसका कोई दर्शन भी अवश्य होगा। जहाँ आलोचक की जानकारी के लिए नियमों की शृंखला में कोई वस्तु नहीं बंधती, वहाँ उसे स्वच्छंद कह दिया जाता है। पर वास्तव में देखे तो रसखान के संदर्भ में ऐसी बात नहीं उद्‌धृत होती। प्रत्येक कार्य का मूल कारण अवश्य रहता है।

रसखान एक प्रेममार्गी भक्त थे। लौकिक पक्ष में इनका विरह फ़ारसी काव्य की वंदना से प्रभावित है, अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेमपीर से। आगे कहते हैं, स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की पीर सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) में रसखान पर गहराई-से विचार किया गया है। उन्होंने रसखान की कविता की लोकप्रियता और उसकी भाषा की विशेषताओं को सामने रखा है जिसे जानना बेहद जरूरी है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में वे लिखते हैं कि 'प्रेम के ऐसे सुंदर उद्गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृंगार संबंधी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे - जैसे 'कोई रसखान सुनाओ।' इनकी भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडंबरमुक्त होती थी जिससे कवित्त सवैयों को लोकप्रियता हासिल होती चली गई। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफ़ाई इनकी और घनानंद की रचनाओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।' आचार्य शुक्ल का रसखान की भाषा को 'शुद्ध' कहना अपने-आप में

काफ़ी महत्वपूर्ण है क्योंकि अपने 'इतिहास' में वे बहुत कम कवियों की भाषा को शुद्ध मानते हैं। रसखान के अलावा आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन कवि घनानंद की ब्रजभाषा को शुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी कहा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में रसखान को किस तरह से देखा गया है। रसखान की रचनाओं का सबसे पहला संग्रह उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी ने किया। बाद में प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, बाबू अमीर सिंह और पं.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने क्रमशः 'रसखान-पदावली', 'रसखान और घनानंद' और 'रसखानि ग्रंथावली' नामक संग्रहों में रसखान की रचनाओं का संकलन किया। इन संग्रहों में रसखान की तीन रचनाएँ रखी गई हैं। इन तीनों रचनाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'सुजान-रसखान' है। इसके अतिरिक्त 'प्रेम-वाटिका' और 'दान-लीला' रचनाएँ भी हैं। 'सुजान-रसखान' में प्रमुखतः सवैये और कबित्त संकलित हैं। हालाँकि, इसमें अल्प मात्रा में दोहे और सोरठे भी हैं। 'दान-लीला' में भी सवैये और कबित्त संकलित हैं। 'प्रेम-वाटिका' में दोहे हैं।

रसखान के यहाँ कृष्ण के लिए भक्ति दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है। एक रूप तो वह है, जहाँ सीधे-सीधे कृष्ण के प्रति रसखान की अनन्य भक्ति सामने आती है। दूसरी स्थिति में यह भक्ति गोपियों की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती है। रसखान की कृष्ण के प्रति जो अनन्यता है, उसे भक्ति का शास्त्रीय वर्गीकरण करने वाले विद्वानों ने 'सायुज्य' भक्ति कहा है। रसखान का निम्नांकित सवैया कृष्ण के प्रति उनकी अनन्यता को प्रकट करता हैः

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं निलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

इस सवैये में हर स्थिति में रसखान वह होना चाहते हैं जिससे उनका जुड़ाव कृष्ण से बना रहे। इसके साथ-साथ यहाँ यह बात भी लक्ष्य की जा सकती है कि पुनर्जन्म की पुख़्ता अवधारणा जिस प्रकार हिंदू धर्म में है, उस तरह से इस्लाम में नहीं। फिर भी इसे मानकर रसखान अपनी इच्छा व्यक्त कर रहे हैं। अपनी धार्मिक पहचान के समानांतर दूसरे की धार्मिक मान्यताओं को आत्मासात करके रचना करना, यह भक्ति की उदार भावना के कारण संभव हुआ है। उनके लिए कृष्ण का साथ महत्वपूर्ण है चाहे वह गोकुल गाँव के ग्वालों के रूप में हो या नंद की गायों के रूप में या गोवर्धन पर्वत के पत्थर के रूप में या यमुना किनारे कदंब के पेड़ों पर रहने वाले पक्षियों के रूप में। भक्ति की यह अनन्यता और समर्पित भावना दुर्लभ है।

रसखान के कृष्ण की यह विशेषता है कि वे एक ही साथ सगुण भी हैं और निर्गुण भी। उनकी लीलाओं के वर्णन में रसखान उनके 'लीलाधर' रूप से भी वाकिफ़ हैं और उनके परब्रह्म रूप से भी। यों तो सूरदास के कृष्ण भी दोनों हैं पर रसखान की विलक्षणता इस बात में है कि उनके कृष्ण एक ही साथ दोनों रूपों में सामने आते हैं। यहाँ उनके निर्गुण रूप के बखान के लिए किसी संदेशवाहक की ज़रूरत नहीं है।

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

इस अतिप्रसिद्ध सवैये की कई विशेषताएँ हैं। कविता के धरातल पर भी और विचार के स्तर पर भी। पहली पंक्ति में 'स' वर्ण की आवृत्ति, दूसरी पंक्ति में 'अ' की आवृत्ति, तीसरी में 'प' की आवृत्ति और चौथी पंक्ति में 'छ' वर्ण की आवृत्ति हुई है। इस कारण इसमें विशेष प्रकार की संगीतात्मकता आ गई है जिसके कारण यह आसानी-से ज़ुबान पर चढ़ जाता है। यह तो हुई कविता के धरातल पर बात! विचार के स्तर पर यह एक रचनात्मक वैभव ही है जो निर्गुण है, जिसको बड़े-बड़े देवता भी भजते हैं, जिसे वेद अनादि, अनंत और अखंड बताते हैं, श्रेष्ठ भक्त भी उसके स्वरूप का पूरी तरह पता नहीं लगा पाते, वह परब्रह्म यानी परम सत्ता एक तथाकथित छोटी-सी चीज़ 'छछिया भर छाछ' पर साधारण गोपियों, जो न तो कृष्ण को भजती हैं, न उन्हें अनादि, अनंत और अखंड मानती हैं और न ही कृष्ण के स्वरूप को लेकर किसी खोज में लगती हैं, के द्वारा नचाया जाता है। रसखान की कविता भक्ति का प्रेम में रूपांतरण की प्रक्रिया का श्रेष्ठ रचनात्मक उदाहरण है।

रसखान के काव्य के आधार उनके इष्ट कृष्ण हैं। रसखान ने उनकी ही लीलाओं का गान किया है। उनके पूरे काव्य-रचना में कृष्ण की भक्ति की गई है। इससे भी आगे बढ़ते हुए रसखान ने सूफिज्म (तसव्वुफ) को भी कृष्ण के माध्यम से ही प्रकट किया है। इससे यह कहा जा सकता है कि वे सामाजिक एवं आपसी सौहार्द के कितने हिमायती थे।

रसखान अपनी काव्य समझ से केवल भक्ति की पंक्तियाँ कहते हुए नहीं दिखाई पड़ते हैं बल्कि उन्होंने अपने कवित्त सवैयों और कृष्ण भक्ति को एक आधार बनाकर जीवन के अनुभवों का भी वर्णन किया है। यही कारण है कि उनकी काव्य रचनाओं में कविता की कोई निश्चित धारा केंद्रीय रूप से नहीं मिलती। रसखान ने पूर्व के कृष्ण भक्त कवियों की गीति और रीति दोनों का ही त्याग कर दिया। इसी से उन्हें स्वच्छंद मार्गी प्रेमोन्मत्त गायक ही कहा जा सकता है, भक्त नहीं। यद्यपि विद्वानों का विवेचन इस संबंध में अत्यंत तर्कपूर्ण है, फिर भी कुछ विचारणीय

विषय रह जाता है। जैसे कि स्थान-स्थान पर यह कहा जाता है कि यदि कोई इन्हें भक्ति विषयक रचना के कारण भक्त कहता है तो कहे, स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त कहा जाय तो कोई बाधा नहीं। इन बातों से यह स्पष्ट है कि इनकी कविता को भक्ति का विषय मानते हैं और अगर कोई इन्हें भक्त कवि कहे तो उसमें कोई आपत्ति भी नहीं मानते। यहाँ तक कि जब उन्हें भक्तों की श्रेणी से खारिज करने की बात आती है तो ज़ोरदार शब्दों में यह भी कहते हैं कि इन्हें भक्तों की श्रेणी से खारिज करने की आवश्यकता नहीं। इन दो तथ्यों को प्राय: सभी ने पूर्णरूपेण स्वीकार भी किया है।

प्रेम तथा भक्ति के क्षेत्र में भी रसखान ने प्रेम का विषद और व्यापक चित्रण किया है। 'राधा और कृष्ण प्रेम वाटिका' के मासी मासिन हैं। प्रेम का मार्ग कमल तंतु के समान नाजुक और तलवार की धार के समान कठिन है। अत्यंत सीधा भी है और टेढ़ा भी है। बिना प्रेमानुभूति के आनंद का अनुभव नहीं होता। बिना प्रेम का बीज हृदय में नहीं उपजता। ज्ञान, कर्म, उपासना सब अहंकार के मूल हैं। बिना प्रेम के दृढ़ निश्चय नहीं होता। रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम आदर्शों से अनुप्रेरित है।

रसखान ने प्रेम का स्पष्ट रूप में चित्रण किया है। प्रेम की परिभाषा, पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्रति के साधन एवं प्रेम की पराकाष्ठा प्रेम वाटिका में दिखाई पड़ती है। रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम लौकिक प्रेम से बहुत ऊँचा है। रसखान ने 52 दोहों में प्रेम का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह पूर्णतया मौलिक है। कवि ने कहीं चमत्कार लाने के लिए अलंकारों को बरबस ठूँसने की चेष्टा नहीं की है। भाव और रस के प्रवाह पर भी उसकी दृष्टि केंद्रित रही है। भावों और रसों की अभिव्यक्ति को उत्कृष्ट बनाने के लिए ही अलंकारों की योजना की गई है। उचित स्थान पर अलंकारों का ग्रहण किया गया है। उन्हें दूर तक खींचने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया गया है। औचित्य के अनुसार ठीक स्थान पर उनका त्याग कर दिया गया है। रसखान द्वारा प्रयुक्त अलंकार अपने 'अलंकार' नाम को सार्थक करते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक की निबंधना में कवि ने विशेष रुचि दिखाई है। बड़ी कुशलता के साथ उनका सन्निवेश किया है, उन्हें इस विधान में पूर्ण सफलता मिली है। अलंकारों की सुंदर योजना से उनकी कविता का कला-पक्ष निस्संदेह निखर आया है।

रसखान के काव्य में भावपक्ष के अंतर्गत आलंबन-निरूपण, नायिका-भेद, संचारी भाव, उद्दीपन विभाव आदि का वर्णन है। रसखान को 'रस की ख़ान' कहा जाता है। इनके काव्य में भक्ति, शृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और प्रभु के सगुण और निर्गुण निराकार रूप के प्रति श्रद्धालु हैं। रसखान ने भक्तिरस के अनेक पद लिखे हैं, तथापि उनके काव्यों में भक्तिरस की प्रधानता नहीं है। वे प्रमुख रूप से शृंगार के कवि हैं। उनका शृंगार कृष्ण

की लीलाओं पर आश्रित है। अतएव सामान्य पाठक को यह भ्रांति हो सकती है कि उनके अधिकांश पद भक्ति रस की अभिव्यक्ति करते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से जिन पदों के द्वारा पाठक के मन में स्थित ईश्वर विषयक-रतिभाव रसता नहीं प्राप्त करता, उन पदों को भक्ति रस व्यंजक मानना तर्क संगत नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि रसखान भक्त थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में भजनीय कृष्ण का सरस रूप से निरूपण किया है।

रसखान के काव्य में छह स्थायी भावों का समावेश है - रति, निर्वेद, उत्साह, हास, वात्सल्य और भक्ति। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने परंपरागत चार स्थायी भावों को ही गौरव दिया है, जिनमें अन्यतम भाव रति का है। क्रोध, जुगुप्सा, विस्मय, शोक और भय की उपेक्षा का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि इन भावों का रति से मेल नहीं है। रसखान प्रेमी जीव थे, अतएव उन्होंने अपनी कविता में तीन प्रकार के रति भावों - रति, वात्सल्य और भक्ति - की व्यंजना की; जो भाव इनमें विशेष सहायक हो सकते थे उन्हें यथास्थान अभिव्यक्ति किया। दूसरा कारण यह भी है कि उनकी रचना मुक्तक है; अतएव प्रबंध काव्य की भाँति उसमें सभी प्रकार के भावों का सन्निवेश आवश्यक भी नहीं है।

सोलहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा साहित्यिक रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। भक्त-कवि सूरदास इसे सार्वदेशिक काव्य भाषा बना चुके थे। किंतु उनकी शक्ति भाषा सौष्ठव की अपेक्षा भाव द्योतन में अधिक रमी। इसीलिए बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ब्रजभाषा का व्याकरण बनाते समय रसखान, बिहारी लाल और घनानंद के काव्याध्ययन को सूरदास से अधिक महत्व देते हैं। बिहारी की व्यवस्था कुछ कड़ी तथा भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक है। घनानंद में भाषा-सौंदर्य उनकी 'लक्षणा' के कारण माना जाता है जबकि रसखान की भाषा की विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। उन्होंने ब्रजभाषा के साथ खिलवाड़ न कर उसके मधुर, सहज एवं स्वाभाविक रूप को अपनाया। साथ ही बोलचाल के शब्दों को साहित्यिक शब्दावली के विकट लाने का सफल प्रयास किया।

बोध प्रश्न

8. रसखान को स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त क्यों कहा जाता है?

16.3 पाठ सार

रसखान कृष्ण भक्त कवि थे। उनका जन्म पिहानी में हुआ था। हिंदी के कृष्ण भक्त तथा रीतिमुक्त कवियों में रसखान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे विट्ठलनाथ के शिष्य थे एवं बल्लभ संप्रदाय के सदस्य। रसखान को 'रस की खान' कहा गया है। इनके काव्य में शृंगार, भक्ति दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और उनके सगुण और निर्गुण निराकार रूप

दोनों के प्रति श्रद्धावनत हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीलाएँ करते हैं, जो कृष्ण लीला में प्रचलित रही हैं। रसखान के अनुसार भक्ति या प्रेम इन सबमें श्रेष्ठ है। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। कर्म आदि में अहंकार बना रह सकता है या उसका फिर से उदय हो सकता है। परंतु भक्ति-दशा में चित्त के द्रुत हो जाने पर अहंकार के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। भक्ति रागात्मक वृत्ति है, संकल्प-विकल्पात्मक, मन स्वभावत: रागात्मक है। वह इंद्रियों के माध्यम से विषयों की ओर प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार जीवों को वासना के बंधन में बाँधे रहता है। ईश्वर-विषयक प्रेम का उदय होने पर काम, क्रोध आदि अपने आप तिरोहित हो जाते हैं। रसखान अपनी रचनाओं के जरिए इस विचार को स्थापित करने का कार्य करते है।

16.4 पाठ की उपलब्धियाँ

1. सैयद इब्राहिम रसखान हिंदी साहित्य में भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।
2. रसखान विट्ठलनाथ के शिष्य थे एवं बल्लभ संप्रदाय के सदस्य थे। रसखान को 'रस की खान' कहा गया है।
3. रसखान के यहाँ कृष्ण के लिए भक्ति दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है। एक रूप तो वह है, जहाँ सीधे-सीधे कृष्ण के प्रति रसखान की अनन्य भक्ति सामने आती है। दूसरी स्थिति में यह भक्ति गोपियों की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती है।
4. रसखान के यहाँ स्वछंदता की प्रवृत्ति भरपूर है। इसलिए उनकी प्रेम-भावना में व्याकुलता और भावाकुलता दोनों हैं।

16.5 शब्द संपदा

1. करील	= कांटेदार झाडियाँ
2. कालिंदी	= यमुना
3. खग	= पक्षी
4. छछिया	= कटोरा
5. छोहरियाँ	= लड़कियाँ
7. मंझारन	= विचरण

16.6 परिक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में लिखिए

1. रसखान की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

2. कवि रसखान का कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा में स्थान निर्धारण कीजिए।
3. सेस महेस ..... शीर्षक सवैया का भावार्थ स्पष्ट कीजिए।
4. रसखान के पद में आई 'पुरंदर' विषयक अंतर्कथा का विवरण दीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में लिखिए

1. पठित पंक्तियों के आधार पर रसखान के सगुण-निर्गुण संबंधी द्वंद पर प्रकाश डालिए।
2. 'मानुस हौं तो वही रसखान .... चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥' इन पंक्तियों की व्याख्या कीजिए।
3. ब्रह्म तत्व की दुर्बोधता के बारे में रसखान ने क्या कहा है?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. रसखान का मूल नाम क्या है? ( )
   क) तुलसीदास ख) सूरदास ग) अब्दुर रहमान घ) सैयद इब्राहीम
2. रसखान किस संप्रदाय से दीक्षित हैं? ( )
   क) बल्लभ ख) निम्बार्क ग) नाथ घ) इनमे से कोई नही
3. रसखान का जन्म किस स्थान पर हुआ था? ( )
   क) पिहानी ख) भरतपुर ग) मेरठ घ) मथुरा
4. इनमें से कौन रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि हैं? ( )
   क) बिहारी ख) मीराबाई ग) रसखान घ) भारतेंदु
5. रसखान के इष्ट कौन थे? ( )
   क) कृष्ण ख) राम ग) शिव घ) विष्णु

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. रसखान, बोधा, आलम, घनानंद के साथ .... काव्यधारा के कवि माने जाते हैं।
2. रसखान .... के शिष्य थे एवं बल्लभ संप्रदाय के सदस्य थे।
3. रसखान को .... की खान कहा गया है।

III सुमेल कीजिए।

1) रसखान	अ) रामभक्त कवि
2) तुलसीदास	ब) सूफी कवि
3) जायसी	स) संत कवि
4) नानक	द) कृष्णभक्त कवि

16.7 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
2. रसखान रचनावली, विद्यानिवास मिश्र.
3. रसखान, श्याम सुंदर व्यास.
4. रसखान रत्नावली, राघव रघु.

इकाई 17 : बिहारी : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 मूल पाठ : बिहारी : व्यक्तित्व और कृतित्व
  17.3.1 जीवन परिचय
  17.3.2 रचना यात्रा
  17.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्त्व
17.4 पाठ-सार
17.5 पाठ की उपलब्धियाँ
17.6 शब्द संपदा
17.7 परीक्षार्थ प्रश्न
17.8 पठनीय पुस्तकें

17.1 प्रस्तावना

उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिघटना है। इस पूरे काल को मुख्य रूप से शृंगार काल भी कहा जाता है। इस काल में काव्य की तीन धाराएँ हमें मिलती हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। बिहारी इस काल के प्रसिद्ध कवि के रूप में प्रचलित हैं और वे रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। बिहारी रीतिसिद्ध धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि कवि के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। बिहारी का संपूर्ण सृजन दरबारीपन को ध्यान में रखकर हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है। उनके काव्य में मध्यकालीन कवियों का सुधारवाद या लोक जागरण वाली परंपरा दृष्टिगत नहीं होती।

रीतिकाल चमत्कार, नायक-नायिका भेद, अलंकार, प्रकृति चित्रण, स्त्री सौंदर्य आदि का प्रधान केंद्र था। हम भली-भाँति इस बात से परिचित भी हैं कि रचनाकार अपने वातावरण और परिवेश से प्रभावित होता है, परिणामस्वरूप बिहारी के काव्य में भी स्त्री, अलंकार, नायिका-भेद, प्रकृति वर्णन आदि समाहित होते गए।

17.2 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप -

- कविवर बिहारी के जीवन वृत्त को समझ पाएँगे।
- बिहारी की काव्यगत विशेषताओं को जान पाएँगे।

- बिहारी की काव्यगत विशेषताओं के आधार पर रीतिकालीन काव्य की विशेषताओं को बता पाएँगे।
- बिहारी के काव्य की शृंगारिक विशेषताओं को जान सकेंगे।
- बिहारी के नीतिपरक दोहों से परिचित हो पाएँगे।
- बिहारी के शृंगार और भक्ति भावना से परिचित होंगे।
- बिहारी के काव्य की भाषा-शैली और संरचना से परिचित हों सकेंगे।

17.3 मूल पाठ : बिहारी : व्यक्तित्व और कृतित्व

17.3.1 जीवन परिचय

कविवर बिहारी रीतिकाल के प्रमुख शृंगारी कवि हैं। इनका जन्म सन 1595 ई. (संवत 1652) में मध्यप्रदेश के ग्वालियर में हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था। आठ वर्ष की अवस्था में बिहारी अपने पिता के साथ ओरछा चले गए। वहीं इनकी मुलाकात आचार्य केशवदास से हुई। बिहारी ने केशवदास से काव्य संबंधी शिक्षा ग्रहण की। उर्दू-फारसी की शिक्षा के लिए बिहारी आगरा गए और वहाँ उनकी मुलाकात रहीम से हुई। बिहारी के गुरु का नाम नरहरिदास है। बिहारी ने वृन्दावन में भी वास किया और राधा-कृष्ण की भक्ति भी की। उनके दोहों में अनेक स्थान पर राधा-कृष्ण प्रेम परिलक्षित होता है।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ।।

बोध प्रश्न

1. बिहारी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. बिहारी के काव्य में सगुण भक्ति के आराध्य कौन हैं?

बिहारी कई राजाओं के दरबारी कवि भी थे। वे शाहजहाँ के समकालीन थे और राजा जयसिंह के राजकवि थे। राजा जयसिंह अपने विवाह के बाद अपनी नव-वधू के प्रेम में राज्य की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दे रहे थे और विलासिता में डूबे हुए थे, तब बिहारी ने उन्हें यह दोहा समर्पित किया-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली में ही बिन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

बोध प्रश्न

3. बिहारी किस राजा के दरबारी कवि थे?

बिहारी स्थायी रूप से आमेर में ही रहने लगे थे और वहीं पर उन्होंने 700 दोहों की रचना की जो सतसैया के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि बिहारी की पत्नी सुशिक्षित थीं और सतसई की रचना में उनका भी योगदान था। बिहारी की कोई संतान नहीं थी। जीवन का अंतिम समय कष्टदायी रहा। जीवन के अंतिम समय में वे पुनः मथुरा लौट आए थे और यहीं संवत 1720 (सन 1663 ई.) में बिहारी का निधन हो गया।

बोध प्रश्न

4. सतसैया का क्या अर्थ होता है?

17.3.2 रचना यात्रा

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनकी एकमात्र रचना 'सतसई' या सतसैया है जिसमें लगभग 713 मुक्तक परंपरा के दोहे और सोरठे सम्मिलित हैं। इसे 'बिहारी सतसई' भी कहा जाता है। यह एक मुक्तक काव्य है। हिंदी में समास पद्धति की शक्ति का सर्वाधिक परिचय बिहारी ने दिया है। सतसई की भाषा ब्रज है। उस समय ब्रजभाषा उत्तर भारत की काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित एवं प्रचलित थी। बिहारी के दोहों में गूढ़ार्थ होने के कारण 'गागर में सागर' भरने की कहावत को चरितार्थ करते हैं। उनकी सतसई के विषय में कहा भी गया है-

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर॥

बोध प्रश्न

5. बिहारी के दोहों के बारे में यह उक्ति 'गागर में सागर' क्यों प्रसिद्ध है?

अर्थ की गहराई और विस्तार दोनों ही गुण बिहारी के दोहों की विशेषता है। सतसई रचना का प्रतिपाद्य शृंगार है। परंतु इसमें भक्ति, नीति और शास्त्र के भी गुण सम्मिलित हैं। राधा-कृष्ण का प्रेम इस रचना में मौजूद है। इस रचना को नायक-नायिका के अनुभव का सुंदर उदाहरण भी कहा जा सकता है। विशेष बात यह है कि बिहारी की इस रचना में भावों की विदग्धता, सरसता और कला के चमत्कार ने एक उत्कृष्ट रूप दे दिया है। चमत्कार और अलंकार इनके दोहों की छवि नहीं बिगाड़ते बल्कि सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

बोध प्रश्न

6. बिहारी सतसई का मुख्य आधार क्या है?

हिंदी साहित्य में बिहारी के दोहों का अत्यधिक प्रभाव है। सतसई की रचना के बाद शृंगार विषयक सतसैया की एक परंपरा ही चल पड़ी। बिहारी सतसई का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि बड़े से बड़े कवियों और विद्वानों ने इस रचना पर टीकाएँ की हैं। 'बिहारी सतसई' पर लगभग 50 से अधिक टीकाएँ की जा चुकी हैं। कुछ प्रमुख टीकाओं के नाम निम्नलिखित हैं-

1. कृष्ण कवि ने सर्वप्रथम सतसई पर टीका लिखी थी। यह टीका सन 1662 ई. की है।
2. सन 1714 ई. में अनवर ने 'अनवर चन्द्रिका' नाम से टीका की है।
3. सुरति मिश्र ने सन 1717 ई. में 'अमर चन्द्रिका' नाम से टीका की है।
4. हरिचरण दास ने सन 1777 ई. में हरिप्रकाश नाम से सतसई की प्रसिद्ध टीका की है।
5. 'बिहारी रत्नाकर' नाम से प्रसिद्ध जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की टीका महत्वपूर्ण है।

लल्लूलाल ने खड़ीबोली ब्रज मिश्रित भाषा में 'लाल चन्द्रिका' नाम से टीका की है। इसका पहला संस्करण सन 1811 ई. में प्रकाशित हुआ।

उपर्युत्क टीकाओं से इतर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी सतसई पर कुंडलियाँ भाष्य लिखा। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी बोधिनी' नाम से टीका की है। इसके अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं में भी बिहारी सतसई की टीकाएँ की गई हैं।

बोध प्रश्न

7. टीका किसे कहते हैं?
8. कुछ अन्य प्रमुख रचनाओं पर लिखी गई टीकाओं की एक सूची बनाइए।

रीतिकाल प्रमुख रूप से तीन धाराओं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में विभक्त है। बिहारी का काव्य रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों के काव्यों से पृथक है। वे मूलतः रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। रीतिसिद्ध कवि कहने का तात्पर्य यह है कि बिहारी को रीतिशास्त्र की परंपरा पूर्ण रूप से सिद्ध है। वे काव्य के शास्त्रीय आधार से परिचित थे। उन्होंने काव्य की रचना रीति के भीतर ही की है, किंतु लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत करके स्वतंत्र रूप से उनका व्यवहार प्रस्तुत नहीं किया है। रीतिशास्त्र का पालन करने पर भी बिहारी लकीर के फ़कीर न थे, रचनाकर्म की सीमित स्वतंत्रता उनके कविकर्म का अंग रही है। बिहारी के दोहे अपनी भाव सौंदर्य में विलक्षण प्रतिभा रखते हैं।

बिहारी ने शृंगार को लेकर नायक-नायिका भेद का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है उसमें कुछ ऐसे सामान्य पक्ष रख दिए हैं जिनसे जयदेव, विद्यापति और सूरदास तक उसमें समाहित हो जाते हैं। उस समय फ़ारसी का वर्चस्व जो दरबारों पर छाया हुआ था बिहारी उससे अनभिज्ञ भी नहीं थे। उन्होंने अपभ्रंश और फ़ारसी ढंग की शायरी का अपने दोहों में नए ढंग से प्रयोग

किया। दोहों की भाषा का रचनाकर्म इतना सटीक रखा कि वह शायरी का मुकाबला कर उठा। वास्तव में मुक्तक काव्य परंपरा की शक्ति का प्रतीक दोहा ही बना है। बिहारी रीतिशास्त्र के न ही विरोधी थे और न ही समर्थक। परिणामस्वरूप रीतिसिद्ध कवि बिहारी की विशेषता यह रही है कि वह पृथक कवियों की भाँति रीतिशास्त्र के गुलाम नहीं हैं। बिहारी के काव्य में उक्ति वैचित्र्य, अन्योक्ति, अर्थ गाम्भीर्य, अर्थ विस्तार, अलंकारिता तथा कल्पना की समाहार शक्ति का समावेश है।

बोध प्रश्न

9. रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त से क्या अभिप्राय है?
10. लक्षण ग्रंथ किसे कहते हैं?

'बिहारी सतसई' को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. शृंगारपरक दोहे
2. भक्तिपरक या अध्यात्मपरक दोहे
3. नीतिपरक दोहे

शृंगारपरक दोहे

बिहारी सतसई में शृंगारपरक भाग अधिक है। शृंगारपरक भाग में रूप वर्णन और नायिकाभेद का चित्रण हुआ है। बिहारी की विषय सामग्री का प्रधान अंग शृंगार है। प्रेम के संयोग पक्ष में नखशिख वर्णन के साथ-साथ ऋतु वर्णन भी बिहारी ने किया है। शृंगार सतसई परंपरा में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी सतसई को शृंगार परंपरा में जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है उतनी अन्यत्र हमें देखने को नहीं मिलती।

सतसई को मुक्तक काव्य परंपरा का ऐसा प्रतिमान कह सकते हैं जिसमें रसों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ भाषा की समाहार शक्ति को व्यक्त करने की क्षमता है। छंदों में दोहा जैसे छोटे छंद में भी बिहारी मनोभावों को व्यक्त करने में समर्थ रचनाकार हैं। शब्दों को इस ढंग से चुन-चुनकर वे व्यंग्यार्थपरक उपयोग करते हैं कि उसमें अर्थ लावण्य और वक्रता पैदा हो जाती है। भावों की सघनता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता उनके रचनाकर्म में विद्यमान रहती है। नायक-नायिका के अनुभाव, हाव, हेला, सौंदर्य का वर्णन बिहारी ने कुशलता से किया है। एक उदाहरण देखिए-

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सो बात॥

बिहारी ने इस दोहे में प्रेम की उस अवस्था का वर्णन किया है जिसमें नायक और नायिका आँखों ही आँखों में रूठते हैं, मनाते हैं, मिलते हैं, खिल जाते हैं, शरमाते हैं और उसका किसी को पता तक नहीं चलता है। शृंगार का ऐसा सहज और आकर्षक चित्र 'बिहारी सतसई' की अनुपम चित्रशाला है। इसी श्रेणी में एक और उदाहरण देखिए-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसे, देन कहै नटि जाय।।

उक्त दोहे में यह देख सकते हैं कि गोपियाँ लाल की मुरली छिपाते हैं ताकि उन्हें कृष्ण से बात करने का अवसर प्राप्त हो जाए। इस दोहे में बतरस के आनंद के साथ नेत्रों-भौंहों की क्रियाओं की स्थिति का व्यंग्य निहित है।

बोध प्रश्न

11. बिहारी सतसई को मुक्तक काव्य परंपरा का प्रतिमान क्यों कहा जा सकता है?
12. 'भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सो बात।' इसका क्या अर्थ है?

शृंगारिकता रीतिकालीन कविता की प्रधान विशेषता है। इसी कारण इस काल का एक अन्य नाम शृंगार काल भी है। रीतिकाल वैभव-विलास की अतिशय चकाचौंध का युग था और सामंतवादी वृत्तियाँ रसिकों में देखी जा सकती थीं। बिहारी की इस विशेषता को स्पष्ट करने वाला एक दोहा देखिए -

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयागु।।

उपर्युक्त दोहे का भावार्थ यह है कि ब्रजवासी भक्त ब्रज भूमि की महत्ता का वर्णन करते हुए कह रहा है - हे मन! दूसरे तीर्थों को त्याग दे और भगवान श्रीकृष्ण और राधा के शरीर की शोभा में अपना ध्यान लगा ले। अर्थात् तू उन्हीं के सौंदर्य की आराधना कर। श्रीकृष्ण और राधा ने ब्रज की क्रीड़ा-कुंजों में नाना तरह की लीलाएँ की हैं, जिसके कारण ब्रज की निकुंजों के रास्ते में पग-पग पर गंगा-यमुना का संगम प्रयाग तीर्थ राज ही है। तुझे अन्य तीर्थों के मोह में फँसने की ज़रूरत नहीं है। कृष्ण-राधा की भक्ति में ही सारे तीर्थ समाहित हैं। भक्तिकाल का आध्यात्मिक प्रकाश लुप्त होकर रीतिकालीन भोगवाद कैसे आया था - उसका सीधा तत्वदर्शन बिहारी प्रस्तुत करते हैं।

बोध प्रश्न

13. रीतिकाल को शृंगार काल किसने कहा?
14. भक्तिकालीन अध्यात्म और रीतिकालीन भोगवाद को स्पष्ट कीजिए?

हिंदी साहित्य में शृंगार रस को 'रसराज' कहा जाता है जिसका स्थायी भाव 'रति' है और इसकी व्याप्ति अन्य रसों के पक्ष में अधिक है। शृंगार रस के दो भेद हैं - संयोग और वियोग। बिहारी ने भी रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति संयोग और वियोग के विभिन्न पक्षों का प्रयोग किया है। संयोग शृंगार के क्षेत्र में उन्होंने नायिका का नखशिख वर्णन या रूप सौंदर्य वर्णन, नायक-नायिका भेद, प्रेम-प्रसंग की विभिन्न स्थितियाँ आदि को समाहित किया है। बिहारी का एक संयोग शृंगार का दोहा प्रस्तुत है -

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसे, देन कहै नटि जाय।।

उपर्युक्त दोहे में लालच से लाल की मुरली छिपाना, भौंहों से हँसना, हास-परिहास में सौगंध खाना, मुरली देने के लिए पहले कहना और फिर नट जाना आदि ऐसे भाव व्यापार हैं जो स्थिति को मूर्त कर देते हैं। संयोग शृंगार के अंतर्गत बिहारी नायिकाओं के वर्णन में खूब रमते हैं। भावोत्तेजक और चमत्कारी संयोग वर्णन में बिहारी विशेष दक्षता रखते हैं।

बोध प्रश्न

15. बिहारी के दोहे संयोग पक्ष में अति महत्वपूर्ण हैं। कारण बताइए।

इसी भाँति बिहारी ने वियोग पक्ष का भी बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उनका वियोग वर्णन अतिश्योक्ति पूर्ण है। एक उदाहरण देखिए -

सुनी पथिक मुँह माह निसि लुवैं चलैं वहि ग्राम।
बिनु पूँछे, बिनु ही कहे, जरति बिचारी बाम।।

अर्थात् विरहिणी नायिका की श्वास से माघ के महीने में भी उस गाँव में लू चलती है। विरहिणी क्या हुई, लोहार की धौंकनी हो गई। विप्रलंभ में बिहारी की कल्पना अपने पंख खोल देती है और विरहिणी का ऐसा अतिश्योक्ति पूर्ण चित्र खींचते हैं कि अन्यत्र दुर्लभ हो जाता है।

विरहिणी अपनी सखी से कहती हैः

मैं ही बौरी विरह बस, कै बौरो सब गाँव।
कहा जानि ये कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाँव।।

अर्थात् मैं ही पागल हूँ या सारा गाँव पागल है। ये कैसे कहते हैं कि चंद्रमा का नाम शीतकर यानि शीतल करने वाला है? विरह प्रवास की अनेक अतिश्योक्ति वर्णनों से सतसई भरी पड़ी है। इस तरह के विरह पर बिहारी का गहरा अधिकार है जिसके चमत्कार से वे चकित कर देते हैं।

बोध प्रश्न

16. विप्रलंभ का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

17. शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों के अन्य उदाहरण लिखिए।

भक्तिपरक या अध्यात्मपरक

बिहारी ने वैराग्यमूलक भक्ति या अध्यात्म से अपना संबंध स्थापित नहीं किया। वे भक्ति के किसी संप्रदाय से जुड़कर नहीं लिख रहे थे। बिहारी की विशेषता यह है कि वे सगुण-निर्गुण के भेद में नहीं पड़ते। गोपाल, श्याम, हरि और कृष्ण में उनकी निष्ठा है। सतसई के आरंभ में मंगलाचरण का यह दोहा इसी तथ्य को सिद्ध करता है-

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाई परे, स्याम हरित दुति होय ।।

बोध प्रश्न

18. बिहारी के भक्तिपरक दोहे के अन्य उदाहरण लिखिए।

नीतिपरक

बिहारी सतसई में नीति और ज्ञान के भी दोहे मिलते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत ही सीमित है। धन-संग्रह के संबंध में बिहारी लिखते हैं-

मति न नीति गलीत यह, जो धन धरिये जोर।
खाये खर्चे जो बचे तो जोरिये करोर॥

संभवतः बिहारी ने अपने समय के समाज में भी गंदी नीयत वाले मित्रों को भी देखा था। शायद उनका उनसे वास्ता भी पड़ा हो। इसीलिए उन्होंने कहा कि अपनी दुर्दशा बनाकर धन-संग्रह मत करो। खाने और खरचने के बाद जो बच जाए तो करोड़ों रुपए भी जुड़ जाएँ, तो अच्छा है। नीति से संबंधित एक अन्य प्रसिद्ध उदाहरण भी देखिए-

कनक-कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाये बौराय।।

स्वर्ण आदमी को पागल बना देता है। उसका लोभ नाश का कारण है। भारतीय साहित्य में नीति की एक लंबी परंपरा रही है। इस नीति परंपरा में अनुभव भरा पड़ा है।

बोध प्रश्न

19. हिंदी साहित्य में नीति की परंपरा से आप क्या समझते हैं?

बहुज्ञता

साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त बिहारी को लौकिक ज्ञान भी है। शास्त्र और लोक के ज्ञान का बिहारी में सामंजस्य दिखाई पड़ता है। ज्योतिष, वैद्य, गणित आदि का बिहारी को ज्ञान है और वे काव्यात्मकता में उसका पूर्ण उपयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति चित्रण में बिहारी किसी से पीछे नहीं रहे। षट्ऋतुओं का उन्होंने बड़ा ही मनोरम चित्र अपने काव्य में उकेरा है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि बिहारी मूलतः शृंगारी कवि हैं। उनकी भक्ति-भावना राधा-कृष्ण के प्रति है। ये भक्ति भावना जहाँ-तहाँ ही प्रकट हुई है। बिहारी ने नीति और ज्ञान के दोहे भी लिखे हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

बिहारी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारी ने हाव-भाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है। उसमें बड़ी मार्मिकता है। बिहारी का वियोग वर्णन अतिश्योक्तिपूर्ण है। वियोग की आग से नायिका का शरीर इतना गर्म है कि उस पर डाला गया गुलाब जल बीच में ही सूख जाता है। बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध कवियों की मुक्तक रचनाओं जैसे आर्य शब्द शती, गाथा शब्द शती आदि से मूल भाव लिए हैं। बिहारी सतसई में केवल दो छंदों का ही समावेश किया गया है- दोहा और सोरठा। बिहारी के दोहे समास शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यद्यपि बिहारी के काव्य में शांत, हास, करुण आदि रसों के भी उदाहरण मिल जाते हैं किंतु मुख्य रस शृंगार ही है।

बोध प्रश्न

20. बिहारी सतसई का मुख्य आधार क्या है?
21. बिहारी के दोहों में प्रकृति चित्रण का भी उल्लेख मिलता है। ऐसे कुछ दोहों को ढूँढ़कर लिखिए।

भाषा एवं शैली

बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है। बिहारी सतसई में ब्रजभाषा का विकसित रूप देखने को मिलता है। इसमें सूर की चलती ब्रज भाषा का भी विकसित रूप मिलता है। पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फ़ारसी आदि के शब्द भी उसमें आए हैं, किंतु वे लटकते नहीं हैं। बिहारी का शब्द चयन बड़ा सुंदर और सार्थक है। शब्दों का प्रयोग भावों के अनुकूल ही हुआ है। बिहारी ने अपनी भाषा में कहीं-कहीं मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग किया है। जैसे -

मूड चढाऐऊ रहै फरयौ पीठि कच-भारु।

रहै गिरैं परि, राखिबौ तऊ हियैं पर हारु॥

बिहारी के दोहों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि कई अलंकारों की छटा देखने को मिल जाती है। बिहारी की भाषा प्रौढ़ और प्रांजल है। इनकी भाषा में पूर्वी प्रयोग के साथ-साथ बुंदेली का भी प्रवाह है। विषय के अनुसार बिहारी की शैली मुख्य रूप से तीन प्रकार की है-

1. माधुर्यपूर्ण व्यंजना प्रधान शैली
2. प्रसाद से युक्त सरस शैली
3. चमत्कारपूर्ण शैली

शृंगारी दोहों में माधुर्य पूर्ण व्यंजना शैली का प्रयोग मिलता है। भक्ति तथा नीति के दोहों में प्रसाद से युक्त शैली का प्रयोग मिलता है और दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि में चमत्कारपूर्ण शैली देखने को मिलती है।

बिहारी की तुलना विशेष रूप से कवि देव से की गई है। एक ओर देव को दूसरी ओर बिहारी को बढ़कर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। भक्ति के हार्दिक भाव बहुत ही कम दोहों में दिखाई पड़ते हैं। बिहारी के दोहों में दैन्य भाव का प्राधान्य नहीं है। वे प्रभु प्रार्थना करते हैं किंतु अतिहीन होकर नहीं। प्रभु की इच्छा को ही मुख्य मानकर विनय करते हैं।

सतसई को देखने से स्पष्ट होता है कि बिहारी के लिए काव्य में रस और अलंकार चातुर्य, अलंकार और कथन कौशल दोनों ही अनिवार्य और आवश्यक हैं। किसी कवि का यश उसके द्वारा रचे ग्रंथों के प्रमाण पर नहीं बल्कि गुण पर निर्भर होता है। बिहारी के साथ भी यही बात है। अकेले सतसई की रचना ने उन्हें हिंदी साहित्य में अमर कर दिया है। शृंगार रस के ग्रंथों में बिहारी सतसई के समान ख्याति अन्यत्र नहीं मिलती।

बोध प्रश्न

22. बिहारी की भाषा में हिंदी का कौनसा रूप मिलता है?
23. बिहारी के दोहों में किस प्रकार की शैली का वर्णन अधिकतर मिलता है?

17.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्त्व

किसी भी कवि की प्रसिद्धि उसके द्वारा रचित बहुसंख्यक रचनाओं से नहीं बल्कि उसकी प्रसिद्धि का आधार उसके गुण पर आधारित होता है। यही अवस्था बिहारी के साथ भी थी। उन्होंने कुछ फुटकल दोहों की रचना की जिसे सतसई के रूप में देखा गया। सतसई की लोकप्रियता भी ऐसी कि जिस पर 50 से अधिक टीकाएँ की जा चुकी हैं। इसलिए किसी कवि का यश उसके द्वारा रचित ग्रंथों के परिमाण पर नहीं, गुण पर निर्भर होता है। बिहारी के साथ भी

यही बात है। अकेले सतसई ग्रंथ ने उन्हें हिंदी साहित्य में अमर कर दिया। शृंगार रस की कृतियों में बिहारी सतसई के समान प्रसिद्धि कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इस कृति की अनेक टीकाएँ हुईं और अनेक कवियों ने इसके दोहों को आधार बनाकर कवित्त, छप्पय, सवैया आदि छंदों की रचना की। बिहारी सतसई आज भी रसिक जनों का आधार बनी हुई है।

बोध प्रश्न

24. बिहारी के दोहों के महत्व के बारे में लिखिए।

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! आप यह पढ़ चुके हैं कि रीतिकाल में तीन प्रकार के कवि सक्रिय थे। इन्हें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कवि कहा जाता है। रीतिबद्ध कवियों ने रीति काव्यों की रचना की जिन्हें लक्षण ग्रंथ भी कहा जाता है। इन काव्यों में काव्यशास्त्र के अनुसार नायिका भेद और अलंकार आदि के लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। इसलिए इन कवियों को रीतिग्रंथकार या आचार्य कवि भी कहा जाता है। रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने सीधे-सीधे लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखे लेकिन अपनी रचनाओं में सजग रूप में उनका निर्वाह किया है। रीतिमुक्त कवि शास्त्र निरूपण या निर्वाह के फेर में नहीं पड़ते। इसलिए उन्हें स्वच्छंद कवि भी कहा जाता है। अब तक आप यह भी समझ गए होंगे कि बिहारी को रीतिसिद्ध कवि माना जाता है। इसके बावजूद कुछ आलोचक उनके हर दोहे में काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह देखते हुए उन्हें रीतिबद्ध कहना भी पसंद करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस बहस को अनावश्यक माना है। उनका कहना है कि -

> "साधारणतः विश्वास किया जाता है कि इस कवि ने अपनी सतसई की रचना रीतिकाव्य की दृष्टि से ही की थी, क्योंकि उनके दोहों को देखकर यही अनुमान होता है कि किसी-न-किसी नायिका का लक्षण उनके मन में अवश्य उपस्थित था। पुराने सहृदयों को भी यह बात लगी थी (क्योंकि कभी-कभी इन दोहों को नायिका-भेद के अनुक्रम से सजाया गया है) और नए सहृदयों को भी अनुभूत हुई है। परंतु इस बात से केवल यही सिद्ध होता है कि बिहारी के प्रशंसक रीति-मनोवृत्ति के सहृदय थे। स्वयं बिहारी भी रीतिग्रंथों के अच्छे जानकार रहे होंगे, इसमें संदेह नहीं, किंतु उनके प्रत्येक दोहे में किसी-न-किसी नायिका को खोज लेना यह नहीं सिद्ध करता कि वे रीतिग्रंथ लिख रहे थे।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 175)

बिहारी के दोहों में संक्षिप्तता के साथ-साथ अर्थ की ऐसी गहराई पाई जाती है कि उन्हें गागर में सागर के उदाहरण के रूप में रखा जाता है। कथन शैली की यह विशेषता कवि को जीवन के गहरे अनुभव और काव्य रचना के लंबे अभ्यास से प्राप्त हुई है। उनका सारा जीवन

काव्य साधना में ही बीता। इससे उनके दोहों में निखार आना स्वाभाविक था। इस बारे में डॉ. महेंद्र कुमार का यह कथन उल्लेखनीय है कि –

> “बिहारी अपने संक्षिप्त वर्णन और नपे तुले शब्दों में किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव का जगमगात रूप निखार कर प्रस्तुत करते हैं। उनके रूप वर्णन वयः संधि के चित्रण तथा मादक एवं गदराई युवावस्था की मधुर झलकें मन को मुग्ध कर लेती हैं और ये चित्रण केवल काल्पनिक न होकर जीवन के यथार्थ रूप हैं। बिहारी ने अपनी पैनी दृष्टि से जीवन का निरीक्षण किया था। अतः उन्होंने युवावृत्तियों का सजीव चित्रण किया है। ... उन्होंने केवल भावुकतावश सौंदर्य चित्रण ही नहीं किया, वरन जीवन के प्रौढ़ अनुभवों का भी उदघाटन किया है। .... ‘बिहारी सतसई’ शृंगार भक्ति और नीति की त्रिवेणी है। (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 324-325)

17.4 पाठ-सार

बिहारी रीतिकाल के विख्यात कवि हैं और रीतिसिद्ध कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। अपने काव्य गुणों के कारण ही बिहारी महाकाव्य की रचना न करने पर भी महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। बिहारी सतसई से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल में एक मात्र रचना के आधार पर बिहारी जैसा कोई कवि नहीं मिलता।

‘बिहारी सतसई’ इतनी अधिक प्रचलित हुई कि इसके अनुकरण की एक परंपरा ही चल पड़ी। भाव एवं भाषा दोनों के आधार पर परवर्ती काव्य परंपरा में एक प्रतिमान ही बन गया। दरबारी काव्य परंपरा में सामंत वर्ग का प्रभुत्व किसी भी रचना को किस प्रकार की विकृत नागरिकता की ओर ढकेल ले गया बिहारी का रचनाकर्म इसका साक्षी है।

बिहारी सतसई का प्रत्येक दोहा अपनी अर्थगत रमणीयता, वक्रता तथा काव्यानुभव में विशिष्ट है। बिहारी में भाव की पुनरावृत्ति नहीं है और न दोहे की अर्थ सौंदर्यगत स्वच्छंदता ही बाधित है। शृंगारी मुक्तक काव्य परंपरा की लगभग सभी विशेषता बिहारी की संवेदना में दृष्टिगत होती है। कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति के कारण सतसई के दोहे गागर में सागर भरे जाने की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

भाषा-शैली के आधार पर बिहारी की पकड़ अद्वितीय थी। रीतिशास्त्र के गहन अध्ययन के बाद बिहारी ने दरबारी काव्य रुचि के अनुकूल नायक-नायिका भेद, भाव-भेद, रस, ध्वनि, शब्द प्रयोग का चमत्कार आदि पर ऐसा अधिकार प्राप्त किया कि चित्रमयता और शब्द चुनाव

क्षमता आज भी हमारे लिए विशेष महत्व रखती है। तत्कालीन समय में बिहारी का नाम उल्लेखनीय था।

17.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. बिहारी रीतिसिद्ध परंपरा के प्रमुख कवि हैं।
2. बिहारी के दोहे कम शब्दों में अधिक बात कहने में महत्वपूर्ण हैं।
3. शृंगार काव्य में बिहारी का स्थान महत्वपूर्ण है।
4. बिहारी सतसई बिहारी की एकमात्र रचना है।

17.6 शब्द संपदा

1. अतिशयोक्ति = बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात
2. अन्योक्ति = अप्रत्यक्ष कथन, अलंकार जिसमें एक से कही हुई बात किसी दूसरे पर घटित हो
3. अध्यात्म = आत्मा संबंधी या आत्मा-परमात्मा के संबंध में चिंतन-मनन
4. कष्टदायी = मुसीबत पैदा करने वाला
5. चरितार्थ = जिसके अस्तित्व का उद्देश्य पूरा या सिद्ध हो गया हो
6. नखशिख = पैर के नाखून से सिर के बाल तक के सब अंग
7. पराग = पुष्पराज
8. प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करने योग्य, निरूपण करने योग्य
9. प्रबंध काव्य = काव्य के माध्यम से किसी कथा का क्रमवार रूप से चलना
10. मुक्तक काव्य = अपने आप में संपूर्ण काव्य
11. वर्चस्व = श्रेष्ठ या मुख्य होने की अवस्था
12. वास = निवास, घर मकान
13. विदग्ध = जला हुआ, तपा हुआ, कष्ट सहा हुआ
14. विप्रलंभ = निराश होना, प्रेमी-प्रेमिका का वियोग
15. विलासिता = विलास भाव
16. सतसई = सत्+सई = सप्तशती, सात सौ
17. हवाल = अवस्था

17.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिसिद्ध काव्य धारा की प्रमुख विशेषताओं पर विचार कीजिए।
2. बिहारी के दोहों की विशेषता को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. बिहारी सतसई के शृंगार पक्ष पर अपने विचार लिखिए।
2. बिहारी के नीति युक्त दोहों के बारे में लिखिए।
3. बिहारी की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. बिहारी की एकमात्र रचना का नाम बताइए- ( )
   (अ) बिहारी सप्तशती (आ) बिहारी चंद्रिका (इ) बिहारी सतसई (ई) बीजक
2. बिहारी किस काल के कवि हैं? ( )
   (अ) रीतिकाल (आ) भक्तिकाल (इ) आदिकाल (ई) आधुनिक काल
3. जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा बिहारी सतसई पर की गई टीका का नाम बताइए ( )
   (अ) लाल चंद्रिका (आ) अमर चंद्रिका (इ) अनवर चंद्रिका (ई) कोई नहीं

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. …………राजा जयसिंह के राजकवि थे।
2. बिहारी सतसई …… भाषा में लिखी गई है।
3. बिहारी सतसई में लगभग ……… मुक्तक परंपरा के दोहे और सोरठे सम्मिलित हैं।
4. शृंगार रस के ……… भेद होते हैं

III सुमेल कीजिए।

1. बिहारी	(अ) लाल चंद्रिका
2. जगन्नाथदास रत्नाकर	(आ) बिहारी सतसई

3. लल्लूलाल (इ) हरिप्रकाश

4. हरिचरण दास (ई) बिहारी रत्नाकर

17.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाल की भूमिका, नगेंद्र
2. बिहारी का नया मूल्यांकन, बच्चन सिंह
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, (सं) नगेंद्र
5. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास, रामस्वरूप चतुर्वेदी
7. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

इकाई 18 : भक्ति

रुपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 मूल पाठ : भक्ति
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
18.4 पाठ-सार
18.5 पाठ की उपलब्धियाँ
18.6 शब्द संपदा
18.7 परीक्षार्थ प्रश्न
18.8 पठनीय पुस्तकें

18.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल 'स्वर्ण' युग के नाम से विख्यात है। भक्तिकाल के उतरार्ध को रीति काल या 'शृंगार काल' कहा जाता है। उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकाल (1700-1900) के कवि भक्ति से रीति की ओर उन्मुख हुए। रीतिकाल के कवियों में कवि बिहारी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हें बिहारीलाल के नाम से भी जाना जाता है। 'बिहारी सतसई' इनकी प्रमुख रचना है जिसमें सात सौ तेरह दोहे हैं।

'बिहारी सतसई' में रीति, नीति और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। एक-एक दोहा हिंदी साहित्य में एक रत्न माना जाता है (रामचंद्र शुक्ल)। बिहारी सतसई पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं जिनमें 45 टीकाएँ मुख्य रूप से उपलब्ध हैं। बिहारी सतसई में अनेक भाषाओं के शब्द हैं। अत: विश्वनाथ प्रताप मिश्र के शब्दों में "बिहारी को भाषा का पंडित कहा जाना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाले, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता" इसलिए बिहारी के बारे में कहा जाता है कि -

सतसइया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लागै घाव करे गंभीर॥

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप बिहारी के प्रसिद्ध भक्तिपरक दोहों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप –

- बिहारी के दोहों के महत्व के बारे में जान सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के भक्ति पक्ष को समझ सकेंगे।
- बिहारी के निर्धारित दोहों की व्याख्या कर सकेंगे।
- बिहारी के दोहों के काव्यगत सौंदर्य को समझ सकेंगे।

18.3 मूल पाठ : भक्ति

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य में बिहारी सतसई का अपना विशिष्ट महत्व है। 'सतसई' अर्थात् सात सौ दोहों का समाहार। बिहारी की सप्तशती मुक्तक काव्य है इसमें 713 दोहे संकलित हैं। बिहारी सतसई नीति, भक्ति और रीति विषय का संगम है। अत: इसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य में बिहारी द्वारा रचित अपने आप में अनूठा ग्रंथ है। सतसई के दोहे अनायास ही स्मरण हो जाते हैं। यह बिहारी की लोकप्रियता का प्रमाण है। इस पर कई टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'बिहारी रत्नाकर' टीका सबसे सुंदर तथा प्रामाणिक मानी गई है। हिंदी साहित्य में सतसइयों की परंपरा में बिहारी 'सतसई' का सर्वोपरि स्थान रहा है।

(ख) अध्येय कविता

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्जल होइ॥
करौं कुबत जगु कुटिलता, तजौ न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल॥
कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग नायक, जग बाइ॥
मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपनैं-अपनैं बिरद की, दुहूँ निबाहन लाज॥

हरि कीजति बिनती यहै, तुमसौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‌यौ रह्यौ, पर्‌यौ रहौं दरबार॥

निर्देश : इन दोहों का सस्वर वाचन कीजिए।
इन दोहों का मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय॥

शब्दार्थ : भव = संसार। बाधा = रुकावट, कष्ट। हरो = दूर करो। नागरि = चतुर। तन = शरीर, बदन। झाईं = परछाई। परे = पड़े। स्याम = श्याम, कृष्ण। द्युति = प्रकाश, चमक।

संदर्भ : यह दोहा बिहारीलाल द्वारा रचित बिहारी सतसई से लिया गया है। यह भक्तिपरक दोहा है। सतसई के आरंभ में ही मंगलाचारण में इसे रखा गया है। यह उनके भक्तिभाव का परिचायक है।

प्रसंग : कवि ने अपने ग्रंथ के आरंभ में राधा जी की स्तुति की है। बिहारी द्वारा रचित सतसई में शृंगार प्रधान दोहों के कारण इन्हें शृंगार रस के कवि माना जाता है किंतु इनके दोहों में नीति और भक्ति के दोहे भी निहित है। इस दोहे में कवि ने राधा के अलौकिक सौंदर्य के प्रभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या : यहाँ कवि बिहारी ने शृंगार की अधिष्ठात्री देवी की आराधना की है जो कृष्ण के हृदय में विराजती हैं। श्री कृष्ण का नाम जिनके बिना अधूरा है। जो प्रेम शब्द को सार्थक करती हैं कवि ऐसी राधा रानी की स्तुति कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि राधिका जी की मात्र छाया पड़ने पर ही मेरे प्रभु श्रीकृष्ण परम आनंदित हो जाते हैं। उनका मन प्रफुल्लित हो जाता है। अत: ऐसी चतुर तथा कृष्ण के हृदय में रहने वाली राधा जी से प्रार्थना करते हैं कि वह उनके भव बाधा अर्थात् सांसारिक दुखों को दूर करें। वे कहते हैं, हे राधाजी आप प्रसन्न होइए। आपकी छाया पड़ते ही प्रभु कृष्ण स्वत: ही प्रसन्न हो जाएँगे अत: हे राधारानी आप मेरे सभी कष्टों को दूर कीजिए।

विशेष : बिहारी के दोहे 'गागर में सागर' भरने वाले होते हैं अर्थात् थोड़े में बहुत कुछ कहना। यह दोहा बिहारी की भक्ति भावना को प्रदर्शित करता है। इसमें राधा जी की आरधना की गई है।

- बिहारी के दोहों की भाषा ब्रज है ।
- मुक्तक शैली है।
- दोहा छंद है ।

- ‘स्याम हरित द्युति’ के अनेक अर्थ होने से श्लेष अलंकार का सुंदर चित्रण हुआ है ।
- नीले रंग में पीला रंग मिलने से नीला रंग हरा पड़ जाता है।
- राधा का रंग कुंदन के समान पीला है।

बोध प्रश्न

1. इस दोहे में किसकी आराधना की गई है?
2. कृष्ण की प्रसन्नता का कारण लिखिए।
3. बिहारी ने राधा जी से क्या प्रार्थना की है?

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्जल होइ॥

शब्दार्थ : अनुरागी = प्रेमी। चित्त = मन। गति = चाल। बूड़ै = डूबना। स्याम = काला, कृष्ण। उज्जल = निर्मल।

संदर्भ : यह दोहा रीतिकाल के कवि बिहारीलाल द्वारा रचित है। यह बिहारी सतसई से लिया गया है। इस दोहे में भक्ति और प्रेम का महत्व दर्शाया गया है।

प्रसंग : कवि बिहारी शृंगार रस के प्रधान कवि माने जाते हैं। वे राधा और कृष्ण के उपासक हैं। यह दोहा कृष्ण भक्ति और कृष्ण प्रेम के संदर्भ में है। भक्ति मनुष्य मन को निर्मल करती है। कवि ने भक्ति को प्रेम की सबसे ऊँची चोटी का रूप माना है। प्रेम के बिना भक्ति का भाव तरल और सरस नहीं हो पाता है। अत: बिहारी ने अपने इस दोहे से स्पष्ट किया है कि कृष्ण रंग अर्थात् भगवान कृष्ण के रंग की महिमा अनोखी है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि इस प्रेमी मन की गति को कोई नहीं समझ सकता। जैसे-जैसे यह कृष्ण के रंग में रंगता जाता है वैसे-वैसे उज्जवल होता जाता है अर्थात् परमात्मा की भक्ति में मनुष्य जितना डूबता जाएगा उस पर भक्ति रूपी रंग चढ़ता जाएगा। कृष्ण के साँवले रंग में डूबने पर मन उज्जवल अर्थात् निर्मल हो जाता है। कृष्ण का साँवला रंग भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करता है। कवि बिहारी कहते हैं कि मेरा मन स्थिर नहीं है वह तो कृष्ण की ओर खींचा चला जाता है। आश्चर्य यह है कि इस रंग के प्रभाव से सारे अवगुण धुल जाते हैं, मन की कलुषता दूर होने पर वह पवित्र हो जाता है। अतः इस मन में केवल प्रेम और भक्ति का धवल रंग रह जाता है। उसके मन पर उज्जवल, सात्विक निखार आ जाता है।

विशेष : साँवले रंग में डूबने से मन के उजले होने में विरोधाभास अलंकार है। दोहे की भाषा ब्रज है।

टिप्पणी : भारतीय परंपरा के अनुसार भक्ति प्रेम की चरम अवस्था का नाम है। इस दोहे में इसका निरूपण किया गया है।

बोध प्रश्न

4. इस दोहे में किसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है?
5. प्रेम की गति को कोई क्यों नहीं समझा जा सकता है?
6. कवि का मन स्थिर क्यों नहीं है?
7. कवि के आश्चर्य का कारण लिखिए।

करौं कुबत जगु कुटिलता, तजौ न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल॥

शब्दार्थ : कुबत = निंदा। कुटिलता = दुष्टता, टेढ़ापन। तजौ = त्याग। दीन = गरीब। दीनदयाल = दिनों पर दया करने वाले, भगवान। हिय = हृदय। बसत = बसना, रहना। त्रिभंगी = तीन जगह (गर्दन,कमर और पैर में) बल पड़ना, टेढ़ा होना।

संदर्भ : यह दोहा बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है। इसमें भक्त विनोद भाव से श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप का वर्णन करता है।

प्रसंग : भक्ति और प्रकृति पर आधारित इस दोहे में कवि बिहारी ईश्वर को पाने के लिए अपना स्वभाव बदलना नहीं चाहता। वह अपने आराध्य का अनन्य भक्त है। बिहारी ने इस दोहे में ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है।

व्याख्या : कवि कहता है कि हे कृष्ण! आपको पाने की इच्छा इतनी तीव्र हो गई है कि मैं संसार की सारी बुराइयाँ करता रहूँगा और अपनी नीचता नहीं छोड़ूँगा। इसके लिए चाहे संसार मेरी निंदा ही क्यों न होती रहे। हे प्रभु! यदि मैंने अपनी कुटिलता छोड़ दी तो मेरा मन जो टेढ़ा हो गया है वह सीधा हो जाएगा। टेडी वस्तु सीधी वस्तु में कैसे समा सकती है? अत: हे कृष्ण! आपका त्रिभंगी रूप मेरे सीधे मन में कैसे निवास करेगा। यदि मैंने अपना चित्त सीधा किया तो आपकी त्रिभंगी मुद्रा को कष्ट होगा। यदि मैं सीधा हो जाता हूँ तो आपके इस अनोखे और मनमोहक रूप से मैं वंचित हो जाऊँगा अत: मुझे अपना टेढ़ा होना स्वीकार्य है। मैं आपके इस रूप को सदैव अपने मन में रखना चाहता हूँ। इसके लिए चाहे मुझे कुटिल ही क्यों न होना पड़े। आपसे प्रार्थना है कि हे त्रिभंगी लाल! आप मेरे हृदय में निवास कीजिए।

विशेष : कृष्ण मधुबन में कदंभ के पेड़ तले भाव विभोर होकर बाँसुरी बजाते हैं तब त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होते हैं। यह रूप कवि को बहुत अच्छा लगता है अत: वे अपने मन को टेढ़ा रखना चाहते हैं जिससे भगवान कृष्ण का अनोखा रूप उनके मन में बस जाय। ब्रज भाषा, सामासिक शब्दों का अच्छा चित्रण हुआ है।

बोध-प्रश्न

8. करौं कुबत का अर्थ लिखिए।

9. कवि कुटिल प्रवृत्ति क्यों नहीं छोड़ना चाहता?
10. त्रिभंगीलाल किसे कहा गया है?
11. कवि ईश्वर से क्या प्रार्थना कर रहा है?

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग नायक, जग बाइ॥

शब्दार्थ : कब कौ = बहुत समय से। टेर = पुकार। दीन रट = दीनता से भरी रट। सहाइ = सहायता, मदद। जग = दुनिया। जगत-गुरु = जगत के गुरु। जगनायक = संसार के नेता। बाइ = वायु।

संदर्भ : यह दोहा बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है। इस दोहे में बिहारी ने श्रीकृष्ण को उलाहना देते हुए संसार के रंग में रंगने का आरोप लगाया है।

प्रसंग : एक भक्त की पुकार है। बिहारी ने कृष्ण से सहायता की गुहार लगाई है। इस दोहे में सखा भाव निहित है अत: भक्त अपने भगवान से निःसंकोच उपालंभ अर्थात् शिकायत करता है।

व्याख्या : इस दोहे में कविवर बिहारी कहते हैं कि हे श्याम! अर्थात् कृष्ण मैं दीन दुखी कब से आपको पुकार रहा हूँ। लेकिन आप मेरी सहायता ही नहीं करते। हे! दीनों के नाथ, जगतगुरु आप मेरी सुधि नहीं ले रहे हैं। मेरी सहायता नहीं कर रहे हैं। मुझे आपका ही सहारा है। आपसे दया, कृपा की प्रार्थना कर रहा हूँ और आप हैं कि मेरा निवेदन नहीं सुन रहे हैं। हे कृष्णचंद्र! ऐसा लग रहा है कि आपको भी इस संसार की हवा लग गई है अर्थात् इस संसार की भाँति आपने भी मुँह फेर लिया है। यहाँ तो उल्टा ही हो गया कि जगत की हवा जगतगुरु को ही लग गई। जबकि जगद्गुरु और जगनायक का प्रभाव तो शिष्यों और सामान्य जनों पर पड़ना चाहिए। यहाँ तो आप ही समाज की नकारात्मकता के शिकार हो गए।

विशेष : सामान्यतया ईश्वर, जगतगुरु सब निर्लिप्त होते हैं। इस दोहे में कवि अपने आराध्य से इस तरह मिल गया है कि शिकायत करने, खरी-खरी सुनाने से भी नहीं हिचकता। कवि बिहारी के इस दोहे मेंसखा एवं दास्य भाव की भक्ति झलकती है।
युग्म-शब्द, तुकांत शब्दों तथा सामासिक शब्दावली अच्छा वर्णन हुआ है। लोकोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

बोध प्रश्न

12. कवि किससे शिकायत कर रहा है और क्यों?
13. 'जग की हवा लग गई है' से क्या तात्पर्य है?

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपनैं-अपनैं बिरद की, दुहूँ निबाहन लाज॥

शब्दार्थ : बाढ़ी बहस = बहस जोर पकड़ गई है। बिरद = यश, नेकनामी। दुहूँ = दोनों को। निबाहन = निबाह करना। लाज = लज्जा। जदुराज = श्रीकृष्णचंद्र।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इसमें कृष्ण के उद्धारक रूप का वर्णन किया गया है। भक्त बड़ी चतुराई से कृष्ण को ललकारता है, जिससे वे ताव में आकर भक्त को भवसागर से तार दे।

व्याख्या : इस दोहे में कवि कहते हैं कि हे यदुराज! मुझमें और आप में अब तो बहस छिड़ गई है। देखते हैं कौन जीतता है। अपने-अपने गुण अर्थात् मैं पतित हूँ किंतु अपने गुण की लज्जा का निर्वाह करने हेतु पाप छोड़ने वाला नहीं हूँ और आप तो पतित-पावन हैं। आपके नाम स्वरूप आप मेरा उद्धार करेंगें ही। लेकिन मेरा उद्धार कोई नहीं कर सकता। तुम्हारा यश इस बात के लिए है कि तुम पतितों को तारते हो अर्थात् आप मुझे तारने, मेरा उद्धार करने पर तुले हो और मैं पाप करने पर। अब देखते हैं कि कौन अपने नाम की लाज बचाता है।

विशेष : भक्त भगवान को उकसाकर अपना उद्धार करवा लेना चाहता है।

बोध-प्रश्न

14. किसके बीच बहस छिड़ गई?
15. कवि अपने गुण के बारे में क्या बता रहे हैं?
16. यदुराज किसे कहा गया है?

हरि कीजति बिनती यहै, तुमसौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‌यौ रह्यौ, पर्‌यौ रहौं दरबार॥

शब्दार्थ : हरि = विष्णु। बिनती = विनय। तुमसौं = तुम जैसा। जिहिं तिहिं = जैसे-तैसे। भाँति = तरह। डर्‌यौ रह्यौ = पड़ा रहूँ। दरबार = राजसभा ।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है ।

प्रसंग : भक्त भगवान श्रीकृष्ण से अपनी छत्रछाया में रहने की इच्छा हेतु निवेदन कर रहे हैं।

व्यख्या : हे कृष्ण! आपसे मैं सहस्त्र बार विनती करता हूँ कि किसी भी तरह मैं आपसे अलग न हो होऊँ। चाहे जैसे भी हो, आपकी सेवा में चाहे जिस दशा में हो, बस मैं आपके दरबार में सदा पड़ा रहना चाहता हूँ। हे कृपानिधान! मैं आपकी शरण में रहना चाहता हूँ। यदि आप अपने निकट न रहने देना चाहें तो ऐसा प्रबंध कर दीजिए कि मैं कम से कम आपके दरवाजे पर ही पड़ा रहूँ अर्थात् मुझे आपका सानिध्य चाहिए। मुझे मुक्ति की कोई अभिलाषा नहीं है।

विशेष : दास्य भाव की भक्ति है।

बोध प्रश्न

17. सहस्र बार विनती से क्या तात्पर्य है?
18. कवि की क्या इच्छा है?
19. कवि भगवान से कैसे प्रबंध की इच्छा व्यक्त करता है?

काव्यगत विशेषताएँ

कला एवं भावपक्ष की दृष्टि से बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' रीतिकालीन साहित्य में विशेष महत्व रखती है। बिहारी के काव्य का मुख्य विषय शृंगार है। शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्ष प्रभावशाली हैं। कवि की भक्ति भावना के आधार राधा-कृष्ण हैं। सतसई का आरंभ मंगलाचरण से होता है। बिहारी सतसई में शृंगार के दोहों की प्रधानता होते हुए भी भक्ति और नीति के दोहे भी हैं। बिहारी की भाषा ब्रज है। इसमें पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसी आदि शब्द भी मिलते हैं। बिहारी का शब्द चयन सुंदर, सटीक तथा सार्थक है। बिहारी की भाषा में मुहावरों का भी सुंदर चित्रण हुआ है।

काव्य के शिल्प को श्रेष्ठ बनाने के लिए तथा भावोद्दीपन के लिए विशेषणों के प्रयोग से काव्य तथा भाषा शिल्प चित्रात्मक हो उठता है। वस्तु के प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया के लिए विशेषण का चुनाव किया जाता है। इस तरह का बेजोड़ प्रयोग बिहारी के दोहों में निहित है। उदाहरण के लिए बंक विलोकनि, अनियारे नयन, निगोड़े नयन आदि। डॉ.नगेंद्र का कहना है कि "बिहारी में सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व को ग्रहण कर शब्दबद्ध करने की जैसी अपूर्व क्षमता है, वैसी देव अथवा रीतियुग के किसी कवि में नहीं है।"

भक्ति और नीति के दोहों में प्रसाद गुण पाया जाता है। बिहारी सतसई दोहा छंद का तथा समास शैली का उत्कृष्ट नमूना है। दोहे जैसे छोटे छंद में कई भाव एक साथ उभर कर आते हैं। यही बिहारी की विशेषता है।

हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग अर्थात् 'भक्तिकाल' के बाद रीतिकाल का आविर्भाव हुआ। इसे उत्तर मध्यकाल भी कहते हैं। आचार्य शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' की संज्ञा दी। इस काव्य धारा का विकास रीति के आधार पर हुआ। यह राजे-रजवाड़ों, सामंती काल आर्थात विलासिता का काल था। रीतिकाल को इसकी विशेषता के अनुरूप अनेक नामों जैसे - शृंगार काल और अलंकृत काल भी कहा जाता है। रीतिकाल में साहित्य स्वान्तः सुखाय तथा परहित से दूर मनोरंजन और प्रेम तक सीमित रहा है। फलस्वरूप इस काल के कवियों को दरबारों में आश्रय मिलने लगा अत: वे दरबारी कवि कहलाने लगे।

भक्ति के बहाने राधाकृष्ण की आड़ में शृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, नायिका भेद, नायिका के नखशिख अंगों पर कवियों की तुलिका चलने लगी। इस काल में साहित्य के भाव पक्ष की अपेक्षा कलापक्ष मुखर हुआ है साथ ही प्रबंध काव्य के स्थान पर मुक्तक काव्य की रचना हुई।

रीति का अर्थ शैली भी है। रीतिकाल की प्रमुख भाषा ब्रज रही। कोमलता और मधुरता के कारण ब्रज भाषा सभी का कंठहार बनी। रीतिकाल के प्रमुख कवियों में भूषण, मतिराम, केशवदास, रसलीन, पद्माकर, सेनापति, घनानंद, देव तथा बिहारी आते हैं। रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ तथा लोकप्रिय कवि बिहारी को माना जाता है। जयपुर के राजा जयसिंह नवविवाहिता के प्रेम में डूबे थे जिससे राजकाज की उपेक्षा हो रही थी अत: बिहारी ने एक दोहा लिखकर महाराजा के पास भेजा -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सौं बिन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

इससे राजा जयसिंह की आँखे खुली। उन्होंने प्रसन्न होकर बिहारी को प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्राएँ देने का संकल्प किया। बिहारी की ख्याति का आधार उनके द्वारा रचित 'सतसई' है। बिहारी को शृंगार का कवि कहा जाता है क्योंकि उन्होंने अलंकार, रस, भाव, वक्रोक्ति, ध्वनि, नायिका भेद, गुण रीति आदि को ध्यान में रखते हुए दोहों की रचना की किंतु रीति के अतिरिक्त सतसई में नीति तथा भक्ति के दोहे भी हैं।

बिहारी सजग कलाकार थे। बिहारी का शब्द चयन कमाल का है। अहेरी नयन, निगोड़े नयन आदि के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि बिहारी केवल दरबार, राजसी वैभव तक ही सिमित नहीं थे बल्कि उन्हें गाँव, देहात की भी अच्छी जानकारी थी। सामान्य जनजीवन से भी परिचित थे।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

बिहारी को भक्ति विरासत में मिली। रीति सिद्ध कवियों में बिहारी का नाम सर्वप्रथम आता है। बिहारी रीतिकाल के लोकप्रिय कवि हैं। बिहारी राधाकृष्ण के उपासक थे। सतसई के आरंभ में ही मंगलाचरण का दोहा - "मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।" बिहारी भक्ति भावना को दर्शाता है। राधाकृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ प्रेम तथा आदर भाव था। 'मेरी भव बाधा..' में राधा की आराधना की गई है तो 'मोर मुकुट कटि काछनी ..' में कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति है। बिहारी के दोहों के शाब्दिक अर्थ व्यापकता लिए हुए हैं। उनका अभिव्यक्ति पक्ष बहुत मजबूत है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में बिहारी के दोहों में 'एक सफल मुक्तककार की कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति' दोनों विद्यमान हैं।

कवि बिहारी के काव्य का प्रमुख रस शृंगार है। इसमें शृंगार के दोनों पक्षों का समावेश है। संयोग और वियोग। बिहारी के दोहों में वियोग का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हुआ है। माना जाता है कि बिहारी पर सूफी कवियों की ऊहात्मक पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, जिसमें विरह का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता है। बिहारी सतसई की उत्कृष्टता ने बिहारी को हिंदी साहित्य में अमर बना दिया है। इस ग्रंथ की अनेक टीकाएँ हुईं। यह इसकी ख्याति का प्रमाण है। इनके ग्रंथों की संख्या अधिक नहीं है। काव्य की गुणवत्ता उसे पूर्णता प्रदान करती है। अपने काव्य गुण के कारण ही बिहारी महाकवि की श्रेणी में आते हैं।

बिहारी को मूलतः शृंगारी कवि माना जाता है। उनकी रचनाओं में षट्ऋतु वर्णन भी बहुत सुंदर हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि वे सूक्ष्म द्रष्टा थे और जागरूक कवि थे। उन्होनें अपने परिवेश के इर्द-गिर्द होने वाली घटनाओं, सामान्य विषयों तथा अनुभवों को अपने दोहों के रूप में प्रस्तुत किया। बिहारी ने अपने दोहों में मूल्यों, नैतिकता, प्रकृति और मनुष्य के गुण दोषों से भी अवगत कराया है। दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव, धन का अहंकार, पूजा में बाहरी आडंबर, अवसर के अनुसार भक्ति, सत्पुरुष की विनम्रता, मर्यादा की प्रतिष्ठा आदि का बिहारी अपने नीति प्रधान में दोहों में उल्लेख किया है। अत: स्पष्ट होता है कि बिहारी के दोहों में रीति, नीति और भक्ति का संगम है।

बिहारी ने लोक में प्रचलित विकारों पर कुठाराघात भी किया। जब राजा जयसिंह भोग-विलास में राज्य को भुला चुके थे, तब बिहारी ने ही राजा जयसिंह को उनके कर्तव्य के प्रति सचेत करने के लिए एक दोहा लिख भेजा। इस दोहे से राजा को अपनी गलती का अहसास तो हुआ ही, वे बिहारी की काव्य कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उनके प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी देने का वचन भी दिया। समाज में नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ करना बिहारी का मुख्य उद्देश्य नहीं था, लेकिन जो भी थोड़े से नीतिपरक दोहे उन्होनें रचे हैं, वे समाज को सचेत करने में समर्थ हैं। उनका लोक के साथ गहरा जुड़ाव था, अत: बिहारी सतसई के दोहों में लोक संस्कृति के विविध पक्ष देखे जा सकते हैं। निष्कर्षतः, बिहारी रीतिकाल के सशक्त हस्ताक्षर हैं। आज भी बिहारी के दोहे पढ़े, पढ़ाए जाते हैं तथा लोक जीवन में अपनाएँ जाते हैं - यही बिहारी के दोहों की प्रासंगिकता है।

बोध प्रश्न

20. बिहारी की काव्यभाषा की क्या क्या विशेषताएँ हैं?
21. बिहारी के दोहों की क्या प्रासंगिकता है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! बिहारी की इन भक्तिपरक रचनाओं को पढ़ते समय मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बिहारी को तो रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है। फिर, उनकी भक्तिपरक रचनाओं को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। आप जानते हैं कि जिस प्रकार भक्तिपरक रचनाएँ भक्तिकाल की मुख्य प्रवृत्ति हैं, उसी प्रकार शृंगारपरक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति है। लेकिन इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि इन कालों में इन मुख्य प्रवृत्तियों के अलावा कुछ और रचा ही नहीं गया। बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि भक्तिकाल में शृंगार निरूपण और रीतिकाल में भक्ति निरूपण गौण प्रवृत्तियों के रूप में विद्यमान थे। इसलिए बिहारी की भक्तिपरक रचनाओं को देखकर अचरज नहीं होना चाहिए।

एक भ्रामक धरण के बारे में आपको यहाँ जान लेना चाहिए। वह यह है कि आम तौर पर भक्ति और शृंगार को विरोधी मान लिया जाता है। यह मान्यता उचित नहीं है। रस की दृष्टि से भक्ति और शृंगार दोनों एक ही प्रकार के रस हैं और दोनों का समावेश शृंगार रस में ही होता है। शृंगार रस का स्थायी भाव 'प्रेम' है। इसी प्रकार भक्ति रस का स्थायी भाव 'परम प्रेम' है। नारदीय भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेम रूपा' कहा गया है। अर्थात् प्रेम की सबसे उत्कट और उदात्त अवस्था का नाम भक्ति है। शृंगार और भक्ति में रस के अंगों की दृष्टि से यह संबंध है कि जब आलंबन या प्रेमपात्र कोई मनुष्य (स्त्री या पुरुष) होता है तो वहाँ शृंगार रस होता है। लेकिन जब यह आलंबन या प्रेम पात्र आराध्य या परमात्मा होता है तो वहाँ भक्ति रस होता है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि शृंगार भक्ति का प्रथम चरण है। अतः शृंगार और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं हैं। इन दोनों को विरोधी समझ लेने के करण ही इस प्रकार के संदेह जन्म लेते हैं कि विद्यापति शृंगारी हैं या भक्त। सूक्ष्म रूप से विचार करने पर पता चलता है कि वे शृंगारी भी हैं और भक्त भी। इसी प्रकार बिहारी भी शृंगार रस के कवियों के शिरमौर होते हुए भक्तिपरक दोहों के रचनाकार भी हैं। इसलिए उनकी भक्ति संबंधी रचनाओं को देखकर चौंकने के बजाए यह समझना चाहिए कि उनकी शृंगार भावना इन रचनाओं में उदात्त रूप धरण कर रही हैं। शृंगार का यह उदात्तीकरण मनोविज्ञान के भी अनुकूल है। अगर फ्रायड के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह 'इड' अथवा 'लिबिडो' के दैहिक स्तर से उठकर अपने चेतना को 'सूपर ईगो' के उदात्त (सब्लाइम) स्तर तक ले जाना है।

बिहारी की भक्तिपरक रचनाओं को बिहारी या अन्य रीतिकालीन कवियों की भक्तिपरक रचनाओं को भक्तिकाल के प्रभाव और अवशेष के रूप में तो देखा जाता है। साथ ही इस प्रवृत्ति को इस रूप में देखा जा सकता है कि रीतिकाल के ये कवि आम तौर पर राजाओं के आश्रित अथवा दरबारी कवि थे। दरबारी संस्कृति के अनुरूप ये मनोरंजन प्रधान और उत्तेजक कविताएँ रचते थे। इन कविताओं में नायिकाओं के विविध रूपों का वर्णन किया जाता था। नायिकाओं का नख-शिख वर्णन, उनकी विविध प्रकार की विलासितापूर्ण चेष्टाएँ और मनोभाव इन रचनाओं का केंद्रीय प्रतिपाद्य था। आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए ऐसा काव्य रचते-रचते रचनाकार के मन में शृंगार से ऊब भी पैदा होती होगी और अपराध भाव भी। ऐसे में अपने आप को कुटिल और

दोषी कहते हुए परमात्मा की शरण में आत्म निवेदन की इच्छा होती होगी। रीतिकवियों की भक्तिपरक रचनाएँ इस मानसिकता की भी उपज हो सकती हैं। आपने बिहारी के जो भक्तिपरक दोहे पढ़े हैं, उनमें आपने देखा होगा कि कवि अपने टेढ़ेपन का उल्लेख करते हुए कृष्ण के समक्ष कृपा की गुहार लगाते हैं। राधा और कृष्ण को शृंगार के साथ-साथ भक्ति का आलंबन बनाना वैसे भी परंपरा से स्वीकृत है।

18.4 पाठ-सार

बिहारी सतसई में भक्ति, नीति और शृंगार के दोहे हैं। सतसई का आरंभ राधाजी की स्तुति से हुआ है। बिहारी चतुर राधा से अपने सांसारिक दुखों को दूर करने की विनती करते हैं। इनकी भक्ति कृष्ण और राधा के प्रेम से ओतप्रोत है। वे प्रभु के रंग में रंग गए हैं। उनका अनुरागी चित्त श्याम के भक्ति रूपी रंग में डूब गया है जिससे उनका मन निर्मल हो गया है। कवि ने जगत की परवाह न करते हुए कहा है कि आपके त्रिभंगी रूप को अपने मन में बसाने के लिए मैं अपनी कुटिलता को नहीं छोड़ सकता। बिहारी को लोक जीवन का भी गहरा अनुभव था। वे कृष्ण से शिकायत करते हैं कि मैं कब से कृपा हेतु गुहार लगा रहा हूँ किंतु हे जगनायक! आप मेरी प्रार्थना नहीं सुन रहे हैं। क्या आपको भी इस दुनिया का असर हो गया है? कवि कृष्ण को चुनौती देते हुए कहते हैं कि हे कृष्ण! हम दोनों अपने गुणों की लाज बचाने के लिए कटिबद्ध हैं, देखते हैं कि कौन विजयी होता है? कवि ने दीनता भरे स्वर में कहा है कि हे प्रभु! मैं आपसे हजार बार अनुरोध करता हूँ कि मुझे अपनी शरण में पड़ा रहने दीजिए। कभी उपालम्भ तो कभी दीनता। इससे स्पष्ट होता है कि बिहारी के दोहों में सखा एवं दास्य भाव की भक्ति झलकती है।

18.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. बिहारी सतसई शृंगार रस का अथाह समुद्र है जिसमें नीति और भक्ति के मोती भी मिलते हैं।
2. कविवर बिहारी की काव्य भाषा उत्कृष्ट है। इसीलिए यह माना जाता है कि उनका भाषा पर सच्चा अधिकार था।
3. बिहारी को 'गागर में सागर' भरने वाला कवि माना जाता है।
4. बिहारी के दोहों से उनके दरबार और लोक जीवन के ज्ञान का भी पता चलता है।
5. बिहारी राधाकृष्ण के उपासक थे।

18.6 शब्द संपदा

1. अनायास = बिना प्रयत्न के, आसानी से
2. आविर्भाव = प्रकट होना, उत्पत्ति
3. उत्कृष्ट = श्रेष्ठता, उत्तम
4. उद्धारक = उद्धार करनेवाला, संकटमोचन
5. उपालम्भ = उलाहना, शिकायत
6. कटिबद्ध = तत्पर, उद्यत
7. टीकाएँ = कठिन पदों या वाक्यों आदि की सरल भाषा में व्याख्या करना
8. तीव्र = तीक्ष्ण, तेज़
9. नखशिख = पैर के नाखून से सिर तक
10. प्रगाढ़ = गहरा, बहुत गाढ़ा
11. प्रफुल्लित = हँसता हुआ, खिला हुआ
12. विभक्त = बाँटा हुआ, अलग
13. सान्निध्य = निकटता, सामीप्य

18.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'कवि बिहारी रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं।' इस कथन के आलोक में अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. बिहारी की भक्ति भावना पर प्रकश डालिए।
3. 'बिहारी को गागर में सागर भरने वाला कवि माना जाता है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
4. बिहारी के दोहों की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।/ जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय॥ इस दोहे की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

2. मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।/ अपनैं-अपनैं बिरद की, दुहूँ निबाहन लाज॥ इस दोहे की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

3. बिहारी की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

4. बिहारी की लोकप्रियता के कारणों के बारे में लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. बिहारी किस काल के कवि हैं? ( )
(अ) वीरगाथा काल (आ) रीतिकाल (इ) भक्तिकाल

2. बिहारी सतसई की भाषा कैसी है? ( )
(अ) ब्रज (आ) अवधी (इ) बुन्देलखंडी

3. कब कौ टेरतु ...... जग बाइ। में कवि ने किस पर कटाक्ष किया है? ( )
(अ) नायक पर (आ) नेता पर (इ) कृष्ण पर

4. स्याम रंग में रंगने पर चित्त कैसा हो रहा है? ( )
(अ) काला (आ) गोरा (इ) उज्ज्वल

5. बिहारी सतसई की काव्य शैली कैसी है? ( )
(अ)प्रबंध (आ) मुक्तक (इ) प्रबंध मुक्तक

6. बिहारी के काव्य का मुख्य विषय क्या है? ( )
(अ)वीर (आ) प्रबंध (इ) मुक्तक

7. बिहारी को एक सफल मुक्तककार किसने कहा? ( )
(अ) विश्वनाथ प्रताप मिश्र (आ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (इ) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. बिहारी सतसई में ....हैं।

2. सतसई का आरंभ ....से होता है।

3. बिहारी के दोहे .... में सागर भरने का भाव रखते हैं।

4. भक्ति के दोहों में ....गुण पाया जाता है।

5. बिहारी का काव्य .... भाषा के कारण जीवंत हो उठा है।

III सुमेल कीजिए

(1) बिहारी	(अ) शैली
(2) शृंगार	(आ) राधाकृष्ण
(3) बिहारी के आराध्य	(इ) सतसई
(4) रीति	(ई) रस

18.8 पठनीय पुस्तकें

1. बिहारी का नया मूल्यांकन, बच्चन सिंह.

2. बिहारी सतसई, प्रो.बिराज एम.ए.

3. बिहारी सतसई, सं. आबिद रिजवी.

इकाई 19 : शृंगार वर्णन

रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 मूल पाठ : शृंगार वर्णन
  (क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
  (ख) अध्येय दोहे
  (ग) विस्तृत व्याख्या
  (घ) समीक्षात्मक अध्ययन
19.4 पाठ सार
19.5 पाठ की उपलब्धियाँ
19.6 शब्द संपदा
19.7 परीक्षार्थ प्रश्न
19.8 पठनीय पुस्तकें

19.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आप यह जानते ही हैं कि हिंदी साहित्य के इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिए चार कालों में विभाजित किया जाता है। यदि आदिकाल हिंदी साहित्य का जन्म काल है और भक्तिकाल या पूर्व मध्यकाल उसका यौवन तो उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल उसकी पूर्ण प्रौढ़ता का द्योतक है। रीति ग्रंथों के रचनाकार भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्यति से निरूपण करना। बिहारी (1595-1663) रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। इनकी प्रमुख कृति 'बिहारी सतसई' में 700 से अधिक दोहे हैं। बिहारी की 'सतसई' एक मुक्तक रचना है।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार समस्त यूरोप में 'बिहारी सतसई' जैसी कोई दूसरी रचना नहीं है। तुलसीदास के ग्रंथ 'रामचरितमानस' के पश्चात यदि किसी ग्रंथ को लोकप्रियता मिली तो वह यही 'सतसई' है। इस पुस्तक की 54 से अधिक टीका (व्याख्याएँ) मिलती हैं। सतसई और मुक्तक परंपरा के कवि बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिकाभेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण, आदि का ध्यान रखते हुए सुंदर दोहे रचे हैं। इनमें आलंकारिक चमत्कार और भाव सौंदर्य दोनों ही हैं। प्रेम और कला दोनों का समन्वय करते बिहारी के दोहे 'गागर में सागर' भरते हैं। शृंगार रस से ओत प्रोत इन दोहों में भक्ति और नीति मिलकर एक अद्भुत त्रिवेणी बनाते हैं।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप बिहारी के कुछ दोहों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप –

- रीतिकालीन कवि बिहारी के शृंगार प्रधान अचूक दोहों से परिचित होंगे ।
- भक्ति के साथ शृंगार रस की छटा का अनुभव कर सकेंगे ।
- ब्रजभाषा की लय, गति, शब्द-संपदा से परिचित होंगे।
- कवि बिहारी की काव्य कला की विशेषता को समझ सकेंगे।
- निर्धारित दोहों की संदर्भ और प्रसंग सहित व्याख्या कर सकेंगे ।

19.3 मूल पाठ : शृंगार वर्णन

(क) अध्येय कविता का परिचय

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी ने युग के चलन के अनुसार रसों, विशेषकर शृंगार रस और अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से बहुत ही सरस और हृदयहारी दोहे प्रस्तुत किए। बिहारी के ये दोहे मुक्तक कहे जाते हैं। मुक्तक उस रचना को कहते हैं जो अपना अर्थ व्यक्त करने के लिए स्वतः समर्थ हो। इस इकाई में बिहारीलाल द्वारा रचित कुछ दोहों को 'शृंगार' शीर्षक से सजाकर प्रस्तुत किया गया है। इन दोहों में राधा, कृष्ण, सखी, सखा आदि के बहाने नपे तुले शब्दों में रूप वर्णन और युवावस्था के सुंदर चित्र उकेरे गए हैं। जब हम बिहारी सतसई के दोहों को उनके भाव पक्ष के अवलोकन के लिए पढ़ते हैं तो इनमें शृंगार, भक्ति और नीति का निरूपण अधिक मिलता है। वस्तुतः शृंगार रस युक्त दोहे अधिक संख्या में हैं। यहाँ संकलित दोहों में शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग - दृष्टिगोचर होगा। साथ ही कवि की अलंकार योजना का भी परिचय होगा।

(ख) अध्येय दोहे

1. बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ ।
   सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥
2. कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात ।
   भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात ॥
3. इति आवत चलि जात उत, चली छ-सातक हाथ ।
   चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ ॥

4. लिखन बैठि जाकी छबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥

5. अंग अंग नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह ।
दिया बढ़ाए हू रहै, बड़ो उज्यारो गेह ॥

6. तौ पर वारौं उरबसी, सुन राधिके सुजान ।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी समान ॥

निर्देश : 1. इन दोहों का, लय पर ध्यान केंद्रित करते हुए सस्वर वाचन कीजिए।
2. इन दोहों का, अर्थ पर ध्यान केंद्रित करते हुए मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ ।
सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥

शब्दार्थ : बतरस = बात सुनने और करने का आनंद। लाल = ललन, नायक (यहाँ श्री कृष्ण)। मुरली = बाँसुरी। धरी = रखी। लुकाय = छिपाकर। सौंह करे = सौगंध लेती है (कसम खाती है)। भोंह = भोंहो में। देंन कहे = देने के लिए कहती है। नटि जाय = नट जाती है (मुकर जाती है)।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में कवि ने गोपियों द्वारा कृष्ण की बाँसुरी चुराए जाने का वर्णन किया है।

व्याख्या : गोपियों को कृष्ण से बात करना अच्छा लगता है। उन्हें कृष्ण की बातों में रस या आनंद प्राप्त होता है। गोपियों ने कृष्ण की मुरली इसलिए छुपा दी। ताकि इसी बहाने उन्हें कृष्ण से बातें करने का मौका मिल जाए। साथ में गोपियाँ कृष्ण के सामने नखरे भी दिखा रही हैं। वे अपनी भौहों से तो कसमे खा रही हैं लेकिन उनके मुँह से ना ही निकलता है। इस प्रकार वे कृष्ण से बात करने का अवसर निकाल ही लेती हैं।

विशेष : पर्याय स्वभावोक्ति अलंकार

बोध प्रश्न

1. कृष्ण की मरली क्यों छिपा दी जाती है और उसे कौन छिपाता है?
2. बातचीत को 'बतरस' क्यों कहा गया है?
3. गोपिकाएं सौगंध किस लिए खा रहीं हैं?

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात॥

शब्दार्थ : क़हत = कहना। नटत = इंकार करना। रीझत = रीझना, प्रसन्न होना। खिझत = खीजना, मिलना। खिलत = खिल जाना। लजियात = शरमाना। भौन = भवन। नैनुने = नयनों में।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : बिहारी ने इस दोहे में नायक-नायिका की विभिन्न दैनिक गतिविधियों को आधार बनाकर एक ही पंक्ति में सात क्रियाओं का प्रयोग करके एक ऐसा शब्द चित्र उपस्थित किया है जिसे पाठक कभी नहीं भूल पाएगा।

व्याख्या : आशय यह है कि प्रिय ने चलने का संकेत किया किंतु प्रिया साथ चलने से मना कर देती है। इस भाव से प्रिय प्रसन्न हुए, रीझ गए और उस पर प्रिया खीझ गई। फिर मिलकर प्रिय प्रसन्न हुए। इस पर प्रिया लजा गई। हो सकता है, नायक नायिका या प्रिय प्रियतम को संकेत द्वारा अपनी बात इसलिए कहनी पड़ी क्योंकि वहाँ कोई अन्य उपस्थित था।

विशेष : इस दोहे की पहली पंक्ति में कारक दीपक अलंकार है। कारक दीपक अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक ही वाक्य में अनेक भाव दिखाई देते हैं। दूसरी पंक्ति में विभावना अलंकार है। इसलिए यह दोहा शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भाषा प्रयोग तो अद्‌भुत है ही। ऐसे ही प्रयोगों के कारण यह कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है।

बोध प्रश्न

4. इस दोहे में नायक नायिका संकेत में क्यों बात कर रहें हैं?
5. उन सात क्रियाओं के नाम गिनाइए जो नायक नायिका के द्वारा की गईं।
6. नायक और नायिका द्वारा संकेत की गई क्रियाओं को अलग अलग क्रमबद्ध कीजिये?
7. इन क्रियाओं के रूप ब्रज भाषा के हैं, इन्हें खड़ी बोली में क्रमशः लिखिए।

इति आवत चलि जात उत, चली छ-सातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ॥

शब्दार्थ : इति = इधर। उत = उधर। चलि = चलायमान और विचलित होकर या झोंके में पड़कर = खिंचकर। उसासनु = दुख के कारण निकली हुई आह भरी लंबी साँस, जिसे दीर्घ निश्वास कह सकते हैं।।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : प्रिय के वियोग में प्रिया की दशा बहुत शोचनीय हो गई है।

व्याख्या : इस दोहे के द्वारा कवि ने एक ऐसी नायिका का चित्र प्रस्तुत किया है जिसका नायक कहीं परदेश चला गया है। वियोग की अवस्था में उसकी दशा ऐसी हो गई है कि कभी वह इधर आती है, कभी उधर जाती है। फिर छह साथ कदम आगे जाकर अनमनी सी वापिस लौट आती है। हिंडोले में जैसे कोई इधर उधर डोलता है बस कुछ वैसे ही डोल रही है। नायिका की अन्यमनस्कता का चित्रण करते हुए बिहारी उसे हवा के झोंके में झूलते दिखाता है।
विशेष : इस दोहे में बिहारी का वियोग वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण है। भाव व्यंजना या रसव्यंजना के अतिरिक्त बिहारी ने वस्तुव्यंजना का सहारा भी बहुत लिया है। यहाँ वस्तुव्यंजना औचित्य की सीमा पार कर गई है। यही कारण है कि उसमें कई आधुनिक पाठकों को स्वाभाविकता प्रतीत नहीं होगी। विरह में व्याकुल नायिका की दुर्बलता का चित्रण करते हुए उसे घड़ी के पेंडुलम जैसा बना दिया गया है।

बोध प्रश्न

8. नायिका के वियोग का कारण क्या है?
9. नायिका की मनोदशा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
10. वियोग की अवस्था का चित्रण करने में कवि ने कैसे अतिशयोक्ति की है?
11. समस्त प्रसंग की 'ऊहा' बिहारी ने कैसे की है?

लिखन बैठि जाकी छबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

शब्दार्थ : छवी = चित्र। गरूर = घमंड। केते = कितने। चितेरे = चित्रकार। कूर = बेवकूफ।
संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।
प्रसंग : इस दोहे में कवि उस चित्रकार की मूर्खता पर हँस रहा है जो किसी सुंदरी का चित्र बड़े अभिमान से बनाने बैठता है।
व्याख्या : यौवन से भरपूर नायिका की सखी नायक से नायिका के अद्भुत रूप सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है - उस नायिका के रूप का क्या कहना! जिसके चित्र को अत्यंत गर्व और अभिमान के साथ बनाने के लिए बैठकर संसार के कितने चतुर चित्रकार बेवकूफ बन गए - उनसे चित्र नहीं बन सका! दूसरे शब्दों में यह सखी नायक को नायिका की सुंदरता के विषय में बताते समय एक दृष्टांत देकर अपना पक्ष प्रस्तुत कर रही है जिससे नायक नायिका के बारे में और अधिक जानने को उतावला हो जाए और मिलन का अभिलाषी हो।

विशेष : इस दोहे में कवि ने अतिशयोक्ति से तो काम लिया ही है, भाषा के स्तर पर भी अरबी-फारसी के कई शब्दों का प्रयोग करके अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। गरूर, गरब ऐसे ही शब्द हैं। 'क्रूर' शब्द का एक अर्थ होता है - कठोर और दूसरा प्रचलित अर्थ है - विकृत बुद्धि वाले।

बोध प्रश्न

12. क्या नायिका की सखी नायक को नायिका का चित्र दिखा रही है?
13. यदि हाँ तो क्यों? यदि नहीं तो क्यों नहीं?
14. नायिका का चित्र बनाना क्यों कठिन है?
15. जगत के चतुर चितेरों को भी मूढ़ बनना पड़ा, कवि ने ऐसा क्यों कहा?

अंग अंग नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह।
दिया बढ़ाए हू रहै, बड़ो उज्यारो गेह॥

शब्दार्थ : नग = आभूषणों में जड़े नगीने। दीपसिखा = दीपशिखा, दीपक की लौ। दिया बढ़ाए हू = दीपक को बुझाने पर भी। उज्यारो = उजाला, उजियाला।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : प्रिया के सौंदर्य का वर्णन करना कठिन है। उसके अंग अंग की चमक से आँख देखना ही भूल गई हैं।

व्याख्या : प्रियतमा के अंग अंग हीरे मोती की तरह जगमगाते हैं। दीपक की शिखा अर्थात् दीपशिखा सी देह इतनी चमकदार है कि घर में दीपक को बुझा देने के बाद भी उजियारा रहता है। सखी इस दोहे में नायक के सामने नायिका के उज्जवल रूप की उसके गौर वर्ण की प्रशंसा करके नायक को नायिका के प्रति आकर्षित करना चाह रही है। वह यह भी संकेत कर रही है कि रात के समय में नायिका के घर में उसके रत्नजड़ित आभूषणों और उसके गौर वर्ण के कारण घर में अनायास ही प्रकाश बना रहता है।

विशेष : उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार। 'दीपक बढ़ाना' 'दीपक बुझाना' के अर्थ में समाज में प्रचलित शिष्ट प्रयोग है। जिस घर में बहुत से दर्पण लगे होते हैं।

बोध प्रश्न

16. नायिका की सुंदर छवि का वर्णन करने के पीछे सखी का उद्देश्य क्या है?
17. नायिका के घर में रात के समय दीपक बुझा देने के बाद भी प्रकाश बने रहने का कारण क्या है?
18. नायक ने जब नायिका के सौंदर्य की प्रशंसा सुनी तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी?

तौ पर वारौं उरबसी, सुन राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी समान॥

शब्दार्थ : तौ पर = निछावर करूँ। उरबसी = उर्वशी नामक अप्सरा। सुजान = चतुर। उर बसी = हृदय में बसी। ह्वै = होकर। उरबसी = गले में पहनने का एक आभूषण, माला या हार।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के सुप्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : कवि बिहारी ने शब्दों की जादूगरी दिखाते हुए नायिका की तुलना उर्वशी से की है और यह नायिका कोई और नहीं राधा जी हैं ।

व्याख्या : हे चतुर राधा! तुम ध्यान से मेरी बात सुनो। मैं तुम पर स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी को भी न्योछावर करती हूँ। तुम्हारे समक्ष उर्वशी का कोई मूल्य नहीं। उर्वशी केवल स्वर्ग में निवास करती है किंतु तुम हार के समान श्रीकृष्ण के हृदय (उर) में निवास करती (बसी) हो। उसका और तुम्हारा क्या मुकाबला। नायक (कृष्ण) के लिए नायिका (राधा) बहुमूल्य है, यह भाव है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई सखी या गोपिका राधा से यह सब कहकर कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को रेखांकित कर रही है।

विशेष : यहाँ एक ही शब्द 'उरबसी' (अप्सरा, हृदय पर पहनने का एक आभूषण) का दो बार प्रयोग हुआ है और दोनों बार अर्थ अलग है इसलिए यमक अलंकार है। यहाँ नायिका मान किए बैठी है। या कह सकते हैं कि राधा जी कृष्ण जी से नाराज हैं। और कृष्ण जी उन्हें मना रहें हैं।

बोध प्रश्न

19. राधा किसके उर में बसी है?
20. राधा को स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी से श्रेष्ठतर क्यों बताया गया है?
21. 'उरबसी' के कितने अर्थ हैं और उनका परस्पर संबंध क्या है?

काव्यगत विशेषताएँ

आपने बिहारी के कुछ दोहों का पाठ किया। आप भी देख सकते हैं कि बिहारी भक्तिकालीन कवियों के समान कृष्ण की आराधना और पूजा नहीं करते। उनके लिए कृष्ण का स्वरूप नायक या प्रिय अथवा प्रेमी का है और राधा उनके लिए प्रिया, नायिका और प्रेमिका। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कृष्ण इन दोहों में बिहारी के आराध्य नहीं अपितु उनके मित्र हैं। उनके साथ आराध्य और दास का संबंध नहीं। नितांत अनौपचारिक कृष्ण विविध रूपों में लीला करते हैं।

रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारीलाल के इन दोहों में कृष्ण शृंगार रस के नायक के रूप में उपस्थित हैं। शृंगार के दोनों पक्ष - वियोग और संयोग - यहाँ प्रस्तुत हैं। बिहारी ने नायक नायिका के दैनिक जीवन की सामान्य गतिविधियों को दोहों के शिल्प में इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है। एक दोहे की एक पंक्ति में कवि इशारे इशारे में सब कुछ कहला देता है - "क़हत, नतट, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात..."

यह तो आप इस इकाई में पढे दोहों से जान ही चुके होंगे कि बिहारी कवि की भाषा की प्रमुख विशेषता उसकी अलंकारिकता है। बिहारी ने केवल दोहा छंद का प्रयोग किया है। बिहारी का अध्ययन करते समय इस तथ्य पर ध्यान आता है कि अपनी अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक रूप में दोहा जैसे छोटे छंद को चुना है। दोहा रीतिकाल के ही कवित्त और सवैये की तुलना में बहुत छोटा छंद है। दोहा एक मात्रिक छंद है। दोहे में 13-11, 13-11 मात्राओं पर यति होती है। यति से चार चरण और दो पंक्तियाँ होती हैं।

बिहारी की भाषा ब्रज भाषा है। ब्रज भाषा तब शृंगार और प्रकृति चित्रण के लिए उपयुक्त मानी जाती थी। बिहारी के भाषा प्रयोग की व्यापकता भी मन मोह लेती है। संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों से लेकर सामान्य बोलचाल के शब्द प्रयोग के द्वारा वे अर्थ विस्तार करते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों के सुष्ठु प्रयोग से संक्षिप्तता आती है। इसे उनकी भाषा की लाक्षणिकता कहा जाएगा क्योंकि सामान्य से लगने वाले वर्णन और शब्द प्रयोग भी अर्थवत्ता, अर्थचातुर्य और अर्थगाम्भीर्य की सृष्टि करते हैं। बिहारी सतसई की इतनी टीकाएँ हुई हैं, इतने विद्वानों ने दोहों के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए हैं कि उनके दोहों के लिए निम्नलिखित दोहा उपयुक्त प्रतीत होता है -

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर॥

वस्तुतः इन दोहों का प्रभाव सदा रहता है और जितनी बार भी इन्हें कोई पढ़ता है वह एक नया अर्थ प्राप्त करता है।

बोध प्रश्न

20. बिहारी के दोहों में कृष्ण किस रूप में उपस्थित हैं?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

बिहारीलाल का जन्म 1603 ई. ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे (चतुर्वेदी) थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। जब बिहारी 8 वर्ष के थे तब इनके पिता इन्हे ओरछा ले

आये तथा उनका बचपन बुंदेलखंड में बीता। बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। वहाँ उन्हें बड़ा सम्मान प्राप्त था। राजा की और से इनको प्रत्येक दोहे पर स्वर्ण मुद्रा प्रदान की जाती थी। बिहारी का स्वर्गवास सन 1663 ई० के लगभग हुआ।

बिहारी की एकमात्र रचना सतसई (सप्तशती) है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें लगभग 719 दोहे संकलित हैं। कतिपय दोहे संदिग्ध भी माने जाते हैं। 'सतसई' में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा ही उस समय की एक सर्वमान्य काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। इसका प्रचार और प्रसार इतना हो चुका था कि इसमें अनेकरूपता का आ जाना सहज संभव था। बिहारी ने इसे एकरूपता के साथ रखने का सफल प्रयास किया ।

बिहारी सतसई की लोकप्रियता का मुख्य कारण है उसका अनेक स्वादों से भरा होना। किसी ने ठीक ही कहा है कि बिहारी की कविता मीठी रोटी जैसी है, जिधर से भी इसे खाया जाए यह बहुत स्वाद देती है। उसमें शृंगार, नीति, भक्ति, ज्ञान, आध्यात्मिकता, सूक्ति और नीति परंपरा आदि सबका सम्मिश्रण होना है। अतः भिन्न-भिन्न रुचि के व्यक्तियों के लिए यह अधिक प्रिय प्रतीत हुई है।

सतसई के दोहों को तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं - नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भावपरक, तथा शृंगारपरक। इनमें से शृंगारात्मक भाग अधिक है। कला-चमत्कार सर्वत्र प्राप्त होता है। शृंगारात्मक भाग में रूपांग सौंदर्य, सौंदर्योपकरण, नायक नायिका भेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है।

यद्यपि बिहारी के काव्य में शांत, हास्य, करुण आदि रसों के भी उदाहरण मिल जाते हैं, किंतु मुख्य रस शृंगार ही है। उनके दोहों में प्रतिपादित शृंगार रस ने रीतिकाल को शृंगार काल की संज्ञा दिलवाने में आधार भूमि का कार्य किया।

बिहारी की कविता का मुख्य विषय शृंगार है। उन्होंने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारी ने हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया हैं। उसमें बड़ी मार्मिकता है। संयोग का एक उदाहरण देखिए -

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सोह करे, भौंहनु हंसे दैन कहे, नटि जाय॥

बिहारी का वियोग वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण है। यही कारण है कि उसमें स्वाभाविकता नहीं है, विरह में व्याकुल नायिका की दुर्बलता का चित्रण करते हुए उसे घड़ी के पेंडुलम जैसा बना दिया गया है -

इति आवत चली जात उत, चली, छ सातक हाथ।

चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ॥

सूफी कवियों की ऊहात्मक पद्धति का भी बिहारी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वियोग की आग से नायिका का शरीर इतना गर्म है कि उस पर डाला गया गुलाब जल बीच में ही सूख जाता है -

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह विथा विलसात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटों छुयो न गात॥

छंद : बिहारी ने केवल दो ही छंद अपनाए हैं। दोहा और सोरठा। दोहा छंद की प्रधानता है। बिहारी के दोहे समास-शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। दोहे जैसे छोटे छंद में कई-कई भाव भर देना बिहारी जैसे कवि का ही काम था। बिहारी का विवेचन करते हुए आपका ध्यान उर्दू कविता के 'शेर' की ओर जा सकता है। शेर किसी गज़ल का अंग होने पर भी अपने आप में स्वतंत्र होता है। यही दोहे की भाषिक संरचना में भी है। मध्यकाल में दोहे और शेर का मुक्तक रूप दरबारी परंपरा के काव्य से जुड़ा हुआ है।

अलंकार : अलंकारों की कारीगरी दिखाने में बिहारी बड़े पटु हैं। उनके प्रत्येक दोहे में कोई न कोई अलंकार अवश्य आ गया है। किसी-किसी दोहे में तो एक साथ कई-कई अलंकारों को स्थान मिला है। शब्द-वैचित्र्य या वर्णन-वैचित्र्य के स्थान पर कवि ने अनुपम अलंकार विधान रखा है।

अपने काव्य गुणों के कारण ही बिहारी महाकाव्य की रचना न करने पर भी महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनके संबंध में स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी की यह उक्ति बड़ी सार्थक है- यदि सूर सूर हैं, तुलसी शशी और उडगन केशवदास हैं तो बिहारी उस पीयूष वर्षी मेघ के समान हैं जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है।

बोध प्रश्न

21. बिहारी सतसई की लोकप्रियता का मुख्य कारण क्या है?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! रीतिसिद्ध कवि बिहारी के काव्य की मख्य प्रवत्ति रीतिकाल के अनरूप शंगार निरूपण की प्रवृत्ति है। आप यह भी जानते हैं कि वे जयपर के मिर्ज़ा राजा जयसाह (महाराज जयसिंह) के दरबार में रहा करते थे। वे महाराज के निर्देश पर सरस दोहे बनाकर सनाते थे। उन्हें हर दोहे की रचना पर सम्मान स्वरूप एक अशरफी मिलती थी। इस प्रकार उन्होंने 700 से कछ अधिक दोहे रचे। इनके संकलन को 'बिहारी सतसई' के नाम से जाना जाता है। इन दोहों में भावप्रवणता के साथ कथन-शैली का भी चमत्कार है जिस पर रसिकजन मग्ध होकर प्रशंसा की बौंछार करते रहे हैं। कला की इस बारीकी के कारण बिहारी के दोहों में एक

मर्मस्पर्शी पैनापन आ गया है। यह मर्मस्पर्शी पैनापन ही उनके दोहों के जान है। इसी जान के ज़ोर पर बिहारी अपने केवल सात सौ दोहों के सहारे बड़े-बड़े प्रबंधकाव्य के रचनाकारों को पीछे छोड़ देते हैं। जैसा की आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -

> "बिहारी ने इस सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। यही एक ग्रंथ उनकी इतनी बड़ी कीर्ति का आधार है। यह बात साहित्य क्षेत्र के इस तथ्य की घोषणा कर रही है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है, इसमें कोई संदेह नहीं। मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 171)

बिहारी की लोकप्रियता के कारणों पर हिंदी साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों ने गंभीरता से विचार किया है। मध्यकाल में इन शृंगारिक रचनाओं को लोकप्रियता प्राप्त होने का एक कारण यह भी है कि इनमें समस्त शृंगारिक चेष्टाओं का आधार कृष्ण और गोपिकाएँ हैं। कृष्ण और गोपियाँ इस शृंगारी काव्य के लिए एक तरह से पर्दे का काम करते हैं। कवि के लिए भी और पाठक के लिए भी। उस समय के आम तौर पर धर्मभीरू समाज को प्रेमी-प्रेमिका के स्थान पर कृष्ण और गोपियों को रखने से शृंगारी काव्य के आस्वादन में सहूलियत दिखाई दी होगी। रीतिकालीन शृंगार की यह निजी विशेषता है।

बिहारी के शृंगार काव्य की लोकप्रियता पर विचार करते हुए विद्वानों ने यह भी दर्शाया है कि इस कविता के नायक और नायिका न तो दिव्य और अलौकिक थे और न राजसी। बल्कि वे खाते-पीते घराने के मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष थे। कहना न होगा कि उसी वर्ग में ये कविताएँ सबसे अधिक लोकप्रिय रही हैं। इस बारे में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का यह कथन उल्लेखनीय है कि -

> "रीतिकालीन काव्य भले राज्याश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रंथ आश्रयदाताओं को समर्पित हों, या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ हो और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत-प्रतिशत सामान्य गृहस्थ घरों का है। ये नायक-नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन साधारण गोप-गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 50)

अंततः इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि बिहारी एक ऐसे कालजयी कवि हैं जिन्होंने एक ओर अपने से पहले चली आ रही परंपरा का विकास किया तथा दूसरी ओर अपने बाद के कवियों को इस परंपरा के विकास के लिए प्रेरित भी किया। बिहारी से पूर्व संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में शृंगारपरक मुक्तक काव्य की पुष्ट परंपरा प्राप्त होती है। हाल की 'गाथा सप्तशती', अमरुक का 'शतक' और गोवर्धन की 'आर्य सप्तशती' से बिहारी ने बहुत प्रेरणा प्राप्त की।

आगे जो सतसई परंपरा हिंदी में चली उसके वे प्रेरक बने। बिहारी के साथ अन्य कवियों की तुलना पर आधारित आलोचनात्मक साहित्य भी बिहारी के प्रभाव का पता देता है। जिस तरह सूरदास और तुलसीदास की तुलना का साहित्य उपलब्ध होता है, उसी प्रकार आलोचकों ने बिहारी और उनके समकालीन देव की भी जमकर तुलनात्मक आलोचना की है। इस आलोचना से यह पता चलता है कि -

> "बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सभी बड़े कवियों की रचनाओं का निपुण अध्ययन किया था और इस बात का पूरा प्रयत्न किया था कि उनके दोहे अधिक व्यंजक, अधिक मर्मस्पर्शी, अधिक भाववाहक और अधिक सुथरे हों। उन्होंने पुराने कवियों के भाव को ग्रहण किया था, उसे संवारा था, उसे निर्दोष बनाने का प्रयत्न किया था और उसे 'अपना' बना दिया था।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 177)

19.4 पाठ-सार

उपरोक्त दोहों में रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारीलाल के मुख्य रूप से 'शृंगार' (वियोग और संयोग) रस से ओतप्रोत अभिव्यक्तियाँ हैं। संयोग पक्ष के इन दोहों में बिहारी ने हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण किया है। वियोग पक्ष के दोहों में वर्णन बड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण है। ऊहात्मक है। यहाँ नायक-नायिका (प्रेमी-प्रेमिका या कृष्ण-राधा) का प्रयोग एक दूसरे के समानार्थक है। गागर में सागर भरना अर्थात् कुछ ही शब्दों में बहुत कुछ कह देना यहाँ देखा जा सकता है। शृंगार की विभिन्न मुद्राओं और नायक नायिका के एक दूसरे के प्रति प्रेम, मनुहार, आदर, रोष की काव्यात्मक अभिव्यक्ति से परिपूर्ण इन दोहों में यौवन की मादकता और जीवन की सार्थकता है।

19.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए -

1. शृंगार प्रधान दोहों का प्रभाव अचूक है।
2. बिहारी मूलतः शृंगारी कवि हैं, लेकिन अनेक स्थलों पर उनका शृंगार वर्णन भक्ति की ऊंचाई तक पहुंचता दिखाई देता है।

3. बिहारी ने लय, गति, शब्द-संपदा की दृष्टि से ब्रजभाषा को काव्यभाषा के रूप में चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया।
4. कवि बिहारी की काव्य कला का चमत्कार कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों को पिरोने के कौशल में निहित है।
5. बिहारी रीतिसिद्ध काव्य परंपरा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

19.6 शब्द संपदा

1. आछन्न = छिपा हुआ, ढका हुआ, जिस पर आवरण पड़ा हो।

2. ऊहात्मक = विचारात्मक, काल्पनिक, अटकल और नापजोख वाली यह पद्धति कवि जब प्रयोग करते हैं तो वह वर्णन ऊहात्मक कहलाता है। यह वर्णन बढ़ा चढ़ा कर होता है, इसलिए हास्यास्पद हो जाता है।

3. रीतिबद्ध = रीतिबद्ध कवि वे हैं जिन्होंने स्वयं लक्षण ग्रंथों की रचना संस्कृत की काव्य शास्त्र परंपरा और लक्षण ग्रंथों के आधार पर की। यही नहीं इन्होंने संस्कृत के कुछ ग्रंथों का अनुवाद भी किया। आचार्य केशव दास रीतिबद्ध कवि हैं।

4. रीतिमुक्त = रीतिकाल में रीति के नियमों से सर्वथा मुक्त होकर जिस काव्य का सृजन हुआ उसे रीतिमुक्त काव्य कहा गया। रीति मुक्त कवियों ने कोई बंधन नहीं माना। घनानंद रीतिमुक्त कवि हैं।

5. रीतिसिद्ध = रीतिसिद्ध कवि वें हैं जो प्रायः काव्यशास्त्र का सहारा लेते थे किंतु काव्यशास्त्रीय या रीति ग्रंथों की रचना नहीं करते थे। रीतिरचना में कुशल होने के कारण इन्हें रीति सिद्ध कहा गया। इन कवियों ने स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य की रचना की। वे कवित्व के लोभ में चमत्कारपूर्ण उक्ति करने की चेष्टा करते थे। ये दूर की कौड़ी लाने वाले कवि भाव पक्ष के साथ ही कलापक्ष को भी महत्व देते थे। बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं ।

19.7 परिक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में लिखिए

1. कवि बिहारी लाल के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
2. बिहारी के पठित दोहों के आधार पर सिद्ध कीजिए कि उन्होंने 'गागर में सागर' भरा है।

3. शृंगार वर्णन में बिहारी अप्रतिम हैं, सिद्ध कीजिए।

4. बिहारी सतसई की लोकप्रियता के कुछ कारण बताइए।

5. बिहारी रीतिकालीन काव्यभाषा के प्रतिनिधि कवि हैं, उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

6. अंग अंग नग जगमगत .... बड़ो उज्यारो गेह॥ - इस दोहे की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में लिखिए

1. बिहारीलाल का जीवन परिचय देते हुए बिहारी सतसई की प्रमुख विशेषता बताइए।
2. सतसई के दोहों को किन तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं? उनके शृंगार विषयक दोहों का उदाहरण देकर परिचय दीजिए।
3. ऊहात्मकता क्या है? एक दोहे का उदाहरण देकर समझाइए?
4. बिहारी के शृंगार रस के दोहों में कवि के रचना-उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुने

1. कवि बिहारी लाल का जन्म कहाँ हुआ था – ( )

   क) ओरछा ख) ग्वालियर ग) जयपुर घ) झाँसी

2. बिहारी के दोहों में 'गागर में सागर' भर दिया गया है, इसका अर्थ है – ( )

   क) बिहारी ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है ।

   ख) बिहारी के दोहों की विषयवस्तु नीति निरूपण के लिए है।

   ग) बिहारी कम शब्दों में अधिक गंभीर बात कहते हैं ।

   घ) बिहारी के दोहे समझना बहुत कठिन हैं ।

3. बिहारी द्वारा रचित एकमात्र पुस्तक का नाम क्या है – ( )

   क) बिहारी रत्नाकर ख) बिहारी के दोहे ग) बिहारी सतसई घ) बिहारी सप्तशती

4. बिहारी का काव्य स्वरूप है – ( )

   क) मुक्तक ख) प्रबंध ग) मिला-जुला

II रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. बिहारी के दोहों की भाषा .... है।
2. बिहारी ने दोहों के साथ साथ कुछ ....भी लिखे हैं।

3. बिहारी के दोहों में सबसे प्रमुख रस .... है ।

4. बिहारी सतसई एक ....रचना है।

5. हिंदी के दोहे की तुलना उर्दू के ....से की जा सकती है।

6. मुक्तक उस रचना को कहते हैं जो अपना................. स्वयं बता सके।

7. दोहा एक .... छंद है।

III सुमेल कीजिए

1) शृंगार के भेद	अ) दोहा सोरठा
2) बिहारी द्वारा प्रयुक्त छंद	आ) अतिशयोक्तिपूर्ण
3) ऊहात्मक	ई) संयोग-वियोग

19.8 पठनीय पुस्तकें

1. बिहारी रत्नाकर, जगन्नाथदास 'रत्नाकर'.
2. बिहारी की वाग्विभूति, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र.

इकाई 20 : नीति निरूपण

रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 मूल पाठ : नीति निरूपण
(क) अध्येय दोहों का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय दोहे
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
20.4 पाठ सार
20.5 पाठ की उपलब्धियाँ
20.6 शब्द संपदा
20.7 परीक्षार्थ प्रश्न
20.8 पठनीय पुस्तकें

20.1 प्रस्तावना

बिहारी की एकमात्र रचना बिहारी सतसई (सप्तशती - रचना काल 1662 ई.) है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें 713 दोहे संकलित हैं। सतसई के इन दोहों को अध्ययन की दृष्टि से तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं - नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भावपरक, तथा शृंगारपरक। इनमें से शृंगारात्मक भाग अधिक है। शृंगारात्मक भाग में रूपांग सौंदर्य, सौंदर्योपकरण, नायक-नायिका भेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है। नीति विषयक दोहों में वस्तुत: सरसता रखना कठिन होता है, उनमें उक्ति-औचित्य और वचन वक्रता के साथ अर्थगत चमत्कार ही प्रभावोत्पादक और ध्यानाकर्षण में सहायक होता है। बिहारी ने नीति निरूपण के इन पदों में सरसता भरने का सराहनीय प्रयास किया है। यहाँ बिहारी की बहुज्ञता के भी दर्शन होते हैं। काव्यगत सौंदर्य तो इनमें कूट कूट कर भरा ही है।

20.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- बिहारी के द्वारा लिए गए वर्ण्य विषयों में से एक 'नीति निरूपण' का परिचय प्राप्त करेंगे।
- बिहारी की बहुज्ञता के बारे में जान सकेंगे।
- बिहारी के दोहों की मूलभूत विशेषता अर्थात् 'गागर में सागर' भरने की कला के बारे में समझ सकेंगे।

- बिहारी और उनकी कवित्व शक्ति पर सोदाहरण लेखन कर सकेंगे।
- बिहारी की कविता के लोक पक्ष को उजागर कर सकेंगे।

20.3 मूल पाठ : नीति निरूपण

(क) अध्येय दोहों का सामान्य परिचय

जैसा प्रस्तावना में कहा गया कि रीतिकालीन कवि बिहारी ने कुछ पद नीति निरूपण को दृष्टिगत रखते हुए भी कहे हैं। बिहारी के जीवन-वृत्त के सुधि पाठक उनके जीवन की एक घटना का बार बार उल्लेख करते हैं। बिहारी की काव्य कला पर मुग्ध होकर जयपुर के राजा जयसिंह ने उन्हें वार्षिक वृत्ति बांध दी थी। एक वर्ष जब वे जयपुर उस वृत्ति को लेने गए तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राजा अपनी नवविवाहिता रानी के प्रेम में इतने तल्लीन हो गए थे कि राजकाज भी भूल बैठे थे। बिहारी ने उन्हें एक दोहे के द्वारा संदेश भेजा और तब जाकर राजा को अपनी भूल का बोध हुआ। वह दोहा इन दोहों में से एक है। आप ध्यान दें। कहते हैं नीतिपरक दोहें लिखने पर बिहारी के आश्रयदाता उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा प्रति दोहा पुरस्कार स्वरूप देते थे। अवश्य देते होंगे। छोटे से दोहे में अधिक से अधिक भाव योजना करके अपनी समाहार शक्ति का परिचय देने वाले बिहारी कवि के नीति निरूपण दोहों से कोई भी जीने की कला सीख सकता है।

(ख) अध्येय दोहे

कनक कनक ते सौं गुनी, मादकता अधिकाय।
इहिं खाएं बौराय नर, इहिं पाएं बौराय।।
समै-समै सुंदर सबै, रूपु-कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥
दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥
स्वारथु सुकृत न स्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तूँ पंछीहिं न मारि॥
नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगैं कौन हवाल॥
मीत न नीति गलीतु यह, जौ धरियैं धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि॥

निर्देश : 1. इन दोहों का अर्थ पर ध्यान देते हुए मौन वाचन कीजिए।
2. इन दोहों का सस्वर वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

कनक कनक ते सौं गुनी, मादकता अधिकाय।
इहिं खाएं बौराय नर, इहिं पाएं बौराय॥

शब्दार्थ : कनक = सोना। कनक = धतूरा। मादकता = नशा। इहि = इसे। बौराय = पगला हो जाना।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में अकूत धन संपत्ति के प्राप्त होने के पश्चात मानव को होने वाले घमंड की ओर ध्यान दिलाया गया है।

व्याख्या : कहा जाता है कि कनक (स्वर्ण - सोना) और कनक (धतूरा - एक मादक पदार्थ) के द्वारा होने वाले नशे की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि धतूरा जैसे मादक पदार्थ से सेवन से खानेवाले की बुद्धि भ्रष्ट होती है। जबकि कनक (सोना) की तो उपलब्धि मात्र से आदमी बौरा जाता है, पगला जाता है। सोने में धतूरे से सौ गुनी मादकता या नशा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि धन संपत्ति सोना चाँदी और इसी प्रकार के भौतिक उपभोग के साधनों के द्वारा कई बार कोई व्यक्ति अहंकार से भर जाता है और उसके कारण दूसरों को अपने से कम समझने लगता है। इस प्रकार की नासमझी से बचने की शिक्षा देने के लिए कवि ने इस दोहे में एक कनक की दूसरे कनक से तुलना की है।

विशेष : 'कनक' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है और दोनों बार अर्थ अलग अलग है, इसलिए यहाँ यमक अलंकार है।

बोध प्रश्न

1.'कनक' शब्द के दो अर्थ क्या हैं?
2. धन संपत्ति की अधिकता कैसे बुरी है?
3. क्या बिहारी कवि मादक पदार्थों के सेवन का पक्ष ले रहे हैं?
4. इस दोहे से किस नीति की शिक्षा प्राप्त होती है?

समै-समै सुंदर सबै, रूपु-कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥

शब्दार्थ : रुचि = प्रवृत्ति, आसक्ति। जेती = जितनी। जितै = जिधर। तित तेती = उधर उतनी ही।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : कवि इस दोहे के माध्यम से सुंदरता और कुरूपता के भेद को व्यक्त करता है। वस्तुतः सुंदरता मनुष्य के मन में होती है, वस्तु या व्यक्ति में नहीं। मन की प्रवृत्ति जिधर जितनी होगी, उधर उतनी ही आसक्ति होगी।

व्याख्या : यह समय समय की बात होती है कि कोई वस्तु कभी हमें सुंदर लगती है और कभी वही वस्तु उस प्रकार से सुंदर दिखाई नहीं देती। यह बोध मन की रुचि या अरुचि पर भी बहुत निर्भर है। अपने आप में कोई वस्तु सुंदर या कुरूप नहीं होती। सौंदर्य देखने वाले की दृष्टि और दृष्टिकोण में होता है। इसलिए अपनी रुचि परिष्कृत करना चाहिए। कहने का भाव यह है कि इस संसार में बदसूरत कोई नहीं है। आयु, समय और रुचि के अनुसार ही कोई चीज़ अच्छी या बुरी लगती है। विधाता ने जो कुछ भी इस दुनिया में बनाया है वह श्रेष्ठ और सुंदर है।

विशेष : कई अक्षरों का दो दो बार (समै-समै, जेती जितै, तित तेती) प्रयोग हुआ है। इसलिए अनुप्रास अलंकार है।

बोध प्रश्न

5. सुंदरता और समय का क्या संबंध है?
6. किसी व्यक्ति या वस्तु को किस प्रकार देखना उचित होगा?
7. सुंदर-असुंदर का बोध किस पर निर्भर है?

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

शब्दार्थ : दृग = आँख। उरझत = उलझती है, लड़ती है। टूटत कुटुम = सगे संबंधी छूट जाते हैं। जुरत = जुड़ता है, जुटता है। हिये = हृदय। दई = ईश्वर। नई = अनोखी।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे के द्वारा प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम व्यवहार की असंगति और अनोखेपन को रेखांकित किया गया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर नयनों का मिलना, उनमें प्रेमभाव उत्पन्न होना और प्रेमभाव उत्पन्न होने के कारण प्रेमी-प्रेमिका में तो आपस में प्रीति उत्पन्न होती है, किंतु परिवार के अन्य सदस्यों से नाता टूट जाता है। यह पूरी घटना न जाने कितने समय में घटित हुई होगी, किंतु कवि ने अपनी कल्पना की समाहार शक्ति पूरी घटना को एक ही दोहे में वर्णित कर दिया है। उलझते हैं नेत्र, टूटता है कुटुम्ब! प्रीति जुड़ती है चतुर के चित्त में, और गाँठ पड़ती है दुर्जन के हृदय में! हे ईश्वर! (प्रेम की) यह (कैसी) अनोखी रीति है!

विशेष : लाक्षणिकता और उक्तिवैचित्र्य की दृष्टि से यह दोहा बेजोड़ है। साधारण नियम यह है कि जो उलझेगा, वही टूटेगा; जो टूटेगा, वही जोड़ा जायगा; और जो जोड़ा जायगा, उसीमें गाँठ पड़ेगी। किंतु यहाँ सब उलटी बातें हैं, और फिर भी उलटी होने पर भी ये बातें सत्य हैं। कारण और कार्य में संगति न होने पर असंगति अलंकार होता है। इस दोहे में असंगति अलंकार है।

बोध प्रश्न

8. प्रेम की अनूठी रीति क्या है?
9. 'दरजन' शब्द का प्रयोग किसके लिए है?
10. प्रेम की उलटी बातें सच्ची कैसे हैं?

स्वारथु सुकृत न स्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि, तूँ पंछीहिं न मारि ॥

शब्दार्थ : सुकृत = पुण्यकर्म। स्रमु = श्रम, मेहनत। बिहंग = आकाश में उड़नेवाला, पक्षी। पानि = हाथ।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में कवि बिहारी अपने पाठकों को सचेत करते हैं कि दूसरों के स्वार्थ की पूर्ति का साधन बनना मूर्खता ही नहीं पाप भी है।

व्याख्या : कवि दूसरों के लिए पक्षियों का शिकार करने वाले बाज को संबोधित करके कहते हैं कि न तो इसमें तेरा कोई स्वार्थ है (क्योंकि मांस खुद बहेलिया ले लेगा), और न कोई पुण्य-कार्य है (क्योंकि यह हत्यारापन है), इस प्रकार यह परिश्रम व्यर्थ है, हे (उन्मुक्त आकाश में स्वच्छंद विचरण करने वाले) पक्षी! विचार कर देख। अरे बाज! दूसरे के हाथ पर बैठकर (दूसरे के बहकावे में आकर) पक्षियों को (स्वजातियों को) मत मार। सावधान मनुष्य को समझना चाहिए कि किसी के स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपना योगदान करना व्यर्थ तो है ही, पाप भी है।

विशेष : अन्योक्ति अलंकार है। कहा जाता है कि किसी अन्य राजा के इशारे पर जब बिहारी के आश्रयदाता जयसिंह अपने पड़ोसी राजाओं पर चढ़ाई करने जा रहे थे, तो इस दोहे को सुनाकर बिहारी ने उन्हें सचेत किया कि वे ऐसा न करें।

बोध प्रश्न

11. पक्षी किसके लिए कहा गया है?
12. मनुष्य को क्या नहीं करना चाहिए?
13. इस दोहे में कौन-सा अलंकार है?

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहिं काल ।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगैं कौन हवाल ॥

शब्दार्थ : परागु = फूल की सुगंधित धूलि, पुष्परज। मधु = मकरंद, पुष्परस। बिकास = खिलना। अली = भौंरा। बँध्यौ = उलझ गया है, घायल या लुब्ध हुआ है। हवाल = दशा।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

व्याख्या : न (सुगंधित) पराग है, न मीठा मकरंद, इस समय तक विकास भी नहीं हुआ - वह खिली भी नहीं। अरे भौंरा! कली से ही तो तू इस प्रकार उलझ गया, फिर आगे तेरी क्या दशा होगी - (अधखिली कली पर यह हाल है तो जब यह कली खिलेगी, सुगंधित पराग और मधुर मकरंद से भर जायगी, तब क्या दशा होगी।)!

विशेष : यही दोहा सुनकर मिर्जा राजा जयसिंह अपनी किशोरी रानी के प्रेम को कम कर पुनः राजकाज देखने लगे थे। इसी पर उन्होंने बिहारी को एक सौ अशर्फियाँ दी थीं, और इसी ढंग के दोहे रचने के लिए प्रत्येक दोहे पर सौ अशर्फियाँ पुरस्कार देने का उत्साह देकर यह सतसई तैयार कराई थी। इसलिए यही दोहा सतसई की रचना का मूल कारण माना जाता है।

विशेष : यहाँ भ्रमर और कली का प्रसंग अप्रस्तुत विधान के रूप में है जिसके माध्यम से राजा जयसिंह को सचेत किया गया है, अत: अन्योक्ति अलंकार है ।

बोध प्रश्न

14. कली और खिला फ़ल किसकी ओर संकेत है?
15. किसको संकेत के माध्यम से क्या शिक्षा दी गई है?
16. भविष्य की किस स्थिति की ओर कवि ने सावधान किया है?

मीत न नीति गलीतु यह, जौ धरियैं धनु जोरि ।
खाएँ खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥

शब्दार्थ : नीति न = नीति नहीं, उचित नहीं। गलीतु यह = गल-पचकर, अत्यंत दुःख सहकर। जोरि = जोड़कर, इकट्ठा कर।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि ने धन संग्रह करने का सही समय और विधि समझाई है।

व्याख्या : हे मित्र, यह उचित नहीं है कि गल-पचकर-अत्यंत दुःख सहकर-धन इकट्ठा कर रखिए। (हाँ, अच्छी तरह) खाने और खरचने पर जो इकट्ठा हो सके, तो करोड़ों रुपये जोड़िए-इकट्ठा

कीजिए। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने आगामी समय या भविष्य के लिए धन संग्रह करने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि इसके लिए अभाव में रहना ठीक नहीं है। आज भूखा रहकर कल के लिए भोजन रखना कौन चाहेगा? पहले आज को ठीक तरह से देखा जाए फिर भविष्य की चिंता की जाए। यही समझदारी होगी।

बोध प्रश्न

17. धन संग्रह के लिए क्या उचित है?
18. धन संग्रह के लिए क्या उचित नहीं है?
19. समझदारी क्या होगी?

काव्यगत विशेषताएँ

बिहारी ने रीतिकाल में दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित किया जबकि उस काल में कवित्त और सवैया की प्रधानता रही। बिहारी के नीति संबंधी दोहों के पाठ से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने शृंगार के उभयपक्षीय चित्रण के साथ साथ नीति निरूपण में भी बहुत कुछ महारत प्राप्त कर ली थी। कवि को लोक व्यवहार और लोक जीवन का अच्छा अनुभव तो था ही, वे जीवन को किस प्रकार जिया जाए यह भी जानते थे। आगरा, मथुरा और जयपुर आदि नगरों में रहकर जो जीवनानुभव आपने प्राप्त किए उन्हें बहुत प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत किया। उनको 'गागर में सागर' भरने वाला कवि क्यों कहते हैं यह उनके किसी भी दोहे को पढ़कर जाना जा सकता है। इन दोहों में व्यंजना की मात्रा इतनी सघन है कि पाठक एक चमत्कारिक सौंदर्य बोध से आप्लावित हो जाता है। काव्य के दो रूप भाव पक्ष और कला पक्ष हैं। उनकी अभिव्यक्ति कुशलता का प्रमाण भी ये दोहें हैं। विषय के अनुसार बिहारी की शैली तीन प्रकार की है -

1. माधुर्य पूर्ण व्यंजना प्रधानशैली - शृंगार के दोहों में।
2. प्रसादगुण से युक्त सरस शैली - भक्ति तथा नीति के दोहों में।
3. चमत्कार पूर्ण शैली - दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि विषयक दोहों में।

कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति के कारण सतसई के दोहे गागर में सागर भरे जाने की उक्ति चरितार्थ करते हैं। उनके विषय में ठीक ही कहा गया है -

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर॥

बोध प्रश्न

18. विषय के अनुसार बिहारी की शैली की प्रकारों के बारे में बताइए।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। बिहारी सतसई में रीति कथन नहीं है किंतु वे आते रीति की शृंखला में ही हैं। सतसई के अधिकांश दोहे रीति और शृंगार के हैं। पर दाल में नमक की तरह जहाँ-तहाँ नीति निरूपण और भक्ति संबंधी दोहे भी हैं। जिस समय बिहारी लिख रहे थे उस समय की स्थिति क्या थी यह तो आप 'अली कली सौं बंधयो' दोहे को पढ़कर समझ जाते हैं। समाज की इस दशा का वर्णन बिहारी के दोहों में अवश्य है। कविता 'स्वांतःसुखाय' न होकर 'स्वामिन सुखाय' होती जा रही थी। जमाने की हवा बिहारी को लगी अवश्य किंतु उन्होंने न भक्ति का मार्ग छोड़ा और न नीति को दूर किया।

नीति शब्द का अर्थ है लोक व्यवहार, विधि-निषेधपरक ज्ञान की ओर ले जाना या आगे बढ़ना। यदि धर्म या नीतिगत आचरण को जीवन को आगे बढ़ाने वाला प्रेरक तत्व अथवा साधन माना जाए तो धर्माचरण अथवा कर्तव्य अकर्तव्य की विभिन्न पद्धतियाँ ही नीति कही जा सकती हैं। सही व्यवहार का ढंग, बर्ताव का तरीका, लोकाचार और लोक व्यवहार, युक्ति, चतुराई, राजनीति, कूटनीति, चाल-चलन, योजना आदि नीति ही हैं। जीवन और उसके प्रति सुरुचिपूर्ण दृष्टिकोण नीति की ओर संकेत करते हैं। जो करने योग्य है वह नीति और जो करने योग्य नहीं वह अनीति है। नीति वह युक्ति या उपाय है जिसे करने से किसी को लाभ होता है और किसी अन्य को कोई हानि भी नहीं होती।

बिहारी कवि ने नीति संबंधी दोहों के द्वारा जीवन को जीने के लिए सही मार्ग की ओर संकेत किया है। बिहारी की नीति चाणक्य या विदुर जैसी नहीं है। वे किसी को कोई चाल चलना नहीं सिखाते। बिहारी की नीति आम आदमी के लिए है, राजा-राजकुमारों के लिए नहीं। बिहारी की नीति ऐसे सांसारिक व्यक्ति की नीति है जो अपने जीवन को हास-परिहास के साथ जीना चाहता है ।

बिहारी की नीतिपरक उक्तियाँ भोग विलास, राग रंग, और सामान्य जीवन के लिए व्यावहारिक उक्तियाँ हैं। यह सही है कि बिहारी सतसई में शुद्ध रूप से केवल नीति निरूपण के दोहे संख्या में बहुत कम हैं और जो हैं भी उनमें शृंगार भी आ जाता है। फिर भी उनका शृंगार नीति से अछूता नहीं है। लगता है बिहारी ने नीतिपरक दोहे तब लिखे थे जब वे किसी को परोक्ष रूप से कुछ समझना चाहते थे। उन्होंने अपने युग और परिवेश की चेतना को अच्छी तरह समझ लिया था। वे जान गए थे कि देश का एक बड़ा वर्ग विलासिता में डूबा है और सुख भोग-विलास को ही जीवन मान बैठा है। राजा को प्रजा की सेवा से अधिक स्त्री संसर्ग और मदिरा पान भला लगता था। सामान्य जनता पर भी इससे विपरीत प्रभाव पड़ रहा था। बिहारी ने ऐसे समय में अपनी आँखें खुली रखीं और सबको शिक्षित करने का बीड़ा उठाया ।

बिहारी ने अपने दोहों में लोक-व्यवहार तथा अनुभवों की अभिव्यक्ति नीति सूक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त की है। बिहारी ने अपने नीति-निरूपण दोहों में मानव व्यवहार पर आक्षेप भी किए हैं और उसे सही व्यवहार करने के लिए प्रेरित भी किया है। उनके अनुसार सज्जन व्यक्तियों में नम्रता जितनी अधिक होगी उतना ही वह श्रेष्ठ या ऊँचा माना जाएगा -

नर की अरु नल-नीर की, गति एकै कर जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चले, तेतो ऊँचो होइ।।

कवि ने जीवन के एक प्रसंग से सबको एक नीतिगत बात समझा दी। वह जितना विनम्र होगा, उतना ही ऊपर जा सकेगा। विनम्रता के गुण को बताने के लिए कितनी आसानी से कवि ने लिखा है। जहाँ वे सज्जन व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं, वहाँ दुर्जन को खरी-खरी भी सुनाते हैं। बिहारी कवि कहते हैं कि संसार में दुर्जनों की कमी नहीं है। सरल स्वभावी सज्जन तथा कुटिल स्वभावी दुष्ट का संबंध चिरस्थायी कैसे हो सकता है? कुटिल व्यक्ति भले व्यक्ति के भोलेपन का लाभ उठाता है। इसलिए वे अपने दोहों के द्वारा दुर्जनों से दूर रहने को कहते हैं ।

न ए विससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
ऑटै परि प्राननु हरत कॉर्दै लौं लगि पाइ॥

राजनीतिक पराधीनता और समाज तथा व्यक्ति के जीवन में नीति शून्यता के प्रति बिहारी की दृष्टि पैनी थी। हिंदू राजाओं में पराधीनता के कारण उत्पन्न हुई निराशा के कारण उनमें विवेकशून्यता बढ़ गई थी। इसी कारण जहाँ एक ओर तो वे अपनी प्रजा को कई प्रकार के कष्ट देते थे दूसरी ओर स्वयं अपने को शूरवीर समझते थे। भोग-विलास में रमे रहते थे। किसी मंत्री या मुंहलगे की भी हिम्मत उन्हें सावधान करने की न होती थी। कवि बिहारी ने कई बार अपने नीति के दोहों से ऐसे विलासी राजाओं को सावधान किया और उनकी निष्क्रियता और जड़ता को दूर किया।

स्वारथु सुकृत न स्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि, तूँ पंछीिंहिं न मारि ॥

नीति का अर्थ व्यापक भाव में होता है जिसमें जीवन की बहुत सी अनुभूतियाँ आ जाती हैं। यही कारण है कि बिहारी के नीतिपरक दोहों में बहुत कुछ आ गया है जैसे संगति का दोष, सत्पुरुष की विनम्रता, नीच का स्वभाव, धन का अहंकार, गुणों का आधार, गुण ग्राहकता से रहित व्यक्ति का आचरण, याचक की हीन भावना, छल से भय की नीति, गुणहीन का सम्मान, वैभव से बिगड़ा स्वभाव, अपात्र की प्रतिष्ठा, समय का फेर, अवसर पर पूजा, पद का लोभ, सच्चे प्रेमी का स्वभाव, कंजूस का स्वभाव, तुच्छ का महत्व, धर्म का संचय आदि अनेक विषय हैं जिन पर बिहारी के नीतिपरक दोहे हैं।

यह बात अवश्य है कि बिहारी के ऐसे दोहों में आपको कवित्व शक्ति कम मिलेगी, किंतु ये आपके जीवन की दिशा बदल सकते हैं। आपके व्यावहारिक ज्ञान को पुष्ट और प्रामाणिक कर सकते हैं। इन दोहों के विषय आज भी सार्थक हैं। नीति क्षेत्र में कवियों की विरलता को देखते हुए कवि बिहारीलाल के ये नीति के दोहे बेजोड़ हैं।

बोध प्रश्न

19. नीति शब्द का क्या अर्थ है?
20. नीति संबंधी दोहों के माध्यम से बिहारी किसकी ओर संकेत करते हैं?

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! जैसा कि आपको मालूम है कविता का एक उद्देश्य मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए नैतिकता का पाठ पढ़ाना भी है। यह भी कहा जा सकता है कि कविता आम लोगों को जीने की कला सिखाती है। ऐसा करके ही वह लोक-कल्याण के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। कविता ही क्यों, समस्त साहित्य के मूल में लोक शिक्षण की यह भावना विद्यमान है। साहित्य शब्द की अर्थ ही है - जो हित सहित हो। अर्थात् हितकारी हो।

यदि समाज में या मनुष्यों के चरित्र और व्यवहार में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, जो अमंगलकारी या अहितकर हों, तो साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह उनका निराकर्ण करें। इसी उद्देश्य से सभी देशों और भाषाओं के साहित्य में नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाली रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि हिंदी में नीति काव्य की लंबी परंपरा प्राप्त होती है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि श्रेष्ठ नीति काव्य उसे माना जाता है जिसमें नैतिकता का उपदेश सीधे-सीधे नहीं दिया जाता। अपनी बात मनवाने के लिए कवि गण जिस शैली का प्रयोग करते हैं उसे 'कांतासम्मित उपदेश' कहा गया है। इस शैली में किसी नैतिक संदेश को कुछ उदाहरणों, द्रष्टांतों, प्रतीकों या अलंकारों के सहारे व्यक्त किया जाता है। बिहारी इस कला में खूब माहिर हैं। आप पढ़ ही चुके हैं कि उन्होंने महाराजा जयसिंह को अपने एक अन्योक्तिपरक दोहे से किस प्रकार कर्तव्य का ध्यान दिलाया। इस इकाई में भी जिन दोहों को सम्मिलित किया गया है वे सभी इस गुण से युक्त हैं।

मनुष्य को धन संपत्ति पाकर इतना घमंड नहीं करना चाहिए कि उचित-अनुचित का भी ज्ञान न रहे। यह संदेश देने के लिए कवि ने स्वर्ण अर्थात् धन-संपदा की तुलना धतूरे से की है। और सावधान किया है कि जिस प्रकार धतूरे के सेवन से व्यक्ति पागल हो जाता है, धन-संपत्ति का नशा उससे सौ गुणा खतरनाक है। इस संदेश को रोचक बनाने के लिए कवि ने 'कनक' शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थ में दो बार करके अपने कथन में चमत्कार पैदा किया है।

आपने देखा होगा कि लोग जिस प्रकार धन-संपत्ति मिल जाने पर घमंड में चूर हो जाते हैं, उसी प्रकार रूप-यौवन की संपदा भी व्यक्ति को अभिमानी बना देती है। ऐसे लोगों को लक्ष्य करके कवि ने सौंदर्य के बारे में अत्यंत दार्शनिक बात बहुत सहज ढंग से कही हैं। वे समझाते हैं

कि रूप-सौंदर्य स्थायी नहीं होता। किसी न किसी समय सभी सुंदर होते हैं। यही नहीं, एक ही वस्तु या व्यक्ति अलग-अलग लोगों के लिए सुंदर और असुंदर हो सकता है। क्योंकि हमारा उसके साथ संबंध एक ऐसी रुचि को उत्पन्न करता है जिसके कारण कोई वस्तु या व्यक्ति सुंदर लगता है। इसका अर्थ यह भी है कि सौंदर्य वस्तु में नहीं, बल्कि देखने वाले के दृष्टिकोण में होता है।

बिहारी किसी भी बात को रोचक और चमत्कारपूर्ण ढंग से कहने में बहुत कुशल हैं। प्रेम संबंध का सामाजिक संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे प्रकट करने के लिए उन्होंने परस्पर विरोधी और एक-दूसरे से अलग प्रतीत होने वाली घटनाओं को बहुत सुंदर ढंग से पिरोया है। प्रेम में पड़ने वाले प्रेमी और प्रेमिका सबसे पहले एक-दूसरे को देखकर आकर्षित होते हैं। इस घटना को आम तौर पर नज़रें मिलना या टकराना कहा जाता है। बिहारी इसे आँखों का उलझना कहते हैं। जो चीज उलझती है, खिंचकर उसीको टूटना चाहिए। लेकिन आँखों के उलझने का परिणाम प्रेमी जन का परिवार से टूटना होता है।

जो चीज टूटती है, टूटकर जुड़ना भी उसे ही चाहिए। लेकिन यहाँ नायक-नायिका के मन जुड़ जाते हैं। गाँठ वहाँ पड़नी चाहिए जहाँ कुछ जुड़ रहा हो। लेकिन यहाँ गाँठ नायक-नायिका से ईर्ष्या करने वाले व्यक्ति के मन में पड़ती है। इन विचित्र प्रतीत होने वाले परिणामों के बहाने कवि ने यह संदेश दिया है कि प्रेम में पड़ने वालों को परिवार टूटने से लेकर ईर्ष्या करने वालों के षड्यंत्रों तक का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

बिहारी के जिन दो दोहों ने उनके आश्रयदाता सवाई राजा जयसिंह के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ा, उनमें एक दोहा तो वह है जिससे प्रभावित होकर राजा भोग-विलास से बाहर निकालकर राज-काज की ओर उन्मुख हुए- 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु।' दूसरा दोहा वह है जिसने उन्हें किसी तीसरे राजा के कहने पर अपने पड़ोसी राज्य पर हमला करने से रोका - 'स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा। '

इसी अन्योक्तिपरक दोहे में उन्होंने ऐसे बाज का दृष्टांत दिया जो अपने लिए शिकार न करके किसी अन्य शिकारी के लिए पक्षियों की हत्या करता है। कहना होगा कि इस दोहे ने राजा को एक अनर्थ से बचा लिया। इसमें संदेह नहीं कि अन्योक्ति की रचना करने में बिहारी बेजोड़ हैं।

बिहारी को जीवन के उतार-चढ़ाव के अनेक अनुभव थे। ऐसे अनुभव ही किसी रचनाकार को सूक्तिपरक नीतिकाव्य रचने की योग्यता प्रदान करते हैं। बिहारी का यह कथन निश्चय ही अनुभव पर आधारित है कि मनुष्य को न तो अपव्ययी होना चाहिए और न कंजूस। अपनी आर्थिक दशा के अनुरूप अगर अच्छे से जीने के लिए आप खूब खर्च करते हैं, तो इसमें बुराई नहीं। साथ ही, बचत करना भी बुरा नहीं है। यदि आपकी आय इतनी है कि अच्छे से खाने-खर्चने के बाद भी धन बच जाता है, तो करोड़ों की राशि जोड़ने में भी कोई बुराई नहीं। अर्थ यह है कि कंजूसी करके जोड़ना सराहनीय नहीं है। लेकिन अपनी जरूरतों के बाद बचे हुए धन को जोड़ना नीति सम्मत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिहारी केवल शृंगारिक दोहे रचने में ही माहिर नहीं हैं, बल्कि नीतिपरक दोहों की रचना में भी उन्हें कमाल हासिल है। वे अपने इन दोहों के माध्यम से जीने की कला इस तरह सिखाते हैं कि पाठक को वह उपदेश जैसा बोझिल नहीं प्रतीत होता। इसके लिए वे दृष्टांतों और अन्योक्तियों का प्रभावशाली संयोजन करते हैं।

20.4 पाठ-सार

कविवर बिहारी के द्वारा रचित और 'बिहारी सतसई' में संग्रहीत इन दोहों में कवि ने आम पाठकों के जीवन में काम आ सकने वाली कुछ नीतियों को प्रस्तुत किया है। कवि का यहाँ उद्देश्य आलंकारिकता के स्थान पर शिक्षा है। धन-संपत्ति के होने पर अहंकार और घमंड, सौंदर्य का आलंबन व्यक्ति न होकर देखने वाला, प्रेम की विचित्र रीति, दूसरों के सहारे काम करने की प्रवृत्ति, यौवन रूपी मदांधता के कारण होने वाली कर्तव्य-च्युति, और धन संग्रह की श्रेष्ठ रीति को उदाहरण सहित बताने वाले इन दोहों में जीवन में काम आने वाला संदेश है। एक भी दोहे को अपने जीवन में उतारने पर उसका क्या लाभ हो सकता है, यह स्पष्ट है।

20.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए -

1. बिहारी केवल शृंगारी कवि नहीं हैं। उन्होंने अत्यंत मार्मिक नीतिपरक दोहे भी रचे हैं।
2. बिहारी के नीतिपरक दोहों में उनकी बहुज्ञता झलकती है।
3. नीतिपरक दोनों में भी बिहारी कम शब्दों में इतना गहरा संदेश देते हैं कि गागर में सागर भरने की उक्ति सार्थक प्रतीत होती है।
4. बिहारी के नीतिपरक दोहों ने अलग-अलग अवसरों पर आश्रयदाता राजा जयसिंह को कर्तव्य का बोध कराया। ऐसे दोहों में कवि ने अन्योक्ति का इतना प्रभावशाली प्रयोग किया कि आलोचक उन्हें 'नावक के तीर' की तरह अचूक और गहरी मार करने वाला मानते हैं।
5. नीतिपरक दोहे बिहारी की कविता के लोक पक्ष को भी उजागर करते हैं।
6. बिहारी के नीतिपरक दोहे भारतीय साहित्य में पहले से विद्यमान नीतिपूर्ण सूक्तियों और सुभाषितों की परंपरा का सहज विकास हैं।

20.6 शब्द संपदा

1. अकूत = बहुत अधिक, जिसको गिना न जा सके
2. आप्लावित = डुबाया हुआ, सिक्त
3. कटाक्ष = वक्र दृष्टि, तिरछी निगाह, व्यंग्य।

4. कर्तव्य-च्युति = कर्तव्य से भागना

5. कला-पक्ष = साहित्य में कलापक्ष उसका बाह्य स्वरूप है यह उसके अंतरग बोधपक्ष का प्रकटीकरण है। कलापक्ष में शब्दों का चयन, भाषा का प्रवाह, छंद, अलंकार, तर्क, कल्पनाशीलता, संवेदनाएँ, भाव और अर्थ आदि आते हैं।

6. कुटिल = टेढ़ा। छली, चालबाज

7. भाव-पक्ष = साहित्यिक रचना का वह पक्ष जिसमें उसकी निष्पत्ति रस का सांगोपांग वर्णन या विवेचन होता है। जिसमें विशेष रूप से काव्यगत भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों की प्रधानता होती है।

8. मदांध = मतवाला, अविवेकी

9. मुँहलगा = ढीठ, शोख (जैसे - मुँहलगा दोस्त, मुँहलगा नौकर)

10. वृथा = व्यर्थ, फ़जूल, बेकार

20.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।

1. कवि बिहारीलाल के साहित्यिक व्यक्तित्व और प्रदेय पर प्रकाश डालिए।
2. बिहारी के पठित दोहों के आधार पर उनके नीति-निरूपण पर चर्चा कीजिए।
3. बिहारी ने अपने दोहों में 'गागर में सागर' भरा है, स्पष्ट कीजिए।
4. बिहारी कवि के दोहों से जीवन में क्या शिक्षा मिलती है? उदाहरण देकर समझाइए।
5. "बिहारी के नीति निरूपण विषयक दोहों में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष प्रधान है।" सिद्ध कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मुक्तक कवि के रूप बिहारी के नीति निरूपण की समीक्षा कीजिए।
2. 'अली कली ही सौं बँध्यो' दोहे में कवि ने किस पर कटाक्ष किया है और क्यों?
3. बिहारी के किस दोहे ने आपको सबसे अधिक प्रेरित किया है और क्यों?

4. 'बिहारी सतसई' पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखकर उसका महत्व बताइए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. निम्नलिखित में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए ( )
   - क) धन का नशा मादक पदार्थों के नशे से भी अधिक नुकसानदायक होता है।
   - ख) सोना प्राप्त करने के स्थान पर धतूरा खाना अधिक लाभदायक होगा।
   - ग) सोना और धतूरा दोनों ही मनुष्य को मदहोश कर देने वाले हैं।
   - घ) धतूरे की मादकता सोने से अनेक गुना अधिक है।

2. 'कनक कनक' में कौन सा अलंकार है? ( )
   - क) श्लेष ख) उपमा ग) यमक घ) रूपक

3. निम्नलिखित में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए । ( )
   - क) सुंदरता बनाव शृंगार और फैशन में होती है।
   - ख) सुंदरता देखने वाले की दृष्टि में होती है।
   - ग) आंतरिक सौंदर्य के सामने बाहरी सौंदर्य व्यर्थ है।
   - घ) एक ही वस्तु या व्यक्ति कभी सुंदर और कभी असुंदर प्रतीत हो सकते हैं।

4. 'नहीं पराग नहीं मधुर मधु' से क्या तात्पर्य है? ( )
   - क) फूल में पराग नहीं है और मधु भी नहीं है ।
   - ख) कली अभी खिली नहीं है।
   - ग) कली के फूल बनने पर कली मुरझा जाएगी ।
   - घ) यौवन अभी आया नहीं है, बालपन है।

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. बिहारी की कविता को शृंगार, भक्ति और ....की त्रिवेणी कहा जाता है ।

2. बिहारी सतसई की रचना .... ईस्वी में हुई।

3. बिहारी ने .... छंद का प्रयोग सबसे अधिक किया है।

4. बिहारी के दोहों का सबसे प्रमुख रस .... ही है ।

5. नीति निरूपण के दोहों में बिहारी की शैली .... गुण युक्त है।

III सुमेल कीजिए

1. शृंगार के दो पक्ष	क) नीति संबंधी दोहे
2. प्रसाद गुण युक्त	ख) संयोग- वियोग
3. अलंकार	ग) लोक-व्यवहार
4. नीति निरूपण	घ) असंगति और अन्योक्ति

20.8 पठनीय पुस्तकें

1. बिहारी का नया मूल्यांकन, बच्चन सिंह.

2. बिहारी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र.

इकाई 21 : भूषण : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 मूल पाठ : भूषण : व्यक्तित्व और कृतित्व
(क) जीवन परिचय
(ख) रचना यात्रा
(ग) रचनाओं का परिचय
(घ) हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व
21.4 पाठ-सार
21.5 पाठ की उपलब्धियाँ
21.6 शब्द संपदा
21.7 परीक्षार्थ प्रश्न
21.8 पठनीय पुस्तकें

21.1 प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सं 1700 वि॰ से 1900 वि॰ (1643 - 1843 ई॰) तक के समय को 'रीतिकाल' कहा है। इस काल के काव्य में 'रीति तत्व' की प्रधानता पाई जाती थी। इसीलिए रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को 'रीतिकाल' कहा है। इस समय के अधिकतर कवि आचार्यत्व का निर्वाह करते थे तथा लक्षण ग्रंथों की परंपरा पर रीति ग्रंथों की रचना करते थे। इन ग्रंथों में काव्य के सभी अंग जैसे अलंकार, रस, नायिका भेद आदि का वर्णन पाया जाता था।

इस समय के काव्यों में मुख्य रूप से शृंगार रस की प्रधानता होती थी। अधिकांश कवि दरबारी होते थे। परंतु, इस समय कुछ कवि वीर रस से ओतप्रोत रचनाएँ भी करते थे, जिनमें भूषण मुख्य है। भूषण वीर रस के अद्वितीय कवि हैं। रीतिकालीन कवियों में वे पहले कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य में हास-विलास की अपेक्षा राष्ट्रीय भावना को प्रमुखता दी। इन्होंने रीति शैली को अपनाते हुए वीरों के पराक्रम का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। इन्होंने अपने काव्य में उन राजाओं और महाराजाओं का यशोगान किया है जिन्होंने राष्ट्रीयता, देशानुराग, धर्म की रक्षा आदि भावों को अपनाया। इनकी कविताओं में जातीय एकता का भाव पाया जाता है। इनके साहित्य के दो मुख्य नायक हैं - महाराज शिवाजी और छत्रसाल। कवि भूषण राष्ट्र की अमर धरोहर के रूप में जाना जाता है।

21.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कवि भूषण के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगें।
- उनकी रचनाओं से परिचित होंगे।
- उनके काव्यों की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- भूषण के आश्रयदाताओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कवियों में भूषण के महत्व को जान सकेंगे।

21.3 मूल पाठ : भूषण : व्यक्तित्व और कृतित्व

(क) जीवन परिचय

भूषण रीतिकाल के ऐसे कवि माने जाते हैं जिन्होंने रीतिकालीन शृंगार भावना के स्थान पर वीर रस की कविता लिखी थी। ये वीर रस के प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। इनका जन्म 1613 ई॰ में कानपुर जनपद के तिकवाँपुर नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम रतिनाथ था। कुछ लोग इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी बताते हैं। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कविभूषण की उपाधि दी थी। तभी से ये भूषण के नाम से ही जाने जाते हैं। इनका असली नाम किसी को पता नहीं है। ये कई राजाओं के आश्रय में रहे जैसे बाजीराव पेशवा, रीवाँ नरेश अवद्धूत सिंह, जयपुर नरेश जय सिंह और उनके पुत्र रामसिंह, बूँदी नरेश बुद्धराव आदि। अनेक राजाओं की प्रशंसा में इन्होंने बहुत सारे छंद लिखे हैं। इतने राजाओं के साथ रहने के बावजूद इनके मुख्य आश्रयदाता महाराज शिवाजी तथा महाराज छत्रसाल ही थे। ऐसा कहा जाता है कि महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी को कंधा दिया था। यह भी कहा जाता है कि भूषण को एक-एक छंद पर शिवाजी से लाखों रूपये मिलते थे। भूषण का निधन 1715 ई॰ में माना जाता है।

हम देखते हैं कि रीतिकाल में कविता का प्रधान स्वर शृंगार का था। किंतु भूषण का स्वर वीरता का था। इन्होंने अपने काव्य का नायक शिवाजी और छत्रसाल को बनाया। इन्होंने अपने काव्य में बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख किया है जैसे शिवाजी द्वारा अफ़ज़ल खाँ की हत्या, दाराशिकोह की औरंगज़ेब द्वारा हत्या, शिवाजी का सूरत पर अधिकार, औरंगज़ेब के दरबार में शिवाजी का जाना आदि। इन्होंने अपने काव्य में शिवाजी की युद्धवीरता, दानवीरता, दयावीरता व धर्मवीरता का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। भूषण के काव्य को पढ़ने के बाद लगता है कि उसमें उत्साह और ओज कूट-कूट कर भरे हुए हैं।

कवि भूषण की कई रचनाओं का उल्लेख मिलता है - जैसे शिवराज भूषण, शिवाबावनी, छत्रसाल दशक। इनके अतिरिक्त 3 ग्रंथ और पाए जाते हैं - जैसे भूषण उल्लास, दूषण उल्लास तथा भूषण हजारा। परंतु इनमें शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवाबानी ही उपल्बध हैं। शिवराज भूषण में अलंकार, छत्रसाल दशक में छत्रसाल बुंदेला के पराक्रम तथा दानशीलता और शिवाबानी में शिवाजी के गुणों का वर्णन किया गया है।

भूषण वीर रस के कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य का नायक शिवाजी और छत्रसाल को चुना है। शिवाजी की वीरता के विषय में भूषण ने इस प्रकार लिखा है -

भूषण भनत महाबीर बलकन लाग्यो
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भयो ,
स्याह मुख नौरंग, सिपाह-मुख पियरे।।

भूषण के काव्य में सर्वत्र उदारता का भाव मिलता है। वे सभी धर्मों को समान रूप से देखते थे तथा सभी का समान भाव से आदर करते थे। इनके साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का सच्चा चित्रण पाया जाता है। इन्होंने अपने काव्य के माध्यम से यह भी बताया है कि शिवाजी धर्मरक्षक थे। अतः इन्होंने शिवाजी की बहुत अधिक प्रशंसा की है।

ऐसा माना जाता है कि भूषण ओज के कवि हैं। उनकी कविता में जगह-जगह में टंकार के साथ-साथ झंकार भी दिखाई पड़ता है। इनके काव्य में किसी जगह पर व्यंग्यपरक भाषा का भी उपयोग देखा गया है। जहाँ तक भाषा की बात है, भूषण ने अपना सारा काव्य ब्रजभाषा में लिखा था। ओज गुण से परिपूण ब्रजभाषा का प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था। इनके काव्य में मुक्तक शैली एवं अलंकारों का बहुत ही सुंदर प्रयोग देखा जा सकता है। इन्होंने कवित्त व सवैया छंद का बहुत अधिक प्रयोग किया है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी, बुंदेलखंडी बोली का भी कहीं-कहीं प्रयोग भी उनकी भाषा में मिलता है।

भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनका वीर काव्य हिंदी साहित्य के वीर काव्य परंपरा में लिखा गया है। इनकी कविताओं का मुख्य रस वीर रस है। इनकी रचनाएँ शिवराज भूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक वीर रस से भरी हुई हैं। ये तीनों काव्य अपने युग के आदर्श नायकों की छवि को प्रस्तुत करते हैं। इनमें शिवाजी और छत्रसाल के सभी गुण जैसे शौर्य, साहस, प्रभाव, पराक्रम सभी का वर्णन किया गया है। भूषण के वीरकाव्य का मुख्य आधार ऐतिहासिक है। इनमें कल्पनाओं की सहायता कम ली गई है। साथ में इस वीर काव्य में देश की संस्कृति एवं गौरव का गान भी पाया जाता है। तथा औरंगज़ेब के प्रति सर्वत्र आक्रोश इस काव्य में देखा जा सकता है। भूषण ने अपने काव्य में वीर रस के सभी पक्षों का वर्णन किया है। इसे हम युद्धमूलक, धर्ममूलक, दानमूलक, स्तुतिमूलक आदि रूपों में देख सकते हैं।

कवि भूषण ने शिवाजी को धर्म व संस्कृति के संरक्षक के रूप में दिखाया है। उन्होंने हिंदुओं की रक्षा की ख़ातिर मुसलमानों से टक्कर ली। कवि ने शिवाजी को अत्याधिक दानवीर तथा दया के सागर के रूप में दिखाया है। अतः भूषण ने शिवाजी के पराक्रम, शौर्य व आतंक का प्रभावशाली वर्णन किया है।

शिवा-स्तुति में कवि ने शिवाजी की दानशीलता का वर्णन इस प्रकार से किया है -

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आज़ु
महादानि साहि तनै गरीब नेवाज के।
भूषण जवाहिर जलूस जरबाक जोति,
देखि-देखि सरजा की सुकति समाज के।।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत अधिकतम ऐसे कवि होते थे जो वीर रस के साथ-साथ शृंगार रस का भी वर्णन करते थे। किंतु भूषण के काव्य में केवल वीर रस का वर्णन पाया जाता है। उनमें शृंगार भावना का आभास होता है। अतः इन्हीं कारणों से भूषण को वीर रस का श्रेष्ठ कवि कहा जाता है।

हम देखते हैं कि भूषण का काव्य राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। भूषण उस समय के कवि थे जब शासन की बागडोर मुग़लों के हाथ में थी तथा औरंगज़ेब शासक था। औरंगज़ेब की कट्टरता के कारण मुगल सत्ता की पकड़ कमज़ोर होती जा रही थी। इसी समय शिवाजी व छत्रसाल से मिलकर भूषण ने जनता के बीच राष्ट्रीय भावना का संचार किया। उन्होंने तत्कालीन जनता की आवाज़ को अपनी कविताओं का आधार बनाया तथा अपने काव्य में स्वदेश अनुराग, साहित्य अनुराग, संस्कृति के प्रति अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग आदि का वर्णन किया है।

भूषण के काव्य को पढ़ने से यह पता चलता है कि इन्हें अपने देश से गहरा लगाव था। इन्होंने कविता का प्रयोग भारतीय जनता को उसका खोया गौरव याद दिलाने के लिए किया था। इन्हें साहित्य तथा वेदशास्त्रों से बहुत अधिक लगाव था। इन्होंने प्राचीन साहित्य के आधार पर ही अपने काव्य की रचना की, उनका साहित्य प्रेम और राष्ट्रीय भावना को दर्शाता है। जैसे

रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत को बरवानि यों बलन के।

भूषण के काव्य में सजीवता एवं उमंग का भाव भी पाया जाता है। कवि ने अपने साहित्य में मुगलों के साथ शिवाजी के संघर्ष का बहुत ही उत्साहपूर्ण शैली में वर्णन किया है जिन्हें हम इन कविताओं के माध्यम से देख सकते हैं।

दावा पातसाहन सों किन्हों सिवराज बीर,
जेर कीन्ही वेस हृदय बांध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामै शरव्यौ न भवास कोऊ

छीने हथियार डोलै बन बनजारे से॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण का काव्य राष्ट्रीय चेतना से भरा हुआ है।

अतः हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास में कवि भूषण का नाम वीर रस से परिपूर्ण काव्य रचना के लिए हमेशा याद किया जाएगा। इनकी कविताओं में वीर, रौद्र और भयानक रसों का जितना सुंदर प्रयोग हुआ है वैसा किसी और कवि की रचना में मिलना दुर्लभ है।

बोध प्रश्न

1. भूषण के काव्य की क्या विशेषताएँ हैं?

(ख) रचना यात्रा

भूषण रीतिकाल के ऐसे कवि हैं जिन्होंने रीतिकालीन शृंगार भावना को छोड़कर वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ लिखी। इनके वीर काव्य को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि उसका संबंध रीतिकाल की मनोवृत्ति अर्थात् शृंगार से उतना नहीं, जितना आदिकाल की मनोवृत्ति अर्थात् शौर्य से है। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तिकाल को पार कर, रीतिकाल मानो वीरगाथा काल से गले मिल रहा हो।

भूषण की कई रचनाओं का उल्लेख हम साहित्य के इतिहास के अंतर्गत पाते हैं। शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में भूषण की चार रचनाओं का उल्लेख किया है- शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। इन ग्रंथों में केवल शिवराज भूषण ही अभी उपल्बध है। इनके अलावा दो और ग्रंथों का उल्लेख मिलता है - 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक'।

शिवाजी के आश्रय में रहकर भूषण ने 1673 में 'शिवराज भूषण' और 'शिवा बावनी' ग्रंथों की रचना की तथा साथ में बहुत से स्फुट छंदों की भी रचना की। राजा छत्रसाल की प्रशंसा में उन्होंने 'छत्रसाल दशक' की रचना की। कुछ इतिहासकारों ने 'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास' तथा 'भूषण हज़ारा' नामक और तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है, किंतु वे अब कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

भूषण वैसे तो वीर रस के ही कवि थे किंतु कहीं कहीं पर इनके दो चार शृंगार रस के कवित्त भी मिलते हैं, पर उनकी गणना अलग ग्रंथ के रूप में नहीं की जा सकती। इन्होंने मुख्यतः महाराज शिवाजी और बुंदेला वीर छत्रसाल की प्रशंसा करते हुए तीन प्रमुख ग्रंथ लिखे - शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक। शिवराज भुषण एक बहुत बड़ा ग्रंथ है तथा इसमें 385 पद्य हैं। इसमें शिवाजी के वीरता का वर्णन अलंकारों के रूप में किया गया है। इस ग्रंथ

में कवि ने शिवाजी के जन्म से लेकर 'हिंदु पद पादशाही' के बनने तक जितनी भी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, जो शिवाजी के जीवन को दर्शाती हैं उनका वर्णन ओजपूर्ण भाषा में किया है। इन घटनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कवि ने अपने समय की स्थितियों से भी अवगत कराया है।

इनका दूसरा ग्रंथ शिवा बावनी है, जिसमें 52 कवित्त हैं, और सभी में शिवाजी के शौर्य और वीरता का ओजपूर्ण वर्णन है।

इनके तीसरे ग्रंथ छत्रसाल दशक में केवल दस कवित्तों में बुंदेला के वीर राजा छत्रसाल के शौर्य का ज़िक्र किया गया है।

भूषण के ग्रंथों को देखकर यह कहा जा सकता है कि इनके काव्य की अंतर्वस्तु तत्कालीन समय और समाज से जुड़ी हुई थी। उन्होंने अपने काव्य का नायक शिवाजी और छत्रसाल को बनाया है तथा इनके शौर्य एवं पराक्रम का सच्चा रूप अपने ग्रंथ में दिखाया है।

बोध प्रश्न

2. शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में भूषण की कितनी रचनाओं का उल्लेख किया है?

(ग) रचनाओं का परिचय

महाकवि भूषण को हम युग-प्रवर्तक रचनाकार कह सकते हैं। ये रीतिकाल के कवि हैं किंतु इनकी कविता में शृंगार को छोड़कर वीर रस की प्रधानता देखी जाती है। इन्होंने अपने काव्य में दो महानायकों - शिवाजी और वीर महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में वीर रसपूर्ण काव्य की रचना की है। उन्होंने अपने काव्य में इन राजाओं की वीरता का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय भावना को पुष्ट करने का प्रयास किया है। इनकी रचनाओं में देश प्रेम और ओज की ऐसी धारा पाई जाती है जो रीतिकाल के अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलती। इनकी वीर रस से परिपूर्ण तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं - शिवराज भूषण, शिवाबावनी एवं छत्रसाल दशक। कवि भूषण के काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं।

1. वीर रस की प्रधानता

भूषण की कविता वीर रस प्रधान है। उनकी रचना शिवाबावनी में शिवाजी के वीरता का बहुत ही अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन देखा जा सकता है। इनकी कविता में एक ओर नायक के उत्साह को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर शत्रु पक्ष के भय का सुंदर चित्रण। इनकी तीनों कृत्तियों - शिवराजभूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक में वीर रस की अभिव्यंजना की गई है।

शिवाजी के चतुरंगिनी सेना लेकर चलने से लोगों के बीच उत्साह भाव की जागृति होती थी। उसका वर्णन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

साजि चतुरंग सेन अंग में उमंग भरि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलता है।
भूषण मनत नाद बिहद नगारन के
नदी नद मद गब्बरत के रलत है।।

2. देश प्रेम की भावना

भूषण को हम समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। ये किसी जाति विशेष के कवि नहीं थे। इन्होंने जिन दो राष्ट्रनायकों को अपने काव्य का नायक बनाया वे भारत के बिखरे हुए तथा भयभीत राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने में लगे हुए थे। इनकी कविता देश प्रेम से भरी हुई होती है अतः काव्य रसिकों ने उसे बहुत पसंद किया। इन्होंने केवल दो राजाओं की ही प्रशंसा में रचनाएँ लिखी। इनकी कविता में जनसामान्य का स्वर पाया जाता है, उसमें पूरा राष्ट्र गूँजता नज़र आता है।

देश प्रेम की भावना को अपनी कविताओं का विषय बनाकर कवि भूषण ने एक राष्ट्रीय कवि के कर्तव्य का पालन किया है। निम्नलिखित पंक्तियों में शिवाजी के महत्व को दिखा जा सकता है -

पीरा पैगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीति भई
शिवाजी न होतो तो सुनाति होती सबकी।।

3. राष्ट्रीय भावना की प्रधानता

भूषण ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना को भी दर्शाने का प्रयास किया है। उनके सामने राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा का भी प्रश्न था। इस समय औरंगज़ेब के अत्याचारों से जनता काफी परेशान थी। ऐसे में राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए शिवाजी महाराज को संघर्ष करना पड़ रहा था। अतः उन्हीं के संघर्ष को ध्यान में रखकर भूषण ने जनता को जगाने के लिए कुछ पंक्तियाँ लिखीं -

वेद रखे विदित पुरान सारयुत राखे,
राम-नाम राख्यौ अति रसना सुधार में
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे पै जनेऊ राख्यौ माला राखी गर में।।

4. युद्ध का सजीव वर्णन

भूषण की रचनाओं में युद्ध का बहुत ही सजीव वर्णन देखा जा सकता है। इनकी कविताओं में वीर रस एवं ओज गुण बहुलता से पाया जाता है। इनकी कविताओं को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि हम युद्ध के मैदान में हैं और युद्ध को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। सैनिक तथा घोड़े जब युद्ध के मैदान में दौड़ते हैं तो उस समय धूल के बवंडर में सूर्य एक छोटे तारे जैसा नज़र आता है तथा चारों ओर खलबली मची होती है। इन सबका बहुत ही सजीव वर्णन इनकी कविताओं में मिलता है। भूषण ने योद्धाओं की मनोदशा, उत्साह आदि का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। यह चित्रण उन्होंने आँखों देखी अनुभूति के आधार पर किया है।

5. धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति

वैसे देखा जाए तो भूषण राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं, किंतु इनकी रचनाओं में हमें धार्मिक भावों की भी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उन्होंने औरंगज़ेब के अत्याचार को जब देखा तब उनका मन व्याकुल हो उठा। वे धर्म विरोधी मुस्लिम साम्राज्य के प्रति मुखर हो उठे वैसे उनका विरोध मुसलमानों से नहीं था। उस समय के शासक जो अत्याचार और अन्याय जनता के साथ कर रहे थे उनसे उनका विरोध था। अत्याचार और अन्याय से उनका विरोध था। इस समय की स्थिति का वर्णन हम निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं -

बैठती दुकाने लेंकें रानी रजवारन की
तहां आइ बादशाह राह देखे सबकी

6. शिवाजी की महत्ता का निरूपण

भूषण ने अपने काव्य में शिवाजी को एक जननायक के रूप प्रस्तुत किया है। ऐसा जननायक जो अपनी प्रजा पर सब कुछ न्योछावर कर देते हैं। इन्होंने मुगलों से टक्कर ली और उनके अत्याचारों का विरोध करते हुए हिंदुओं के धर्म की रक्षा की। शिवाजी कवि भूषण के बहुत ही प्रिय थे।

हिन्दुन की चोटी रोटी राखी हैं सिपाहिन की
कांधे में जनेऊ राख्यों माला रखी गर में।।

भूषण की काव्यकला पर दृष्टि डाला जाए तो इनका काव्य अपने भावपक्ष व शिल्पपक्ष दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। वैसे तो उन्होंने रीतिकाल से चली आ रही लक्षण ग्रंथों की रीति का अनुसरण किया किंतु उन्हें प्रसिद्धि अपने ओजस्वी शैली में लिखे गए काव्य से ही मिली। उनके काव्य कला की प्रमुख विशेषताएँ -

भाषा सौंदर्य

भूषण के काव्य की जो सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा तथा ओज शैली है। वीर रस

एवं ओज गुण से मिश्रित होने के कारण इनकी कविता में कठोर संयुक्ताक्षर की प्रधानता है। मुख्यतः इनकी भाषा ब्रज है किंतु कहीं-कहीं फारसी एवं क्षेत्रीय शब्दों का भी प्रयोग देखा जा सकता है।

अलंकार

कवि भूषण को अलंकार का बहुत अच्छा ज्ञान था। इन्होंने शिवराज भूषण में 105 अलंकारों का निरूपण किया था जिनमें से 99 अलंकार अर्थालंकार हैं। इनके प्रिय अलंकार उपमा, उत्प्रेक्षा व रूपक है।

रस निरूपण

हम जानते हैं कि भूषण वीर रस के कवि हैं। उनका पूरा साहित्य वीर रस से भरा पड़ा है। इनके साहित्य को पढ़ने के बाद पाठक के मन में अनायास ही जोश एवं उत्साह भर उठता है। इनके काव्य में बीभत्स, रौद्र व भयानक रस भी दिखाई देते हैं।

छंद योजना

भूषण ने अपने काव्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। किंतु उनका प्रिय छंद मनहरण कवित्त है। अतः इसी छंद में इन्होंने अधिकतर रचनाएँ लिखी हैं। भूषण ने अपने काव्य में दोहा, छप्पय, हरिगीतिका, सवैया, गीतिका आदि छंदों का भी प्रयोग किया है।

विषय वस्तु

तत्कालीन शासकों से त्रस्त एवं पीड़ित जनता का चित्रण भूषण के काव्य में प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। भूषण ने शिवाजी को राष्ट्र नायक के रूप में अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। तथा लोगों के बीच राष्ट्रीय भावना को जगाने का प्रयास भी किया है। भूषण के काव्य की इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अगर हम इनकी रचनाओं पर प्रकाश डालें तो हम पाते हैं कि यह सभी विशेषताएँ उनकी रचनाओं में निहित हैं।

भूषण रीतिकाल वीर रस की कविता लिखने वाले कवि हैं। उन्होंने महाराज शिवाजी और बुंदेला के वीर छत्रसाल की प्रशंसा में मुख्य रूप से तीन ग्रंथ लिखे शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक। इनके अतिरिक्त उनके तीन और ग्रंथ हैं भुषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण हजारा। किंतु यह तीनों अभी उपलब्ध नहीं हैं।

शिवराज भूषण

शिवराज भूषण कवि भूषण का एक बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें शिवाजी के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन बहुत ही विस्तारपूर्वक किया गया है। इसमें पद्यों की संख्या 385 हैं। इसमें एक

ओर तो अलंकारों के लक्षणों का निरूपण हुआ है तथा दूसरी ओर उन अलंकारों के उदाहरण के रूप में शिवाजी के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। शिवराज भूषण में 105 अलंकारों का निरूपण हुआ है जिनमें 99 अर्थालंकार, 4 शब्दालंकार तथा 1 संकर और 1चित्र अलंकार हैं। इस ग्रंथ में कवि ने शिवाजी के जन्म से लेकर 'हिंदू पद पादशाही' की स्थापना तक शिवाजी के जीतने से संबंधित जितनी भी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं सभी का वर्णन किया गया है। इन घटनाओं का वर्णन करते समय कवि ने उस समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति का भी चित्रण किया है। कवि भूषण ने शिवाजी को औरंगज़ेब के अत्याचारों से पीड़ित जनता का शुभ चिंतक बताया है। इन्होंने शिवाजी को राम, कृष्ण, विष्णु तथा शिव का अवतार बताया। कवि ने औरंगज़ेब के क्रूरतापूर्ण व्यवहार का चित्रण भी इस ग्रंथ में जगह-जगह पर किया है। इस स्थिति का वर्णन भूषण ने अपनी कविता में इस प्रकार किया है -

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समै राव-राने सबै गए लबकी ।
गौरा गनपति आय, औरंग को देखि त्राप,
अपने मुकाम सब मारि गए दबकी।।

रीतिकाल के कवि होने कारण भूषण ने अपना मुख्य ग्रंथ शिवराज भूषण को माना जो की एक अलंकार ग्रंथ है। किंतु इसमें रीतिग्रंथ और अलंकार निरूपण की दृष्टि से बहुत सारी त्रुटियाँ पाई जाती हैं। अनेक स्थानों पर व्याकरण का उल्लंघन हुआ है तथा शब्दों के रूप भी बहुत जगह पर बिगड़े हुए हैं। किंतु इन सब के बावजूद जो कविता इन दोषों से मुक्त है वह प्रभावशाली है।

शिवाबावनी

शिवाबावनी में भूषण ने मुख्य रूप से छत्रपति शिवाजी महाराज के शौर्य एवं पराक्रम का ओजपूर्ण वर्णन किया है। यह 52 छंदों का काव्य है। इस ग्रंथ के बाद भूषण का नाम मुक्तक वीरकाव्यकारों में गिना जाने लगा। इस काव्य में रीतिरहित वीर रसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है। अतः यह एक राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत काव्य है। शिवाजी के शौर्य और उनकी सेना का वर्णन भूषण कुछ इस तरह से अपनी कविता के माध्यम से करते हैं -

भूषण भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौ कहौं,
मिम्मति यहाँ लगि है जाकी मट जोट मैं।
तात दै दै मुछन कगूरन पै पाँत दै दै,
अरि-मुख घाव दे दे कूदि परै कोट मैं।।

छत्रसाल दशक

कवि भूषण द्वारा रचि छत्रसाल दशक एक मुक्तक काव्य है। इसमें केवल दस कवित्तों के अंतर्गत बुंदेला के वीर राजा छत्रसाल के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। इस काव्य में रीतिरहित वीर रसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है।

अतः भूषण की रचनाओं की इन सब विशेषताओं को देखकर हम कह सकते हैं कि इनका काव्य तत्कालीन युग और समाज से जुड़ा हुआ है। उन्होंने शिवाजी और छत्रसाल की सच्ची प्रशंसा कर जनता में उनके प्रति श्रद्धा एवं उत्साह का संचार किया तथा लोगों के बीच राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत किया।

बोध प्रश्न

3. भूषण ने अपने किस काव्य में शिवाजी के वीरता का वर्णन किया है?

(घ) हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व

कवि भूषण का हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। ये वीर रस के कवि हैं। इनके वीर रस का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी बहुत हद तक उसमें सच्चाई दिखाई देती है। इनकी काव्य दृष्टि बहुत हद तक राष्ट्रीय कही जा सकती है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता का तत्व पाया जाता है। उन्होंने केवल आश्रयदाताओं की ही प्रशंसा नहीं की बल्कि धर्म संस्थापक, जननायकों के प्रशंसक भी हैं। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भूषण के बारे में लिखा है कि “शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं है, इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है।”

भूषण ने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना से लोगों को अवगत कराया है। उनकी कविता में जनजीवन का बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है तथा उसमें लोकमंगल की भावना दिखाई देती है। भूषण के काव्य को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उसकी अंतर्वस्तु तत्कालीन युग और समाज से जुड़ी हुई है। उन्होंने दो नायकों शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य एवं पराक्रम की अपने काव्यों में सच्ची प्रशंसा कर जनता में उत्साह भर दिया तथा इसी समय उन्होंने राष्ट्रीय भावना को भी जन समूह में जगाया। देश प्रेम और ओज की जो धारा उनकी रचनाओं में मिलता है वह रीतिकाल के किसी और कवि के काव्य में नहीं पाया जाता। अतः उन्हें एक राष्ट्रीय कवि के रूप में भी जाना जाता है।

कवि भूषण को भाषा पर बहुत अच्छी पकड़ थी। भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा बहुत सशक्त माध्यम है। भाषा के माध्यम से ही उन्होंने अपनी रचना को वीर रस के अनुरूप

ओजपूर्ण एवं सशक्त बनाने में सफलता हासिल की। उनकी अनुभूति जितनी ठोस थी उतनी ही उनकी अभिव्यक्ति सुंदर थी। कवि भूषण का हिंदी साहित्य में बहुत अधिक महत्व है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन युग की परिस्थितियों को सामान्य जन के सामने रखा। जनता में देश प्रेम की भावना जाग्रत कर भूषण ने एक राष्ट्रीय कवि के कर्तव्य का भरपूर पालन किया है।

अतः हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास में कवि भूषण का स्थान अपने वीररस एवं ओजपूर्ण कविताओं के लिए हमेशा याद किया जाएगा। अनेक प्रकार के रसों का ऐसा मिश्रण इनकी कविताओं में पाया जाता है।

बोध प्रश्न

4. भूषण के काव्य का मुख्य रस क्या था?

21.4 पाठ-सार

कवि भूषण रीतिकालीन कवियों में वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये कानपुर के समीप तिकवापुर निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। भूषण की उपाधि इन्हें चित्रकूट के राजा रुद्रसाह सोलंकी ने प्रदान की थी। तभी से ये भूषण के नाम से प्रसिद्ध हो गए। ये छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल, बुंदेला आदि अनेक राजाओं के यहाँ रहे। शिवाजी के यहाँ रहकर इन्होंने 'शिवराजभूषण', शिवाबावनी आदि रचनाओं की रचना की। इन्होंने राजा छत्रसाल की प्रशस्ति में 'छत्रसालदशक' की रचना की। इनका मुख्य ग्रंथ शिवराजभूषण है।

भूषण को वीर रस के काव्य लिखने में बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इनके काव्य में राष्ट्रीयता की प्रधानता पाई जाती है। उनके काव्य में मुख्य रूप से वीर रस की प्रधानता पाई जाती है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भूषण के काव्य में केवल अपने आश्रयदाओं की प्रशंसा व युद्धों का ही वर्णन नहीं था बल्कि उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से धर्म व संस्कृति की सुरक्षा की। उनका विरोध तत्कालीन मुस्लिम शासकों से नहीं था, बल्कि उनके द्वारा किए जाने वाले अन्याय के विरुद्ध था।

भूषण की काव्यकला बहुत ही उच्च कोटि थी। उनके काव्य का भावपक्ष तथा शिल्पपक्ष दोनों ही बहुत उत्कृष्ट श्रेणी में आता है। वैसे तो भूषण ने रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों की परिपाटी को अपनाया किंतु उन्हें अपने ओजस्वी शैली में लिखे काव्य से प्रसिद्धि मिली। कवि भूषण के काव्य की मुख्य विशेषता उसकी भाषा व ओज शैली है। इनकी भाषा मुख्यतः ब्रज है, परंतु जगह-जगह पर फारसी और क्षेत्रीय बोलियों का भी प्रयोग पाया जाता है। अलंकारों का भी इन्हें

बहुत अच्छा ज्ञान था। रस निरूपण में भी यह बहुत दक्ष थे। भूषण ने अपने काव्यों में विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है। छंद योजना का इन्हें बहुत ज्ञान था।

अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भूषण अपने युग के एक महान कवि थे। इन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग केवल अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए नहीं किया बल्कि स्वधर्म एवं स्वजाति के संरक्षकों के उत्साह को बढ़ाने के लिए किया।

21.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं -

1. रीतिकाल में वीर काव्य की रचना करने वाले प्रमुख कवि हैं 'भूषण'। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल की प्रशंसा में वीर काव्य की रचना की।
2. भूषण के मुख्य ग्रंथ हैं शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक।
3. कवि भूषण के मुख्य आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल थे।
4. भूषण के काव्य में ओज गुण और वीर रस की प्रधानता है, ये रीतिकालीन राष्ट्रीय कवि हैं।
5. भूषण के काव्य में राष्ट्रीयता की प्रधानता पाई जाती है।
6. इनके काव्य में धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का भी वर्णन किया गया है।

21.6 शब्द संपदा

1. अतिशयोक्ति	=	बढ़ा-चढ़ाकर कही गई बात
2. अभिव्यक्ति	=	प्रकट करना, सामने लाना
3. आतंक	=	भय, डर, दबदबा
4. आश्रयदाता	=	सहारा या शरण देने वाला
5. छवि	=	सुंदरता, शोभा
6. पराक्रम	=	शौर्य, बल
7. परिपूर्ण	=	जो हर प्रकार से पूरा हो, संपूर्ण
8. बागडोर	=	लगाम में बाँधी जाने वाली रस्सी, दायित्व, सत्ताधिकार
9. मनोवृत्ति	=	मन की स्वाभाविक स्थिति
10. यशोगान	=	यश की कथा, प्रशंसा, तारीफ़
11. संघर्ष	=	टकराव, आगे बढ़ने के लिए किया जाने वाला प्रयत्न
12. सशक्त	=	जिसमें शक्ति हो, मज़बूत, शक्तिशाली
13. स्मरणीय	=	यादगार

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'वीर रस भूषण के काव्य का प्राण तत्व है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. भूषण की राष्ट्रीय चेतना पर प्रकाश डालिए।
3. भूषण के काव्य की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भूषण की काव्य-कला का वर्णन कीजिए।
2. भूषण के काव्य के मूल स्वरों पर प्रकाश डालिए।
3. भूषण की रचनाओं का नाम बताइए तथा किसी एक रचना का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।
4. भूषण का काव्य 'सांप्रदायिक सद्भाव' का काव्य है। इस पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. भूषण ने किस राजा की प्रशंसा में काव्य रचना की? ( )
   (क) रुद्रसाह (ख) महाराज शिवाजी (ग) हृदयराम (घ) छत्रसाल
2. भूषण के किस ग्रंथ में अलंकारों के लक्षणों का निरूपण हुआ है? ( )
   (क) शिवाबावनी (ख) छत्रसाल दशक (ग) शिवराजभूषण (घ) भूषण हज़ारा
3. भूषण के समय में किस मुग़ल शासक का वर्चस्व था? ( )
   (क) जहाँगीर (ख) औरंगज़ेब (ग) अकबर (घ) बहादुरशाह ज़फ़र

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. भूषण के पिता का नाम .... था।
2. भूषण की उपाधि इन्हें .... ने दी।
3. भूषण के काव्य का अंगीरस .... है।

III सुमेल कीजिए।

(1) रचना	(अ) 1613 ई॰
(2) जन्म	(आ) वीर
(3) मृत्यु	(इ) शिवाबावनी
(4) रस	(ई) 1715 ई॰

21.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्यक का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
2. हिंदी साहित्य का रीतिकाल, सुषमा अग्रवाल.
3. रीतिकालीन साहित्य का पुनमूल्यांकन, रामकुमार वर्मा.
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल.
5. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी.
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह.

इकाई 22 : शिवाजी की सेना

रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 मूल पाठ : शिवाजी की सेना
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
22.4 पाठ सार
22.5 पाठ की उपलब्धियाँ
22.6 शब्द संपदा
22.7 परीक्षार्थ प्रश्न
22.8 पठनीय पुस्तकें

22.1 प्रस्तावना

रीतिकालीन मनोवृत्ति का संबंध पूर्णरूप से शृंगार से नहीं है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भूषण का काव्य प्रस्तुत करता है। भूषण के काव्य में भक्तिकाल को लाँघकर रीतिकाल वीरगाथा से संपर्कगत होता प्रतीत होता है। वीर-परंपरा का काव्य रीतिकालीन शैली में ढलकर क्या स्वरूप लेता है, यह भूषण की कविता में देखा जा सकता है। भूषण का रचना कर्म ऐसा है जिसमें उस युग के अन्य कवियों में उनकी अलग पहचान बनती है।

उत्तर मध्य काल के प्रसिद्ध कवि भूषण (1613-1705) मुख्यतः देश प्रेम और राष्ट्रीयता की कविताएँ लिखकर प्रसिद्ध हुए। इनके 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' नामक तीन ग्रंथों में वीर रस की प्रधानता है। भूषण की कविता में जीवन का उल्लास है। रीतिकाल में भी वीर रस का सुंदर काव्य लिखने के कारण हिंदी साहित्य में कविवर भूषण का विशिष्ट स्थान है। शिवाजी महाराज के यश को चारों ओर फैलाने के लिए लिखे गए छंदों को पढ़ने से कोई भी वीरता की भावना से भर जाएगा। यहाँ 'शिवा बावनी' से दो पद प्रस्तुत हैं। इन पदों का कोई शीर्षक नहीं है। अध्ययन की सुविधा के लिए इनके प्रथम तीन चार शब्दों को शीर्षक मान लिया गया है।

22.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भूषण की कविता के केंद्रीय भाव से परिचित हो सकेंगे।
- भूषण के पदों की काव्यागत विशेषताओं को जान सकेंगे।
- महाराज शिवाजी की चतुरंग सेना के बारे में जान सकेंगे।
- भूषण के पदों में निहित उत्साह और ओज से परिचित हो सकेंगे।

22.3 मूल पाठ : शिवाजी की सेना

(क) अध्येय कविता का परिचय

शिवाजी अपनी सजी-धजी सेना को लेकर युद्ध के मैदान में जा रहें हैं। कवि भूषण इस दृश्य का शब्दों के द्वारा चित्रण करते हैं। अपार सेना के चलने से जीव जंतु, स्त्री पुरुष, राजा प्रजा, और गली नगर सब प्रभावित हो रहें हैं। सब भयभीत हैं। शत्रु के होश उड़ गए हैं। शत्रु की स्त्रियाँ अधिक भयभीत हैं। कवि की वाणी का ओज ऐसा है कि पाठक वीररसजनित स्फूर्ति का अनुभव करेगा। स्मरण रहे ये पद कवि की कविता के उत्तम उदाहरण भी हैं जिनमें भाव पक्ष के साथ साथ कला पक्ष भी मार्के का है।

(ख) अध्येय कविता

[1]

साजि चतुरंग सैन अंग मैं उमंग धारि
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत हैं।
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के
नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत हैं।
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं॥

[2]

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस-देस के।

नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निशाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल को दरारेन ते, कमठ करारे फूटे,
कर के से पात बिहराने, फन सेस के॥

निर्देश : 1. इन कवित्तों का एक एक कर सस्वर पाठ कीजिए। 2. इन कवित्तों का एक एक कर मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

साजि चतुरंग सैन अंग मैं उमंग धारि
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत हैं।
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के
नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत हैं।
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं॥

शब्दार्थ : साजि = सजा कर। चतुरंग = चतुरंगिणी सेना अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और पैदल। वीर रंग में = बड़ी बहादुरी के साथ। तुरंग = घोड़ा। जंग = लड़ाई। सरजा = सरेजाह (फ़ारसी शब्द) शिवाजी, यह मालोजी की उपाधि थी जो उन्हें अहमदनगर के दरबार में दी गई थी। सरेजाह का अर्थ है सर्वशिरोमणि। भनत या भणत = कहते हैं। नाद = आवाज़। विहद = बेहद। गैबर = मत्त हाथी। रलत हैं = मिल जाते हैं। ऐल = भीड़, कोलाहल, चीख-पुकार। फैल = फैलने से। ख़लक़ = संसार खैल-भैल = खलबली। गैल = रास्ता। तरनि = सूर्य। पारावार = समुद्र। सैल = पहाड़। उसलत = उठते। थारा = थाल।

संदर्भ : प्रस्तुत पद 'साजि चतुरंग वीर' महाकवि भूषण द्वारा रचित 'शिवा बावनी' से लिया गया है।

प्रसंग : इस पद में कवि ने शिवाजी की चतुरंगिणी सेना का विषद वर्णन किया है। भूषण का युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक रहा है। शिवाजी की सेना का रण के लिए प्रस्थान करते समय का चित्र इस पद में बहुत जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। युद्ध के उत्साह से युक्त सेनाओं

का रण प्रस्थान युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रण भूमि में हथियारों का घात-प्रतिघात, शूर वीरों का पराक्रम और कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि दृश्यों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या : अपनी चतुरंगिनी सेना को वीर रंग में सजाकर अर्थात् उत्साह से परिपूर्ण कर शिवाजी महाराज युद्ध जीतने के लिए निकल पड़े हैं। भूषण कवि कहते हैं कि सेना के आगे-आगे बड़े-बड़े नगाड़ों को बजाया जा रहा है और युवा मतवाले हाथियों के कान से निकलने वाला मद इतना अधिक है कि रास्ते के तमाम नदी-नाले उस मद से भर गए हैं। हाथियों की काया इतनी विशाल है अर्थात् वे इतने विशालकाय है और उनकी संख्या भी इतनी अधिक है कि रास्ते संकरे से लगने लगे हैं। मतवाले हाथियों के चलने से और उनका धक्का लगने से, रास्ते के दोनों ओर जो पहाड़ खड़े हैं, वे उखड उखड़ कर गिर रहे हैं। शिवाजी महाराज की विशाल सेना के चलने से इतनी धूल उड़ रही है कि आकाश पर धूल की पर्त ही छा गई है। इससे आसमान पर दमकता हुआ सूरज भी एक टिमटिमाते हुए तारे सा छोटा दिखने लगा है। सेना के चलने के कारण समुद्र भी ऐसे डोल रहा है जैसे किसी विशाल थाली में रखा हुआ पारद(पारा) पदार्थ इधर से उधर डोलता रहता है।

विशेष : इस पद में छंद का ध्वन्यात्मक सौंदर्य और उपमा अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने युद्धस्थल प्रयाण को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि पाठक ओज, उत्साह और वीरता से भर जाता है।

1. मनहरण छंद का उपयोग हुआ है। मनहरण छंद मे प्रत्येक चरण 31 अक्षर का होता है। साधारणतः 16 और 15 अक्षरों पर विराम होता है और अंत का अक्षर दीर्घ होता है। यहाँ पर मनहरण छंद का प्रयोग एवं शब्दों का चयन वीरता की ध्वनि उत्पन्न करने के लिए किया गया है।
2. अतिशयोक्ति अलंकार - “नदी नद मद गैबरन के रलत है” में अतिशयोक्ति अलंकार है। जहाँ पर कवि द्वारा ऐसा वर्णन किया जाए जिस पर सहज रूप से विश्वास न हो सके और वह सांसारिक अर्थों में ग्रहण करने योग्य न लगता हो, तो वहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। कहा जाता है कि हाथी जब युवावस्था में पहुँचता है तो उसके कानों से मद नामक एक नशीला पदार्थ निकलता है। शिवाजी की सेना में इतने हाथी हैं कि उनसे निकलने वाले मद से नदी नाले तक भर गए।
3. ध्वन्यात्मक सौंदर्य - कवि ने विशेष ध्वनि वाले वर्ण का प्रयोग करके कविता मे नाद-सौंदर्य उत्पन्न कर दिया है - “ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल।”

4. उपमा अलंकार - “तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि, थारा पर पारा पारावार यों हलत है।” सूर्य तारे के समान चमकहीन हो गया है। संसार थाली पर रखे हुए पारे सा हिल रहा है। सेना के चलने से उड़ने वाली धूल के आसमान पर छा जाने से सूर्य का तारे के समान टिमटिमाने के वर्णन में उपमा अलंकार का प्रयोग देखा जा सकता है।
5. “तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि”, यहाँ पर गुण दृश्यमान नहीं है, अर्थात् वह विशेषता प्रदर्शित ही नहीं की गई है अत: यहाँ पर ‘लुप्तोपमा’ अलंकार है। जहाँ उपमा अलंकार का कोई एक अंग लुप्त हो जाए, वहाँ लुप्तोपमा अलंकार होता है।
6. प्रस्तुत पद में शिवाजी कि चतुरंगिणी सेना के प्रयाण का चित्रण है। इसमें शिवाजी के हृदय का उत्साह स्थायी भाव है। युद्ध को जीतने कि इच्छा आलंबन है। नगाड़ों का बजना उद्दीपन है। हाथियों के मद का बहना अनुभाव है तथा उग्रता संचारी भाव है। इनमें सबसे पुष्ट उत्साह नामक स्थायी भाव वीर रस की दशा को प्राप्त हुआ है।

बोध प्रश्न

1. कविता का नायक कौन है?
2. उसकी सेना के चलने से प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ा है?
3. सूरज क्यों तारे सा दिखाई देने लगा है?
4. यह सेना कहाँ और क्यों जा रही है?

[2]

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निशाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल को दरारेन ते, कमठ करारे फूटे,
कर के से पात बिहराने, फन सेस के॥

शब्दार्थ : बाने = झंडे जो भालेदारों के भालों पर लगे रहते हैं। फहराने = उड़े। घहराने = भीषण आवाज़ होना। भहराने = हड़बड़ी में गिर जाना। पराने = भाग गए। निसान = भूषण जी के अर्थ में नगाड़े; घोड़ों पर नगाड़े वाले जो झंडा रखते हैं उसे निशान कहते हैं। उकसाने = उकस गए, ढीले पड़ गए। कुंभ = हाथी का सिर, घड़ा। कुंजर = हाथी। भौन = भवन या घर। दल = सेना।

दरारेन = धमाके। कमठ = कछुआ। करारे = मज़बूत। नग = पर्वत। हौदा = हाथी की पीठ पर रखे जाने वाले आसान जिसमें लोग बैठते हैं। पराने = भाग गए। न ठहराने = ठहर न सके। कुंजर = हाथी भजाने = भागने।

संदर्भ : 'बाने फहराने घहराने' प्रथम शब्दों से प्रस्तुत यह कवित्त राष्ट्रकवि भूषण द्वारा रचित है और 'शिवा बावनी' नामक ग्रंथ में संगृहीत है।

प्रसंग : शिवाजी की सेना की नरसंहारक क्षमता का काव्यमय वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। शिवाजी की सेना के झंडों के फहराने से और हाथियों के गले में बंधे हुए घंटों की आवाजों से देश-देश के राजा पल भर भी न ठहर सके। शत्रु सेना थर थर काँप रही है। समस्त संसार उलट पुलट हो गया है।

व्याख्या : भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी की सेना में भालों पर लगे हुए ध्वज फहराने लगे और हाथियों के गले में बंधे हुए घंटों में ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगीं। शिवाजी की इस पराक्रमी सेना के सम्मुख विभिन्न देशों के राजा-महाराजा पल भर भी न ठहर सके अर्थात् सेना का सामना कर पाने में समर्थ न हो सके। शिवाजी महाराज की सेना के चलने के कारण बड़े-बड़े पहाड़ हिलने-डुलने लगे हैं। गाँव और नगरों के लोग पहाड़ों के खिसकने की आवाजें सुनकर इधर-उधर भागने लगे। शिवाजी महाराज की सेना के नगाड़ों के बजने से भी यही प्रभाव पड़ रहा था। शत्रु-सेना के हाथियों पर बंधे हुए हौदे उसी तरह खुल गए, जैसे हाथियों के उपर रखे हुए घड़े हों।

शत्रु की स्त्रियाँ, ऐसे दृश्यों को देखकर जब अपने-अपने घरों की ओर भाग रही थीं, तब उनके सुंदर और घुँघराले केश हवा में इस तरह उड़ रहे थे, जैसे कि काले रंग के भौंरों के झुंड के झुंड उड़ रहे हों। शिवाजी की सेना के चलने से धरती पर जो धमक पैदा हो रही है, उसके कारण कछुए की मजबूत पीठ टूटने लगी है और शेषनाग के फनों की तो ऐसी दुर्दशा हो गई है, जैसे केले के वृक्ष के पत्ते टूक-टूक हो रहे हों।

विशेष :

1. धार्मिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी कछुए की पीठ और शेषनाग के फनों पर टिकी हुई है।
2. कहीं कहीं उक्त छंद के तीसरे चरण का इस प्रकार भी पाठांतर है : "हाथिन के हौदा लौं कसाने कुंभ कुंजर के भौन के भजाने अलि! छूटे लट केस के" अर्थात् हे अलि! (सखी) हाथियों के हौदे उनके मस्तक तक कसे रह गए, उन पर हम सवार न हो सकीं, और (भौन के भजाने) घर से भागते भागते हमारे सिर की सारी लटें खुल गई।
3. पूर्णोपमालंकार और अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग। पूरे पद में ध्वन्यात्मक सौंदर्य है। कवि जे वर्णों के प्रयोग में अपने विशेष काव्य-कौशल को प्रकट किया है।

बोध प्रश्न

5. इस पद के रचनाकार का नाम बताइए।

6. ‘केरा के से पात बिहराने फन शेष के’ का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
7. शिवाजी की सेना के नगाडों का प्रभाव किस प्रकार दिखाई पड़ता है?
8. बालों की लटों के समान क्या प्रतीत होते हैं?
9. किस कारण शेषनाग के फन केलों के पत्तों से चिर गए हैं?

काव्यगत विशेषताएँ

रीतिकाल में वीर रस की ओजपूर्ण कविता रचने वाले महाकवि भूषण की कविता की काव्यगत विशेषता देखते ही बनती है। यह तो स्पष्ट है ही कि उनकी रचना वीर रस से ओतप्रोत है। भूषण की मनोवृत्ति शृंगार की चर्चा के लिए नहीं। वे तो अपने भाई मतिराम से भी काव्य पृवत्तियों में भिन्न हैं। हाँ अलंकारों का विवेचन करते हुए काव्य रचना दोनों को प्रिय रही। भूषण के विवेचित अलंकारों पर जयदेव के चंद्रालोक तथा मतिराम के ललित-ललाम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

भूषण के काव्य में एक ओर तो अलंकारों का सायास नियोजन है, दूसरी ओर वीर रस की व्यंजना के लिए भाषा प्रयोग भी बहुत सुंदर है। द्वित्व व्यंजन, मूर्धन्य ध्वनियों और संयुक्त ध्वनियों को खोलकर प्रयोग करने की प्रवृत्ति उनमें खूब है। कवि ने अलंकारों के उदाहरण स्वरूप कवित्तों और सवैयों में शिवाजी के ओजपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन किया है। अन्य अनेक कवियों की तरह भूषण ने अर्थालंकारों पर अधिक ध्यान दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि भूषण ने शिवाजी से संबंधित छंदों की स्वतंत्र रूप से रचना की है और बाद में तत्कालीन साहित्यिक प्रथा के अनुसार उन्हें रीति क्रमानुसार रख दिया है। इसीलिए भूषण के विभिन्न पदों में एक ही अलंकार मिल जाता है। प्रतीक, संकर, छेकानुप्रास, निदर्शना, विभावना आदि अनेक अलंकारों के लक्षणों और उदाहरणों में वैषम्य और अनुपयुक्तता मिलती है। भूषण के काव्य के गंभीर अध्येता कहते हैं कि भूषण की भाषा ओजस्विनी और वीर-दर्प-पूर्ण अवश्य है, किंतु वह आडंबरयुक्त, अव्यवस्थित और तोड़े-मरोड़े गए शब्दों से भरा है। भूषण की साहित्यिक ब्रजभाषा में प्राकृत, पंजाबी, खड़ीबोली और अरबी- फारसी आदि के शब्द भी मिल जाते हैं।

भूषण की महत्ता आचार्यत्व में नहीं है वरन इस बात में है कि उन्होंने शृंगार की पीटी हुई लकीर को छोड़कर वीर रस के उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किए हैं।

बोध प्रश्न

10. भूषण के विवेचित अलंकारों पर किसका प्रभाव दिखाई देता है?
11. भूषण की भाषा की विशेषताएँ क्या हैं?

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

हिंदी साहित्य में वीर रस की कविता एक तो आदिकाल की वीर प्रशस्तियों में मिलती है और दूसरे स्वतंत्रता-संग्राम के समय की कविताओं में। इनके मध्य में शुद्ध वीर काव्य भूषण की कविता में मिलता है। आदिकाल की वीर गाथाओं में वीरता और प्रीति का मिश्रण है और आधुनिक काल की वीर कविता में करुणा का, किंतु भूषण की कविता शुद्ध वीर काव्य कहलाने योग्य है।

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल (लगभग सन 1643 से 1843 तक) सामान्य रूप से शृंगारपरक लक्षण-ग्रंथों की रचना के लिए जाना जाता है। किंतु अपने युग की सामान्य प्रवृत्ति को छोड़कर वीररसपरक राजप्रशस्तियों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करने वाले इस युग के आचार्य कवियों में भूषण (1613-1705) का नाम सबसे पहले लिया जाता है।

रीतिकाल के तीन प्रमुख कवि बिहारी, केशव और भूषण हैं। रीति काल में जब सब कवि शृंगार रस में रचना कर रहे थे, वीर रस में प्रमुखता से रचना कर भूषण ने अपने को सबसे अलग साबित किया। शिवाजी के आश्रय में इन्होंने 'शिवराजभूषण' और 'शिवाबावनी' की रचना की। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, "भूषण के चरित नायकों में शिवाजी सबसे ऊपर हैं। शिवराज की वीरता का गान करके कवि ने रीतिकालीन संवेदना और हिंदी भाषा के संस्कार को क्षेत्रीय दृष्टि से भी विस्तार किया है। मध्यदेशीय कवि ने महाराष्ट्र के नायक को अपने काव्य का नायक बनाकर अतिरिक्त दायित्व बोध का परिचय दिया।"

छत्रसाल की प्रशस्ति में 'छत्रसाल दशक' लिखा। कहते हैं कि महाराज छत्रसाल ने भूषण कवि की पालकी में अपना कंधा लगाया था जिस पर इन्होंने कहा था - 'सिवा को बखानों कि बखानौं छत्रसाल को'। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्हें एक एक छंद पर शिवाजी से लाखों रुपए मिले। भूषण की कविता को पढ़ने से पाठक को यह विश्वास हो जाता है कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा या झूठी खुशामद नहीं करते या केवल प्रथा का पालन मात्र नहीं करते।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में भूषण 'हिंदू जाति के प्रतिनिधि कवि' हैं और "भूषण की कविता कवि-कीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है।" डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "प्रेम और विलासिता के साहित्य की प्रधानता के युग में वीर रस के काव्य की रचना करने वाले कवि भूषण अतुलनीय हैं।" रीतिकाल में होने के कारण प्रभाव स्वरूप उनका ग्रंथ 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रंथ के रूप में लिखा गया किंतु भूषण पूर्णरूपेण वीररस के कवि हैं। वीररस का पूरा आवेश और आवेग भूषण की कविता में है। यहाँ यह जोड़ देना आवश्यक है कि उन्हें यदि हम हिंदू जाति का तत्कालीन प्रतिनिधि कवि मात्र कहकर अध्ययन करते हैं तो यह भूषण की कवित्व शक्ति के प्रति अन्याय होगा। यह भी देखना होगा कि उस समय की राष्ट्रीयता

में स्थानीयता और धार्मिकता का समावेश था। भूषण ने अपने समय के वातावरण के अनुकूल देश-रक्षा और धर्म रक्षा की ओर दृष्टिपात किया।

भूषण के काव्य में एक और अलंकारों का प्रयत्नपूर्वक नियोजन है, दूसरी और वीररस की व्यंजना के लिए ब्रज भाषा के लालित्य को संयुक्त ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त किया है। विषय के अनुरूप जिस ओजपूर्ण वाणी की अपेक्षा होती है वह इनमें सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीड़ित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वसान हैं। भूषण के चरित नायकों में शिवाजी सबसे ऊपर हैं। शिवाजी की वीरता का गान करके कवि ने रीतिकालीन संवेदना और हिंदी भाषा के संस्कार को क्षेत्रीय दृष्टि से विस्तार किया है। इनका समय औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब के समय से मुगल वैभव व सत्ता की पकड़ कमजोर होती जा रही थी। उसकी कठोरता ने उसे जनता से दूर कर दिया था।

संकट की इस घड़ी में भूषण ने शिवाजी व छत्रसाल के माध्यम से भारत भर में राष्ट्रीय भावना संचारित करने का प्रयास किया। कवि ने आश्रयदाताओं को परखकर इन दो वीर महापुरुषों को चरितनायक बनाया था। कवि ने औरंगजेब के कुकृत्यों की निंदा अवश्य की, परंतु उसके पुरखों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा भी यथास्थान की। वे नितांत अनुदार भी न थे। उन्होंने अकबर और शाहजहाँ की तारीफ भी की है। उन्होंने प्रतिनायक को भी अधिकांश स्थलों में पूरा सम्मान दिया है। उदाहरण प्रस्तुत है -

सिंह की सिंह चपेट सहे, गजराज सहे गजराज को धक्का।

भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। इन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग आदि का वर्णन किया है। संक्षेप में भूषण के काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. भूषण ने वीर रस की कविता की और मुख्यतः शिवाजी के चरित्र को संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया।
2. इनकी वाणी में ओज गुण की प्रधानता है।
3. इनको अपने भारतीय होने पर अभिमान था।
4. इन्होंने काव्य के साथ-साथ इतिहास का अच्छा निर्वाह किया है।
5. इनकी भाषा में 'ट' वर्ग की प्रधानता है। संयुक्त अक्षरों का सुंदर प्रयोग है। शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ साथ विदेशी शब्दों को भी मिलने में संकोच नहीं किया। किंतु उन्होंने इन शब्दों को अपनी भाषा में इस प्रकार से घुला मिला लिया है कि सारी शब्द योजना प्रभावित करती है। ब्रज भाषा में लिखे कवित्त-सवैयों में खड़ी बोली के आकारांत शब्दों का प्रयोग भी देखा जाता है। भूषण के काव्य में प्रयुक्त ब्रज भाषा शुद्ध ब्रज भाषा नहीं है, इसमें खड़ी बोली, अरबी, फारसी, बुंदेलखंडी, अवधी, अपभ्रंश आदि के शब्दों का योग भी है।

6. इनके अलंकारों के लक्षण रीति काल से अलग हैं। 'अलंकार भूषण' में अनेक अलंकारों की नुमाइश है। मुहावरों के साथ कवि-समयों और पौराणिक आख्यानों का भी उल्लेख है।
7. भूषण की महत्ता आचार्यत्व में नहीं है। वह इस बात में है कि उन्होंने शृंगार की पीटी हुई लकीर को छोड़कर वीर रस की कविता के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किए। इनकी शैली अति प्रभावोत्पादक, चित्रमय, ओजपूर्ण, ध्वन्यात्मक और सशक्त है। इनकी शैली युद्ध वर्णन में प्रभावपूर्ण, ओजस्विनी, तथा धार्मिकता और दानवीरता के चित्रण में प्रसाद गुण युक्त है।

यहाँ आपने जो दो कवित्त पढ़े वे दोनों ही उपरोक्त गुणों से युक्त हैं। इनका लययुक्त सस्वर वाचन आपके मन में उत्साह और देशभक्ति का संचार कर देगा।

बोध प्रश्न

12. रीतिकाल के तीन प्रमुख कवि कौन हैं?
13. भूषण के काव्य की चार विशेषताएँ बताइए।

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! भूषण की कविताओं के अध्ययन से आपकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई होगी कि रीतिकाल केवल शृंगारपरक रचनाओं तक सीमित नहीं है। केवल शृंगार की मनोवृत्ति को रीतिकाल की एकमात्र विशेषता नहीं माना जा सकता। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, शृंगार निरूपण के अलावा भक्ति काव्य, नीति काव्य और वीर काव्य की प्रवृत्तियाँ भी रीतिकाल में दिखाई पड़ती हैं। इन दोनों को इस काल की गौण प्रवृत्तियाँ कहा जाता है। भूषण का साहित्य रीतिकाल में वीर काव्य का प्रतिनिधित्व करता है। उनके यहाँ यह प्रवृत्ति इतनी तेजस्वी और ओजपूर्ण है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रीतिकाल अपने पूर्ववर्ती भक्तिकाल को लाँघकर आदिकाल की वीरगाथाओं से होड़ ले रहा हो।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस बात की ओर खास तौर पर ध्यान दिलाया है कि भूषण रीतिकाल में होते हुए भी वीरगाथाकालीन मनोवृत्ति से युक्त थे। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि अपने समय की काव्य प्रवृत्तियों से तो भूषण अलग हैं ही, साथ ही वे अपने सगे भाई मतिराम से भी अलग काव्य रुचि रखते हैं। यथा -

> "वीर-परंपरा का काव्य जिस तरह रीतिकालीन शैली में ढला है उससे इतिहास में साहित्यिक युगों की परिकल्पना अच्छी तरह प्रमाणित होती है। एक युग में एक ही केंद्रीय मनोवृत्ति बराबर सक्रिय होती दिखाई देती है। भूषण और मतिराम सगे भाई कहे जाते हैं यद्यपि उनकी काव्य प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से अलग हैं। एक की रचना वीर रस की है जिससे उस युग के अन्य प्रसिद्ध कवियों में उनकी पहचान अलग बनती है, दूसरी ओर मतिराम हैं जिनमें शृंगार की सूक्ष्म परिकल्पना एकदम विशिष्ट है। दोनों रीतिकाल की विभूति हैं, तथा दोनों में

अलंकार-विवेचन की समान प्रवृत्ति है। यों वे न केवल वंश-परंपरा में भाई वरन रचना-परंपरा में भी समगोत्रीय हैं, यद्यपि वर्ण्य विषय की दृष्टि से वे एक दूसरे की विपरीत दिशा में हैं।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 66)

भूषण की मनोवृत्ति वीर रस के सर्वाधिक अनुकूल थी। उन्हें शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर नायक प्राप्त हुए जो उनकी रचनाओं के प्रशंसक थे। भूषण की रचनाओं ने इन नायकों और इनकी सेनाओं को वीरतापूर्ण संघर्ष की प्रेरणा दी। लेकिन अपने समय की मुख्य साहित्यिक प्रभाव से भूषण भी नहीं बच सके। उस काल की अतिशय अलंकार प्रियता भूषण की रचनाओं में साफ-साफ देखी जा सकती है। वे शब्दों के साथ खिलवाड़ भी खूब करते हैं। इससे भी उनके काव्य का ओज गुण बढ़ा ही है। वास्तव में समूचे रीतिकाल में उनके जैसी ओजस्वी वाणी और किसी के पास नहीं है। उनके बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन उल्लेखनीय है कि-

> "शृंगार के व्यापक प्रभाव को अतिक्रम कराके ये अपनी कविता को वीर रस की गंगा में स्नान करा सके। यद्यपि उस वीर काव्य में परंपरागत रूढ़ियों का और चारण कवियों की उस प्रथा का प्रभावपूर्ण रूप से पालन किया गया है जिसमें ध्वनि को अर्थ से अधिक महत्व दिया जाता है और उसकी प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए शब्दों को यथेष्ट तोड़ा-मरोड़ा जाता है, फिर भी भूषण की कविता में प्राण है। वह सोए हुए समाज को उद्बुद्ध करने की शक्ति रखती है।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 169)

यह तथ्य भी काफी रोचक है कि भूषण ने अपने काल की मुख्य प्रवृत्ति का भी पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने रीति निरूपण करने वाले काव्य की भी रचना की और अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। उनका अलंकार ग्रंथ 'शिवराज भूषण' उन्हें रीतिग्रंथकारों में स्थान दिलाने में समर्थ है। उनकी 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल दशक' नामक रचनाएँ मुक्तक शैली में रचित वीर काव्य हैं। इन दोनों ही रचनाओं में राष्ट्रीयता का भाव जगाने वाली राजस्तुति कवि को कालजयी गौरव दिलाने वाली सिद्ध हुई है।

आलोचकों ने इस बात की ओर ध्यान दलाया है कि भूषण की राजस्तुति अन्य कवियों की राजस्तुति से अलग है। रीतिकालीन अनेक काव्यों के काव्य नायक वास्तव में उस गौरव के अधिकारी नहीं होते, जो उनके रचनाकार उन्हें प्रदान करते हैं। लेकिन भूषण के काव्य नायक सच्चे शूर वीर थे। इसलिए भूषण की कविता राजस्तुति होते हुए भी सच्चाई और ईमानदारी की वह खुशबू लिए हुए है, जिसकी महक से रीतिकाल का साहित्य सचमुच सुवासित हो गया। डॉ.अंबाप्रसाद 'सुमन' के शब्दों में -

> "भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक हैं। उन्होंने राष्ट्रीयता की परिभाषा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से की है। उनकी वाणी प्रपीड़ित राजा के प्रति एक अपूर्व आश्वासन है। चाहे भूषण की कविता में उत्कृष्ट मर्मज्ञ कवि की सूक्ष्म कवित्वकला न हो, किंतु

उनके काव्य में ओज का प्रभावी घोष अवश्य है, जो रग-रग में रक्त का संचार करने में समर्थ है। वीर रसानुकूल ब्रजभाषा लिखने में भूषण सिद्धहस्त हैं।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 371)

22.4 पाठ-सार

कवि भूषण द्वारा रचित इन दो पदों को भूषण की ओजपूर्ण, राष्ट्रीयता से ओतप्रोत कविताओं की बानगी के रूप में लिया जा सकता है। शिवाजी की सजीधजी सेना का जंग (युद्ध) जीतने के लिए जाना और उसका जनजीवन पर प्रभाव देखते ही बनता है। कुछ अतिशयोक्ति भी है किंतु कवि के आलंकारिक शब्द प्रयोग और गेयता के कारण आप इस कविता-पाठ में रम जाते हैं। कविता के शिल्प में पिरोकर वर्णन की माला ऐसी पिरोई गई है कि उसका एक एक पुष्प अलग अलग महकता है। एक एक पंक्ति में एक एक सजीव चित्र है। आप स्वयं इन संकेतों के आधार पर सार क्या व्याख्या भी लिख सकते हैं। नीचे भूषण के विषय में कुछ संकेत बिंदु हैं, इनका ध्यान रखना चाहिए।

प्रमुख ग्रंथ - शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक।

वर्ण्य विषय - शिवाजी तथा छत्रसाल के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन।

भाषा - ब्रज भाषा जिसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की, बुंदेलखंडी और खड़ी बोली के शब्द मिले हुए हैं। व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं और शब्द बिगड़ गए हैं।

शैली - वीर रस की ओजपूर्ण शैली।

छंद - कवित्त, सवैया।

रस - प्रधानता वीर, भयानक, वीभत्स, रौद्र और शृंगार भी है।

अलंकार - प्रायः सभी अलंकार हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भूषण ने वीर रस की कविता की और मुख्यतः शिवाजी के चरित्र को संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। इनकी वाणी में ओज गुण की प्रधानता है। इनको अपने भारतीय होने पर अभिमान था। इन्होंने काव्य के साथ-साथ इतिहास का अच्छा निर्वाह किया है।

22.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. भूषण रीतिकाल के उन कवियों में प्रमुख हैं जिन्होनें उस काल की मुख्य प्रवृति अर्थात् शृगार निरूपण से अलग हटकर काव्य रचना की।
2. भूषण रीतिकाल में वीररस के इकलौते उत्कृष्ट रचनाकार हैं।
3. भूषण की कविता में पाठक और श्रोता को उत्साह से भर देने का अद्भुत गुण मिलता है।
4. भूषण ने वीररस के लिए ओज उत्पन्न करने के उद्देश्य से ब्रज भाषा के शब्दों को बड़ी हद तक तोड़ा-मरोड़ा है।
5. भूषण का काव्य योद्धाओं को प्रेरित करने के लिए रचा गया है, इसलिए उसमें अतिशयोक्ति का खुल कर इस्तेमाल दिखाई देता है।

22.6 शब्द संपदा

1. आख्यान = कहना, सूचित करना, वर्णन, वृत्तांत, कथा की परिभाषा

2. आश्रयदाता = आश्रय या सहारा देने वाला

3. कवि-समय = कवि समाज में प्राचीन काल से ही मान्य परंपराएँ तथा परिपाटियाँ

4. गेयता = लयबद्ध, संगीतबद्ध, गाने योग्य

5. प्रतिनायक = नाटकों और काव्यों आदि में नायक का प्रतिद्वंद्वी पात्र। जैसे, रामायण में राम का प्रतिनायक रावण है।

6. प्रशस्ति = किसी व्यक्ति या वस्तु की प्रशंसा में लिखा गया भाषण, कविता या ग्रंथ

22.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भूषण कवि किस प्रकार अपने युग के कवियों से भिन्न हैं?
2. भूषण के साहित्यिक प्रदेय का आकलन कीजिए।
3. भूषण सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रीय कवि' हैं। स्पष्ट कीजिए।
4. पठित अंश के आधार पर सिद्ध कीजिए कि भूषण सही अर्थों में वीर रस के कवि हैं।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. शिवाजी के युद्ध अभियान का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
2. पठित पदों के आधार पर भूषण की कविता के कलापक्ष की कुछ विशेषताएँ लिखिए ।
3. "पठित कविताओं में अतिशयोक्ति अलंकार के प्रयोग द्वारा चमत्कार किया गया है।" विचार कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. भूषण के संकलित पदों में .... रस प्रमुख है? ( )

   (क) शृंगार (ख) वीर (ग) करुण (घ) हास्य

2. .... भूषण की रचना नहीं है। ( )

   (क) शिवाबावनी (ख) शिवराजभूषण (ग) शिवराजविजय (घ) छत्रसाल दशक

3. शिवाजी की सेना के चलने से समुद्र ....की भाँति डोलता है। ( )

   (क) थाली (ख) पारा (ग) पानी (घ) धरती

4. सरजा सिवाजी .... जीतन चलत हैं। ( )

   (क) युद्ध (ख) चतुरंग (ग) जंग (घ) शतरंज

5. गजन की ठैल-पैल सैल .... हैं। ( )

   (क) रलत (ख) हलत (ग) उसलत (घ) चलत

6. बाजत निशाने सिवराज जू ……….. के ( )

   (क) नरेस (ख) महेस (ग) गनेस (घ) दिनेस

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. प्रेम विलासिता के युग में भूषण ने .... की कविता की।
2. भूषण मुख्यतः .... और छत्रसाल की प्रशंसा की है।
3. भूषण ने अपने काव्य की रचना .... भाषा में की।

4. भूषण की भाषा .... गुण से युक्त है।

III सुमेल कीजिए।

1. आश्रयदाता	क) ओज
2. कविता का स्वर	ख) वीर
3. मुख्य रस	ग) मुक्तक
4. शैली	घ) शिवाजी

22.8 पठनीय पुस्तकें

1. भूषण ग्रंथावली, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र.

2. शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक सहित. आनंद मिश्र 'अभय'.

3. शिवा-बावनी, हरिशंकर शर्मा कविरत्न.

इकाई 23 : घनानंद : व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना
23.2 उद्देश्य
23.3 मूल पाठ : घनानंद : व्यक्तित्व और कृतित्व
 23.3.1 जीवन परिचय
 23.3.2 रचना यात्रा
 23.3.3 काव्य की विशेषताएँ
 23.3.4 हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व
23.4 पाठ-सार
23.5 पाठ की उपलब्धियाँ
23.6 शब्द संपदा
23.7 परीक्षार्थ प्रश्न
23.8 पठनीय पुस्तकें

23.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास को चार चरणों में विभाजित किया गया है - आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। इसमें तृतीय चरण रीतिकाल में रीति अर्थात् शैली पद्धति पर कुछ न कुछ लिखने की प्रवृत्ति कवियों में पाई जाती थी। अर्थात् कविगण अपनी कविताओं को रीति के साँचे में ढालना पसंद करते थे। रीतिकाल में तीन प्रमुख काव्यधाराएँ प्रवाहित हुईं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवियों के लिए आवश्यक शर्त यह थी कि उन्हें नियमों से बँधा रहना पड़ता था।

रीतिसिद्ध कवियों के लिए इस प्रकार की कोई आवश्यक शर्त नहीं थी, परंतु यह भी भावाभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र नहीं थे। तीसरे प्रकार वे कवि थे जो रीति में बँधे हुए नहीं थे, ये रीतिमुत्त कवि कहलाए। जैसे घनानंद, बोधा, ठाकुर आदि। इन कवियों को रीति में बँधकर काव्य रचना करना पसंद नहीं था। वे अपने हृदय की उमंगपूर्ण भावनाओं को उसी रूप में अभिव्यक्त किया जैसा चाहते थे। अतः घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। रीतिमुक्त कवियों में घनानंद सर्वश्रेष्ठ हैं। इनकी कविता का सबसे सुंदर पक्ष गेयता है। घनानंद बहुत ही सहज व सरल भाषा के कवि माने जाते हैं।

23.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्य के इतिहास के विकास-क्रम में रीतिकालीन स्वच्छंद काव्यधारा की उपस्थिति से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्यधारा के उल्लेखनीय कवि घनानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- घनानंद के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्य के इतिहास में घनानंद के महत्व को समझ सकेंगे।

23.2 मूल पाठ : घनानंद : व्यक्तिव और कृतित्व

23.3.1 जीवन परिचय

रीतिमुक्त काव्यधारा के शृंगारी कवि घनानंद का जन्म 1689 ई. में बुलंदशहर में एक कायस्थ परिवार में हुआ। ये मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के मीर मुंशी थे। इन्हें ब्रजभाषा काव्य का प्रधान स्तंभ माना जाता है। इन्हें कला की बहुत अच्छी पहचान थी। माना जाता है कि यह 'सुजान' नामक वेश्या से प्रेम करते थे। वे सुजान पर अनुरक्त थे, क्योंकि वह गायन, वीणावादन एवं नृत्य में बहुत निपुण थी। इनका सुजान से लगाव बहुत गहरा और आजीवन रहा और इनके काव्य सर्जन की मुख्य प्रेरणा बन गई। इनके बारे में एक घटना प्रसिद्ध है, एक दिन दरबार के कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाना बहुत अच्छा गाते हैं। बादशाह ने उनसे गाने को कहा परंतु उन्होंने बहुत टालमटोल किया। तब लोगों ने कहा कि ये इस तरह से नहीं गाएँगे, यदि इनकी प्रेमिका सुजान गाने को कहेंगी तब गाएँगे। वेश्या सुजान बुलाई गई और तब घनानंद ने उसकी तरफ मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके गाना सुनाया। बादशाह इनके गाने से तो प्रसन्न हुए किंतु इनकी बेअदबी से बहुत नाराज़ हुए और उन्हें शहर से बाहर निकल जाने का आदेश दे दिया। जब घनानंद ने सुजान से अपने साथ चलने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। इस घटना ने इन्हें वैराग्य की ओर उन्मुक्त कर दिया और ये वृंदावन आकर निंबार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए। और वही पूर्ण रूप से रहने लगे। इन्हें वृंदावन से बहुत अधिक लगाव था।

1739 ई. में नादिरशाह का आक्रमण हुआ और उसके सेना के सिपाही मथुरा तक आ पहुँचे तब किसी ने उनसे कह दिया कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है। और उसके पास बहुत सा माल होगा। सिपाहियों ने उन्हें जा घेरा और उनसे धन माँगा उन लोगों ने 'जर जर जर' अर्थात् 'धन धन धन' कहते हुए उनसे धन की माँग की। घनानंद के पास धन कहाँ से

आता। उनके पास तो केवल ब्रजभूमि की धूलि अर्थात् 'रज' थी। यों उन्होंने 'जर' को उलटकर उसके बदले में 'रज रज रज' कहा और तीन मुट्ठी धूल उन सैनिकों की ओर फेंक दी। सैनिकों ने इसे अपना अपमान समझा और क्रोध में आकर उन्होंने तलवार से घनानंद का हाथ काट डाला। बहुत अधिक खून बह जाने के कारण बाद में उनकी मृत्यु हो गई। उसी पीड़ा से गुजरते हुए घनानंद ने मरते समय अपने रक्त से यह कविता लिखी थी -

बहुत दिनान के अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौ।
कहि कहि आवन संदेसौ मन भावन को
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को
झूठी बतियानि की पत्यानि तै उदास ह्वै कें
अब न धिरत घन आनंद निदान को
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसौ लै सुजान कौ॥

अर्थात् लंबे समय से प्रियतम (सुजान अथवा कृष्ण) की प्रतीक्षा करते-करते मेरे प्राण अटके हुए हैं और अब जाने के लिए तैयार है। अब तक मेरे जीते रहने का कारण यह है कि बार-बार मुझे ऐसे संदेश प्राप्त होते रहे हैं कि मेरे मनभावन आने वाले हैं। यही आशा अब तक मेरे प्राणों को जाने से रोके हुए है। लेकिन अब इन झूठी बातों पर और विश्वास नहीं किया जा सकता। इससे मेरे प्राण उदास हो गए हैं। अब मुझसे और धीरज नहीं रखा जाता। विरह की भीषण पीड़ा के कारण अब मेरे प्राण होंठों तक आ चुके हैं। और बस निकलना ही चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अब सुजान कृष्ण का मुझे बुलाने का संदेश आ गया है। इस संदेश को लेकर अब मेरे प्राण उनसे मिलने के लिए प्रयाण करना चाहते हैं।

घनानंद की कविताओं में बहुत सारी अनूठी भावनाएँ पाई जाती हैं। इनकी कविताओं में 'सुजान' शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। इनकी मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण के समय 1739 ई. में हुई।

रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद महान प्रेमी थे। वे सुजान से प्रेम करते थे। उनका प्रेम वियोग व्यथा पर आधारित था तथा उसमें अलौकिकता, नवीनता, मार्मिकता, कष्ट जैसे गुण पाए जाते हैं। उनके काव्य में प्रेम का सरल सहज और स्वच्छंद रूप दिखाई पड़ता है। ये प्रेम की पीर के कवि हैं। इन्होंने प्रेम विभोर हृदय की सभी वृत्तियों का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "प्रेम की गूढ़

अंतर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है, वैसा हिंदी के किसी अन्य शृंगारी कवि में नहीं।" घनानंद का प्रेम चित्रण एक बंधी बंधाई परिपाटी में नहीं पाया जाता है। उसमें नैसर्गिकता पाई जाती है।

घनानंद को हम विरह का कवि भी कह सकते हैं। उनके हृदय में विरह का अथाह सागर था। विरह ही उनके प्रेम की कसौटी है। इनका प्राण रात-दिन विरह वेदना में जलता रहता है। इनका प्रेम वैसे तो लौकिक है किंतु कहीं-कहीं प्रेम इतनी प्रकाष्ठा पर पहुँच जाता है कि उसमें अलौकिकता झलकती है। जैसे -

"पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरती में धसौं कै अकासहिं चीरौ"

हे प्रभु मैं तुम्हें कहाँ खोजूँ; क्या इसके लिए मैं धरती को फाड़कर उसमें धसूँ या आकाश को चीर डालूँ?

इनका विरह स्वानुभूति पर आधारित है। इसलिए दिनकर ने घनानंद के विरह पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "वे अपने आँसुओं से रो रहे हैं, किराए के आँसुओं से नहीं।" अतः इसी कारणवश हम अगर घनानंद को विरह-सम्राट कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। घनानंद के प्रेम में विरह की प्रधानता पाई जाती है अतः उनका काव्य विरह काव्य ही है।

घनानंद ने अपनी कविताओं में भावों का बहुत अधिक प्रयोग किया है। जैसे रीझ, विषाद, उलझन, अभिलाषा आदि। घनानंद को भाषा पर अधिकार था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद के संदर्भ में कहते हैं कि "भाषा के लक्षक एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है इसकी परख इन्हीं को थी।" इन्होंने अपनी कविता में संयोग और वियोग दोनों का ही चित्रण किया है किंतु इनका वियोग पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। इन्होंने सौंदर्य, प्रेम और विरह का चित्रण भी बहुत ही उत्कृष्ट रूप में किया है। उन्होंने अपनी प्रियतमा के सौंदर्य का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है -

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपाल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥

इस प्रकार घनानंद ने विरह वेदना का वर्णन बहुत ही मर्मस्पर्शी भाषा में किया है। अतः हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन प्रबंधकाव्य में जो स्थान तुलसीदास के रामचरितमानस का है, वही इस काल में घनानंद के कवित्त तथा सवैयों का है।

घनानंद की भाषा सरल ब्रजभाषा है। यह शुद्ध ब्रजभाषा के शब्द अपने काव्यों में प्रयोग करते हैं। ब्रजभाषा के ये मर्मज्ञ कवि कहे जा सकते हैं। इन्हें ब्रजभाषा पर आसाधारण अधिकार था।

बोध प्रश्न

1. घनानंद किस काव्यधारा के कवि हैं?
2. घनानंद के काव्य सृजन की मुख्य प्रेरणा कौन थी?
3. घनानंद ने किस संप्रदाय में दीक्षा ली?
4. घनानंद किस भाषा के कवि थे?
5. घनानंद और सुजान का प्रेम किस प्रकार के प्रेम था?

23.3.2 रचना यात्रा

प्रेम की पीर के कवि घनानंद की कविता में वियोग की प्रधानता पाई जाती है। इन्होंने 41 ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचनाओं को दो वर्गों में बाट सकते हैं - एक, लौकिक शृंगार और भक्ति संबंधी रचनाएँ। ये प्रायः कवित्त-सवैयों में रची गई है। दूसरे वर्ग की रचनाएँ पदों एवं दोहे-चैपाइयों में हैं। अब तक प्राप्त कवित्त-सवैयों की संख्या 752 है तथा पदों की संख्या 1057 और दोहों-चैपाइयों की संख्या 2354 है। इनकी कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं - सुजानसागर, विरहलीला, रसकेलिवल्ली, कृपाकंद, सुजानहित, घनानंद कवित्त, सुजान विनोद, इश्कलता आदि। कृष्णभक्ति संबंधी इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छत्रपुर के राजपुस्तकालय में है जिसमें प्रियाप्रसाद, ब्रजव्यवहार, वियोग वेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश गोकुल विनोद, धामचमत्कार, कृष्णाकौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, रसबसंत इत्यादि अनेक ग्रंथ पाए गए हैं। इनका ग्रंथ विरहलीला की भाषा ब्रज है, किंतु इसके छंद फारसी के हैं। इनकी रचनाओं का सर्वप्रथम प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'सुंदरीतिलक' में कराया था। इसके बाद सन 1870 में उन्होंने 'सुजान शतक' के नाम से उनके 119 कवित्त प्रकाशित किए। इसके बाद सुजानहित तथा सुजानसागर नामक संकलन का प्रकाशन हुआ।

घनानंद की कविताओं का वैज्ञानिक ढंग से संपादित और प्रकाशित करने का सर्वाधिक श्रेय आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को है। उनके द्वारा घनानंद पर किया गया शोधकार्य बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ। उन्होंने घनानंद की कविताओं को संकलित कर तीन पुस्तकें प्रकाशित की। वे हैं 'घनानंद कवित्त' जिसमें 502 कवित्त संग्रहित हैं। दूसरा संकलन सन 1945 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें कवित्त सवैयों के अतिरित्त घनानंद के 500 पद तथा उनकी 'वियोग बेलि', 'यमुना यश', 'प्रीति पावस' तथा 'प्रेम पत्रिका' संग्रहीत है। इसके बाद 1952 में घनानंद ग्रंथावली का प्रकाशन हुआ जिसमें घनानंद की 36 कृतियों का समावेश किया गया था।

काशी नागरी प्रचारिणी महासभा के खोज के अनुसार उनकी कुछ कृतियाँ है- घन आनंद कवित्त, आनंद धन के कवित्त, कवित्त सुजान हित, इश्कलता, प्रेम पत्रिका, प्रेम पहेली, प्रेम सरोवर, प्रेम पद्धति, वियोगी वेलि, ब्रज विलास कृपाकंद, जमुना-जस, आनंदघन जी की

पदावली, प्रीती पावस, सुजान विनोद, कविता संग्रह रस केलि वल्ली, वृंदावन सत आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। घनानंद बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। उनकी कविताओं में अनेक प्रकार की भावनाएँ पाई जाती हैं। विविध छंदों, शैलियों तथा फारसी और ब्रजभाषा के विविध रूपों पर उनका ज़बर्दस्त अधिकार है। घनानंद के समसामयिक ब्रजनाथ जी ने इनके 500 कवित्त सवैयों का संग्रह किया था। उनके कवित्त का यह सबसे प्राचीन संग्रह है। ब्रजनाथ ने स्वयं इनकी प्रशस्ति में आठ छंद लिखे हैं।

घनानंद की एक बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है 'परमहंस वंशावली'। इसमें इन्होंने गुरु परंपरा का उल्लेख किया है। इनकी फारसी में लिखी गई एक मसनवी भी बताई जाती है। पर वह अब तक कहीं उपलब्ध नहीं है। इनकी सबसे अधिक लोकप्रिय रचना जो बताई जाती है वह है 'सुजान हित' इसमें कुल 507 पद हैं। इस रचना में सुजान के प्रेम, रूप, विरह आदि का वर्णन किया गया है। इनकी बहुत सी रचनाओं का अंग्रेज़ी में भी अनुवाद किया गया है।

घनानंद की कविता को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि इसमें आध्यात्मिक प्रेम के गुण पाए जाते हैं। इनके संयोग वर्णन में इतनी मार्मिकता नहीं है जितनी उनके विरह वर्णन में है इसी कारणवश इन्हें विरह का कवि कहा जाता है।

घनानंद जैसी शुद्ध और सरस ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि इनकी बराबरी नहीं कर सका। इनकी भाषा में शुद्धता के साथ-साथ प्रौढ़ता और मधुरता के गुण भी पाए जाते हैं। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में बार-बार सुजान को संबोधित किया है। इनकी काव्य प्रेरणा सुजान ही थी। दरबार से निष्कासन तथा सुजान द्वारा उपेक्षा के कारण ही इन्होंने मुक्तकों की रचना की। दरबारी घनानंद का लौकिक प्रेम पारलौकिक बन गया। इनका और सुजान का प्रेम राधा कृष्ण का प्रेम बन गया।

बोध प्रश्न

6. घनानंद की रचनाओं का सर्वप्रथम प्रकाशन किसने करवाया था?
7. 'सुजान शतक' में कुल कितने कवित्त हैं?
8. घनानंद ग्रंथावली का प्रकाशन वर्ष क्या है?
9. 'परमहंस वंशावली' में किस परंपरा का उल्लेख किया गया है?
10. कवि घनानंद की सबसे लोकप्रिय रचना कौन सी है?

23.3.3 काव्य की विशेषताएँ

रीतिमुक्त कवियों में घनानंद सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्हें इस धारा का शिखर कवि कहा जाता है। घनानंद हिंदी के उन कवियों में से हैं, जिनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही पक्ष बहुत सुंदर

है। इनकी कविता का सबसे सुंदर पक्ष यह है कि इसमें गेयता का गुण पाया जाता है। यह सहज एवं सरल भाषा के कवि माने जाते हैं। ब्रजभाषा की मधुरता उनके कवित्त सवैयों में चरम उत्कर्ष पर पाई जाती है। घनानंद के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

(1) सौंदर्य चित्रण

घनानंद प्रेम और सौंदर्य के कवि माने जाते हैं। इनके मन पर सुजान के सौंदर्य की जो आभा है, उसी को उन्होंने व्यक्त किया है। उसके अंग-प्रत्यंग का सुंदर चित्रण वे अपनी कविताओं में करते हैं। इनके सौंदर्य चित्रण में अंग, कांति, लावण्य सभी का बहुत ही सरस एवं मादक रूप में चित्रण किया गया है -

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपाल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥

(अर्थात्, नायिका का अत्यंत सुंदर गौर मुख चमक रहा है और उस पर कानों तक फैले हुए प्रेमोन्मत्त नेत्र सुशोभित हो रहे हैं। जब वह हँसकर बोलती है तो ऐसा लगता है मानो उसके वक्ष-स्थल पर शोभा के फूलों की वर्षा हो रही है। कपोलों पर चंचल लटें हिलती हुई क्रीड़ा कर रही हैं और सुंदर कंठ में दो लड़ की मोतियों की माला शोभा दे रही है। उसके अंग–प्रत्यंग की कांति से शोभा की लहरें-सी उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अभी पृथ्वी पर रूप चू पड़ेगा।)

(2) रस निरूपण

कवि घनानंद के काव्य में शृंगार रस की प्रधानता पाई जाती है। इनके काव्य में शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का बहुत सुंदर वर्णन हुआ है। किंतु घनानंद की प्रसिद्धि वियोग चित्रण के लिए अधिक रही है। इन्होंने अपने काव्य में विरह के सभी रूपों का वर्णन किया है अतः इन्हें 'विरह सम्राट' कहा जाय तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। शृंगार के संयोग पक्ष का भी उनका चित्रण बहुत ही प्रभावपूर्ण है। इसे इस उदाहरण से समझा जा सकता है -

"मुख स्वेद कनी मुख चंद बनीं,
बिथुरी अलकावलि भांति भली।
मदजोबन रूप लखि अँखियाँ,
अवलोकनि आरस रंग रली॥"

कवि घनानंद का वियोग वर्णन भी बहुत प्रभावपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए-

“घन आनंद जीवन मूल सुजान की,
कौंधन हू न कहूं दरसै।
सुन जानिए धौ कित छाय रहे,
दृग चातक प्रान तपै तरसै॥”

इस उदाहरण में कवि कहते हैं कि सुजान रूपी बादल अब कहीं कौंधते भी नहीं न जाने वे कहाँ छा रहे हैं और इधर प्राण रूपी चातक उनके लिए तरस रहे हैं, तप रहे हैं। इस उदाहरण से वियोग को अच्छे प्रकार से समझा जा सकता है।

(3) प्रकृति चित्रण

घनानंद के काव्य में प्रकृति का बहुत ही सुंदर वर्णन देखा जा सकता है। इन्होंने प्रकृति के आलंबन रूप की अपेक्षा उसके उद्दीपन रूप का चित्रण अधिक किया है। हम जानते हैं कि घनानंद का काव्य विरह प्रधान होता है और प्रकृति विरह के भाव को उद्दीप्त करने में बहुत अहम भूमिका निभाती है अतः घनानंद भी अपने काव्य में इसका निर्वाह बहुत अधिक मात्रा में करते हैं। उदाहरण के लिए -

“लहकि लहकि आवै ज्यों ज्यों पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन तांतरे तवै।
बंहकि-बंहकि जात बदरा बिलोकैं हियौं
गहकि गहकि गहबरिन गरै मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहैं,
कैसे घन आनंद सुजान बिन ज्यौं बचे।”

पुरवाई हवा चलने पर विरही का शरीर तपने लगता है, और बादलों को देखकर हृदय बहकने लगता है।

“ए रे बीर पौन तेरो सब ओर गौन बीरी
तोसो और कौन मनै ढरकौंही बानि दै।
बिरह विथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि
धूरि तिन पायनि की हा-हा नेकु आनि दै।।”

इसमें विरहहिणी पवन (उपादान) से अनुरोध करती है कि प्रिय की चरण धूलि तुम ले आ जिसे मैं अपनी आँखों में लगाकर कुछ शाँति पा लूँ।

(4) भाव-निरूपण

घनानंद की कविता को पढ़ने से ऐसा लगता है कि यह भावों का भंडार है। उनके भाव हृदय को छू लेने वाले होते हैं अर्थात् बहुत ही मार्मिक होते हैं। प्रिय के वियोग में किस तरह की व्याकुलता होती है इसका चित्रण भी इन्होंने अपने सवैयों में किया है।

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह
कैसे करि जियकी जरनि सो जताइए।
महा निरदई दई कैसे कै जिवाऊं जीव
वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइए।।

(अर्थात्, वियोगिनी नायिका अपने प्रति नायक के द्वारा किए गए अकारण निष्ठर व्यवहार पर क्षोभ प्रकट करती हुई अपने भाग्य को कोसती है। वह कह रही है कि मुझे जिससे प्रेम है, उसे मुझ से प्रेम न होकर निर्दयता से प्रेम है अर्थात् वह बड़ा निर्दयी है। ऐसा न होता तो वह मेरी विरह-व्यथा का अनुभव कर लेता और मेरे पास आ जाता। भाव यह है कि जिससे मुझे प्रेम है, उसे निष्ठुरता के प्रति अत्यधिक अनुरक्ति है फिर किस प्रकार हृदय की वेदना को व्यक्त करूँ या बतलाऊँ? प्रियतम अत्यंत निर्मम है, हे देव! फिर किस तरह मैं अपने प्राणों को जीवित रखूँ? निरंतर बढ़ती हुई विरह-वेदना को कब तक छिपाकर रखूँ?)

इन पंक्तियों में कवि ने वियोग से उत्पन्न भावों (आवेग, आवेश, उग्रता) आदि का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। उनकी कविता के भाव बहुत ही ठोस एवं गंभीर होते हैं, जो पाठकों के हृदय पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं।

(5) भाषा

घनानंद की भाषा सरस ब्रजभाषा है। उनका इस भाषा पर जैसा अचूक अधिकार था वैसा किसी और का नहीं देखा गया। इनकी भाषा में उक्ति चमत्कार तथा लाक्षणिक पदावली के उदाहरण भी देखे जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने घनानंद की भाषा की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। घनानंद उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। वे लिखते हैं-

> "इनकी सी विशुद्ध, सारस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व है। विप्रलंभ शृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिया है। ये वियोग-शृंगार के प्रधान कवि हैं। 'प्रेम की

पीर' ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 232)

(6) अलंकार योजना

घनानंद के काव्य में शब्दालंकारों व अर्थालंकारों दोनों का बहुत ही आकर्षक व भाव उत्पन्न करने वाला प्रयोग किया गया है। इन्होंने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा यमक श्लेष आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है। अलंकार का मुख्य कार्य है काव्य में चारुता का विधान करना और भावाभिव्यक्ति में सहायता करना। अतः घनानंद ने कथन को अलंकृत करके कविता की सौंदर्य तो बनाया ही है। साथ में अनुभूति को बहुत ही सुंदर ढ़ंग से अभिव्यक्त भी करते हैं।

(7) छंद योजना

घनानंद की कविता छंदों से ओतप्रोत होती है। उनकी कविता में ऐसा लगता है कि कवि के हृदय-वीणा के तार झंकृत हो रहे हैं। कवि ने कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, अरिल्ल आदि लगभग दस छंदों का प्रयोग किया है। इनके प्रिय छंद हैं - कवित्त व सवैया। दोहे और चौपाई का भी इन्होंने अपने काव्य में प्रयोग किया है।

घनानंद के काव्य के इन सब विशेषताओं को देखने के बाद ऐसा लगता है कि इनके काव्य में किसी प्रकार की कोई बनावट नहीं है। उसमें कोई चमत्कार दिखाने की कोशिश नहीं की गई है। उन्होंने जो भी काव्य लिखा सभी ऐसे लगते हैं कि वह उनके हृदय की अनुभूतियों को दिखा रहे हैं। जहाँ तक उनकी भाषा की बात है वह बहुत ही सशक्त है। उनके काव्य में अलंकार एवं छंद योजना बेजोड़ है। उनकी कविता में सहजता के भाव हैं किंतु अर्थ बहुत ही गंभीर है।

बोध प्रश्न

11. घनानंद के मन पर किसके सौंदर्य की आभा पाई जाती है?
12. घनानंद के काव्य में किस रस की प्रधानता पाई जाती है?
13. घनानंद के प्रिय छंद कौन से हैं?
14. घनानंद के काव्य में शृंगार के किस पक्ष का वर्णन मिलता है?
15. अलंकारों का मुख्य कार्य क्या होता है?

23.3.4 हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व

हिंदी साहित्य में संपूर्ण स्वच्छंद एवं प्रेम काव्यधारा का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस धारा के प्रमुख कवियों में से रसखान, आलम, घनानंद, ठाकुर और

बोधा मुख्य हैं। ये सभी कवि प्रेम काव्य के मुख्य स्तंभ हैं। किंतु इनमें से घनानंद सबसे प्रमुख हैं, क्योंकि इनके काव्य में कुछ ऐसे असाधारण गुण पाए जाते हैं जो न तो रसखान के काव्य में है, न आलम के और न ही ठाकुर के और बोधा के काव्य में है।

घनानंद ने सुजान को अपने काव्य की नायिका बनाकर उनके रूप सौंदर्य का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। इनकी श्रेष्ठता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इनके हृदय में सुजान के प्रति असीम प्रेम था। उनके मन और मस्तिष्क में सुजान के प्रति आपार अनुभुति थी जिसे वे अपने काव्य के माध्यम से प्रकाश में लाते थे। वे उसके रूप-सौंदर्य का बड़ा ही गरिमापूर्ण, शालीनता, शिष्टता एवं औदात्यपूर्ण वर्णन किया है। सुजान की तिरछी चितवन और मृदु मुसकान के अक्षय सौंदर्य में प्रेम की गूढ़ता भरी है। सुजान की निष्ठुरता के बाद भी वे उससे बहुत अधिक प्रेम करते थे। अतः उनका प्रेम लौकिकता से अलौकिकता की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। अतः निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि रीतिमुक्त काव्य हिंदी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और घनानंद इस काव्यधारा के महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। हम देखते हैं कि रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छंद प्रेम का चित्रण किया है और कविता को रीति की बंधी बंधाई परिपाटी से मुक्त करने में बहुत ही अहम भूमिका निभाई है।

भाषा की दृष्टि से भी रीतिमुक्त कवियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। घनानंद के काव्य में स्वच्छंद प्रेम और रीति मुक्त काव्य के सभी गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। अतः घनानंद के जैसा उक्ति वैचित्र्य किसी भी और कवि के पास नहीं देखा गया तथा उनके जैसी लाक्षणिक कला किसी और कवि की रचना में देखने को नहीं मिलती। अतः यह कह सकते हैं कि घनानंद जितने प्रेम के धनी थे उतने ही भाषा के भी धनी थे। अतः घनानंद का स्थान हिंदी साहित्य के स्वच्छंद काव्य धारा में बहुत ही मुख्य है।

बोध प्रश्न

16. स्वच्छंद एवं प्रेम काव्य धारा के मुख्य कवियों का नाम बताइए।
17. घनानंद के काव्य की नायिका कौन हैं?
18. रीतिमुक्त कवि अपने काव्य में किस प्रकार के प्रेम का चित्रण करते हैं?
19. सुजान का प्रेम घनानंद के प्रति कैसा था?
20. घनानंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम को किसके माध्यम से व्यक्त किया है?

23.4 पाठ-सार

रीतिमुक्त काव्यधारा के शृंगारी कवि घनानंद का जन्म 1689 ई. में हुआ और इनकी मृत्यु 1739 ई. में हुई। ये मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे। ब्रजभाषा पर इनका

बहुत अच्छा अधिकार था। वे सुजान नामक वैश्या से प्रेम करते थे। इनका सुजान से लगाव बहुत गहरा और आजीवन रहा और इनके काव्य सर्जन की मुख्य प्रेरणा बनी। रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद महान प्रेमी थे। इन्हें विरह का कवि भी कहा जाता है। विरह ही उनके प्रेम की मुख्य कसौटी थी। इन्होंने अपनी कविता में संयोग और वियोग दोनों का ही चित्रण किया किंतु इनका वियोग पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। इन्होंने सौंदर्य, प्रेम और विरह का बहुत ही सुंदर चित्रण अपनी कविताओं में किया है।

घनानंद ने 41 ग्रंथों की रचना की है। इनके मुख्य ग्रंथ हैं - सुजान सागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली, इश्कलता, सुजानहित तथा प्रियाप्रसाद आदि। इनकी रचनाओं का सर्वप्रथम प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सुंदरीतिलक में कराया था। इनकी सबसे अधिक लोकप्रिय रचना 'सुजानहित' को माना जाता है। घनानंद के काव्य की सबसे मुख्य विशेषता है कि उनके काव्य में किसी प्रकार की बनावट नहीं पाई जाती है। उनके काव्य की भाषा बहुत ही बेजोड़ है। कविताओं में छंद, अलंकार, भाव, रस, सौंदर्य आदि का बहुत ही सुंदर प्रयोग किया गया है। अतः घनानंद का स्थान हिंदी साहित्य के स्वच्छंद काव्य धारा में बहुत ही प्रमुख है।

23.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं -

1. रीतिमुक्त काव्यधारा के शृंगारी कवि घनानंद मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के मीर मुंशी थे।
2. घनानंद के काव्य की मुख्य प्रेरणा 'सुजान' थी जिनसे वह बहुत अधिक प्रेम करते थे और उन्हीं के कारण उन्हें वैराग्य की ओर उन्मुख होना पड़ा।
3. घनानंद ने बहुत अधिक ग्रंथों की रचना की है। इनकी लोकप्रिय रचना 'सुजान हित' है।
4. घनानंद को 'विरह का कवि' भी कहा जाता है।
5. भाषा पर इनका बहुत अच्छा अधिकार था। ब्रजभाषा के यह मर्मज्ञ कवि कहे जाते हैं।
6. घनानंद के काव्य में संयोग और वियोग दोनों पक्ष का चित्रण किया गया है किंतु वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली है।
7. इनके काव्य में कृत्रिमता देखने को नहीं मिलती।
8. घनानंद के काव्य में अनुभूति पक्ष अत्यंत सशक्त, मार्मिक और हृदय को छू लेने वाला है।
9. इन्हें 'लक्षणा का सम्राट' कहा जा सकता है।
10. इनके कविता के भाव बहुत गहन एवं गंभीर हैं।

23.6 शब्द संपदा

1. चरण	=	किसी काम को पूरा करने के विभिन्न दौर
2. भावाभिव्यक्ति	=	भावों को प्रकट करना
3. अभिव्यक्त	=	जिसकी अभिव्यक्ति की गई हो
4. सर्वश्रेष्ठ	=	सबसे अच्छा
5. अनुरक्त	=	प्रेमी
6. अलौकिकता	=	दिव्यता
7. मार्मिकता	=	मार्मिक होने की अवस्था या भाव
8. लौकिकता	=	व्यावहारिक होने की अवस्था
9. नैसर्गिकता	=	स्वाभाविकता
10. अकृत्रिमता	=	स्वाभाविक, जो बनावटी न हो, मौलिक
11. अतिशयोक्ति	=	बढ़ा-चढ़ा कर कही गई बात
12. संयोग	=	प्रेमी-प्रेमिका या स्त्री-पुरूष का मिलन
13. वियोग	=	विरह
14. मर्मस्पर्शी	=	दिल पर प्रभाव डालने वाला
15. विरह	=	वियोग, जुदाई, वियोग में होने वाली अनुभूति
16. सामर्थ्य	=	योग्यता, क्षमता
17. चातक	=	पपीहा
18. मर्मज्ञ	=	किसी ग्रंथ या सिद्धांत का गूढ़ अर्थ जानने वाला
19. अनुभूति	=	भावना
20. निष्ठुरता	=	कठोरता, निर्दयता

23.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'घनानंद स्वच्छंदतावादी कवि हैं।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
2. घनानंद की भक्तिभावना पर प्रकाश डालिए।
3. 'घनानंद प्रेम की पीर के कवि हैं।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
4. घनानंद की भाषा पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. घनानंद की भाषा की विशेषताएँ बताइए।
2. घनानंद के काव्य में व्याप्त विरहानुभूति पर प्रकाश डालिए।
3. घनानंद की सौंदर्य चेतना का वर्णन कीजिए।
4. घनानंद की काव्य-कला का वर्णन कीजिए।
5. हिंदी साहित्य में घनानंद के महत्व को निरूपित कीजिए।
6. मरते समय रचित घनानंद के कवित्त का भाव लिखिए

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. घनानंद का जन्म किस सन में हुआ था। ( )

    (क) 1583 (ख) 1681 (ग) 1683 (घ) 1789

2. घनानंद किस मुग़ल बादशाह के दरबारी कवि थे? ( )

    (क) अकबर (ख) बहादुरशाह ज़फ़र (ग) मुहम्मद शाह रंगीले (घ) आज़मशाह

3. घनानंद ने किस संप्रदाय में दीक्षा ली? ( )

    (क) राधा वल्लभ संप्रदाय (ख) सखी संप्रदाय

    (ग) चैतन्य संप्रदाय (घ) निम्बार्क संप्रदाय

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. घनानंद का जन्म .... शहर में हुआ।
2. घनानंद की प्रेमिका का नाम .... था।
3. घनानंद रीतिकालीन काव्य धारा की .... शाखा के कवि हैं।
4. घननाद के काव्य में .... देखने को नहीं मिलती।
5. घनानंद के काव्य में .... पक्ष अत्यंत सशक्त, मार्मिक और हृदय को छू लेने वाला है।
6. घनानंद को ....का सम्राट कहा जा सकता है।

III सुमेल कीजिए।

(1) रचना	(क) निम्बार्क
(2) काव्य प्रवृत्ति	(ख) रीति

(3) संप्रदाय (ग) विरहलीला

(4) काल (घ) सौंदर्यानुभूति

23.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, हरदयाल.
3. घनानंद : काव्य और आलोचना, किशोरी लाल.
4. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, रामकुमार वर्मा.
5. हिंदी साहित्य का रीतिकाल, सुषमा अग्रवाल.

इकाई 24 : प्रेम की पीर

रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना
24.2 उद्देश्य
24.3 मूल पाठ : प्रेम की पीर
(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय
(ख) अध्येय कविता
(ग) विस्तृत व्याख्या
(घ) समीक्षात्मक अध्ययन
24.4 पाठ सार
24.5 पाठ की उपलब्धियाँ
24.6 शब्द संपदा
24.7 परीक्षार्थ प्रश्न
24.8 पठनीय पुस्तकें

24.1 प्रस्तावना

यह आप जानते ही हैं कि स्वच्छंद मार्ग के सच्चे पथिक घनानंद मध्यकालीन कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं। कालक्रमानुसार घनानंद रीतिकालीन कवि हैं किंतु इनका कृष्णोपासक भक्त कवियों के साथ भी उल्लेख कर दिया जाता है। प्रेम की पीर का जैसा मार्मिक चित्रण इन्होंने किया है, वैसा किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। घनानंद ने बहुत सुंदर गेय कवित्त सवैये लिखे हैं। इनके कारण ब्रज भाषा का रूप निखरा और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। ये ब्रजभाषा प्रवीण निश्चय ही हैं। इनकी कविताओं में सुजान का जिक्र बार बार हुआ है। कहते हैं सुजान के प्रेम और कृष्णभक्ति में लीन रहते हुए कविता करना इनकी नियति रही। प्रेम संवेदना की अभिव्यक्ति और भक्ति संवेदना की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं के दो प्रकार हैं। यहाँ जो दो रचनाएँ आप पढ़ने जा रहे हैं, उनमें अभिव्यक्ति पर ध्यान देना अच्छा रहेगा।

24.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप ब्रजभाषा प्रवीण कवि घनानंद के दो पद 'भोर तें साँझ ' और 'अति सूधो सनेह' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप -

- ब्रजभाषा प्रवीण घनानंद के कवित्त-सवैयों के माध्यम से उनसे परिचित हो सकेंगे।
- कविता के द्वारा कवि के जीवन दर्शन का अनुमान कर सकेंगे।
- कविताओं के कथ्य और साहित्यिक महत्व को आंक सकेंगे।

- मध्यकालीन कविता की भक्ति और आसक्ति को एक साथ लक्ष्य कर सकेंगे।

24.3 मूल पाठ : प्रेम की पीर

(क) अध्येय कविता का सामान्य परिचय

यहाँ कवि के दो पद हैं। दोनों पदों के पहले तीन शब्दों को लेकर इनका शीर्षक बना लिया गया है। हिंदी के पुराने कवि अपनी प्रत्येक कविता का शीर्षक नहीं दिया करते थे। बहुत सी फुटकर कविताओं और पदों के शीर्षक अध्ययन की सुविधा के लिए इस तरह बना लिए जाते हैं।

'भोर ते साँझ' सवैया में एक नायिका का चित्रण है। वह सुबह से शाम तक नायक की प्रतीक्षा में दुखी रहती है। वह नायक के आने पर भी उसे ठीक प्रकार से देख नहीं पाती क्योंकि वह आँसू बहाती रह जाती है।

'अति सूधो सनेह' में कवि ने स्पष्ट किया है कि प्रेम का मार्ग बहुत सीधा है और कुटिल लोग इस रास्ते पर सफल नहीं हो सकते।

(ख) अध्येय कविता

[1]

भोर तें साँझ लौ कानन ओर, निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो, तारनि सों इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै, घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै, आँखिन के उर आरति। ।

[2]

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ॥
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥

निर्देश : इन पदों का, लय पर ध्यान देते हुए, सस्वर वाचन कीजिए।
इन पदों का, अर्थ पर ध्यान देते हुए, मौन वाचन कीजिए।

(ग) विस्तृत व्याख्या

भोर तें साँझ लौ कानन ओर, निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो, तारनि सों इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै, घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै, आँखिन के उर आरति। ।

शब्दार्थ : भोर = सवेरा। न हारति = न थकती। तारनि = तारों का देखना। तारनि सों = पुतलियों से, आँखों से। इकतार = लगातार। न टारति = छोड़ती नहीं। भावतो = प्रिय, अच्छा लगने वाला। आँसुनि = आँसुओं से अवसर खो देती है। प्रिय के दिखाई पड़ने पर उसके आँसू क्या गिरते हैं, अवसर ही गिर जाता है, मौका हाथ से निकल जाता है। सोहन = सामने। जोहन = देखने की। आरति = लालसा, इच्छा।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ ब्रजभाषा प्रवीण कवि घनानंद द्वारा रचित सवैया 'प्रेम के पीर' से ली गई हैं। ये पंक्तियाँ प्रेमिका के विरह का वर्णन प्रस्तुत करती हैं।

प्रसंग : यहाँ एक प्रेमिका के विरह का वर्णन उसकी सखी के द्वारा किया गया है। प्रेमिका सवेरे से साँझ तक और साँझ से सवेरे तक प्रिय (कृष्ण) की प्रतीक्षा करती है। उसकी इच्छा केवल अपने प्रेमी के दर्शन की है। किंतु जब प्रेमी आते हैं तब वह उन्हें दिखाई पड़ने पर भी देख नहीं पाती और इससे उसके देखने की लालसा तृप्त नहीं हो पाती।

व्याख्या : इन पंक्तियों में कवि सखी के शब्दों में विरहिणी प्रेमिका की पीड़ा को अभिव्यक्त कर रहा है। सखी कहती है कि यह पगली सुबह से शाम तक वन की ओर देखती रहती है (क्योंकि इसी ओर श्री कृष्ण गए हैं)। इस प्रकार एक टक देखने से वह थकती भी नहीं। थक कर विरत नहीं होती, दूसरे कार्य में नहीं लग जाती। वह साँझ से सवेरे तक अपनी आँखों के तारों से (आकाश के) तारों को निरंतर और एकटक देखती रहती है। उनको देखने से नेत्र हटती भी नहीं। इस तरह वह आँखों में ही रात काट देती हैं। सुबह से शाम तक प्रतीक्षा करते हुए नायिका आँसू बहाती रही और जब अंत में प्रेमी (कृष्ण) आए तो भी वह उनको देखने का अवसर खो देती है। उसकी आँखें आँसुओं से इतनी भर गई कि कुछ स्पष्ट दिखाई ही नहीं दिया। इस प्रकार मोहन के सुंदर मुख को देखने की उसकी लालसा अतृप्त ही रह जाती है। मोहन के सोहन मुख को देखने की इच्छा का बने रहना स्वाभाविक है और इसका कारण नेत्रों में आँसुओं की बादलों का छा जाना ही है। जिससे सब कुछ धुंधला हो गया और दिन भर की प्रतीक्षा भी प्रतीक्षा ही रह गई।

विशेष : प्रस्तुत पद का आध्यात्मिक अर्थ भी लगाया जा सकता है। जीव जब स्वयं के प्रति असावधान होता है तब उसकी यह दशा होती है। आत्मा की परमात्मा से मिलन की आतुरता

भी देखी जा सकती है। इस पद में आध्यात्मिकता का आभास होने का कारण इस पद में अभिव्यक्त प्रेम का उदात्त वर्णन है।

भाषा प्रयोग में सिद्धहस्त घनानंद ने इन काव्य पंक्तियों में प्रत्येक शब्द अनेकार्थी है । उदाहरण के लिए 'कानन' शब्द का अर्थ 'वन' तो है ही, उसके नेत्र कर्णावलंबित हैं यह भी व्यंजित हो रहा है। 'निहारती' में जो 'न' है उससे यहाँ पूरा यमक अलंकार भी बन जाता है। निहारने में प्रेम पूर्वक देखना भी है। यमक, उपमा, श्लेष, विरोधाभास और पद मैत्री अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग।

इस पद में जो छंद है उसे सवैया कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में आठ भगण अर्थात् 24 वर्ण होते हैं। रस की दृष्टि से शृंगार रस है। लक्षणा प्रयोग की दृष्टि से भी रचना उल्लेखनीय है। आँखों में उर की व्यंजना भी दर्शनीय है।

बोध प्रश्न

1. कवि ने किसको नायक माना है?
2. सखी के अनुसार नायिका किसकी प्रतीक्षा कर रही है?
3. इन पंक्तियों में 'बावरी' कौन है और कवि उसे बावरी क्यों कहता है?

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ॥
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥

शब्दार्थ : सूधो = सीधा, सरल। सयानप = चतुराई। बांक = बंक, टेढ़ा। जहाँ = जिसमें चातुर्य थोड़ा भी नहीं। साँचे = सच्चे। आपनपौं = अपनत्व। झझकें = झिझकें, हिचकते हैं। निसांक = निशंक। एक तें = प्रिय के प्रेम की जो रेखा खिंच गई उसके अतिरिक्त कोई रेखा नहीं खिंच सकती। प्रिय के प्रेम का जो निश्चय हो गया, वही बना रहता है, फिर दूसरा निर्णय कभी नहीं होता। पाटी = पट्टी (पट्टी पढ़ना मुहावरा है, इसका अर्थ है शिक्षा प्राप्त करना)। तुम = आपने न जाने कैसी शिक्षा प्राप्त की है। मन = हृदय, 40 सेर। छटाँक = बहुत थोड़ा सा, सेर का सोलहवाँ भाग। मन को उलटने से नम = नमस्कार, झुकाव, प्रवृत्ति और छटांक को उलटने से कटाक्ष भी होता है (अथवा छटा + अंक = शोभा की झलक)।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ 'प्रेम के पीर' शीर्षक से कवि घनानंद द्वारा विरचित हैं।

प्रसंग : प्रिय के सामने प्रेम मार्ग की विशेषता का वर्णन करते हुए प्रेमी यह स्पष्ट कर रहा है कि प्रेम का मार्ग इतना कठिन नहीं जितना लोग समझते हैं। यह तो बहुत सीधा है और सच्चे लोगों के लिए बहुत सरल है।

व्याख्या : हे प्रिय ! प्रेम का मार्ग अति सरल है। इसमें कहीं भी टेढ़ापन नहीं है। इसमें चतुराई का टेढ़ापन है ही नहीं। जो चतुराई करेगा वह इस मार्ग पर चल ही नहीं सकता। इसमें केवल सच्चे प्रेमी ही चलते हैं। वे तो चतुराई को क्या अपनत्व को भी भूले रहते हैं। जो कपटी हैं, कुटिल हैं, वे सच्चे लोगों की तरह निशंक होकर इस मार्ग पर चल नहीं पाते। उन्हें इस मार्ग पर चलने में झिझक होती है। हे घन आनंददायक सुजान प्रिय, आप सुन लें कि इस मार्ग पर एक ही रेखा, एक ही अंक, एक ही निश्चय रहता है। यह प्रिय के प्रेम का निश्चय है, और दूसरा कुछ नहीं। आपको यह बताने की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि आप केवल लेना जानते है, देना नहीं। और यह मार्ग सर्वस्व दान करने वालों का है। आपने मन भर ले तो लिया किंतु बदले में दिया छटांक भर भी नहीं। चालीस सेर लेकर चालीस सेर देना भी तो चाहिए था। बदले में अधिक देने वाले की प्रशंसा होती है। पर आप तो उसका 640 वाँ भाग भी नहीं देते। तुम कौन सी पट्टी पढ़े हो अर्थात् कौन सी शिक्षा पाए हो जो प्रेम लेते तो हो पर प्रेम देते नहीं। एक छटांक देने में भी लेन-देन माना जाता है, पर यहाँ वह भी नहीं। प्रेमी की ओर से 'मन' गया तो प्रेमी की ओर से 'नम' झुकाव दिखाया गया। जबकि उन्मुखता होनी चाहिए थी। बदले में छटा का अंक, शोभा की झलक मिलनी चाहिए थी। कम इस कम छटांक के बदले कटाक्ष तो मिलना चाहिए था ही। पर वह भी नहीं मिला।

लगता है घनानंद कह रहे हैं कि प्रेम के मार्ग में जरा भी सयानापन और चालाकी नहीं चलती और यहाँ सच्चाई के साथ ही आगे बढ़ा जा सकता है। ईगो या अहं को यहाँ छोड़ना पड़ता है। छल-कपट रखने वालों को इस रास्ते पर चलने में झिझक होती है। घनानंद विरक्त होकर भी अपनी प्रेमिका सुजान को भूल नहीं पाते और उसका नाम लेकर कृष्ण को संबोधित करते हैं कि एक के सिवा प्यार में कोई दूसरा नहीं होता। उल्हाना भी देते हैं कि तुम कौन से स्कूल से पढ़ कर आए हो कि मन (दिल) भर लेते हो और देते छटांक भर (थोड़ा-सा प्यार) भी नहीं हो।

आज के पाठक देख सकते हैं कि कवि के प्रेम में पजेसिवनेस (मालिकाना हक़) नहीं झलकती बल्कि दूसरे पक्ष के निर्णय के लिए सम्मान प्रदर्शन का भाव है। घनानंद प्रेम का एक आदर्श रूप प्रशस्त करते हैं। घनानंद का प्रेम शारीरिक नहीं बल्कि भावात्मक है। तेज़ाब फेंककर, आत्महत्या करके, बलात्कार करके, अश्लील वीडिओ बनाकर अपनी भड़ास निकालने वाले, प्रेम के नाम पर घृणा फैलाने वालों के लिए घनानंद का काव्य एक अनुकरणीय आदर्श है। यह 'स्व' को स्वस्थ बनाकर अपने व्यक्तित्व को और अधिक प्रभावशाली बनाने का आधुनिक अर्थ है ।

विशेष : यहाँ परिवृत्ति अलंकार है। 'परिवृत्ति' का अर्थ है परिवर्तन या लेन-देन। तीन प्रकार की परिवृत्ति मानी जाती हैं - अधिक लेकर थोड़ा देना, थोड़ा लेकर अधिक देना, जितना लिया उतना ही देना। लेकिन कुछ लेकर कुछ भी न देने में परिवृत्ति नहीं मानते अथवा ऐसे उदाहरण नहीं मिलते । यहाँ कुछ लेन देन नहीं फिर भी चमत्कार पैदा हुआ है।

बोध प्रश्न

4. कौन प्रेम की विशेषता का पालन नहीं कर रहा है?
5. प्रेम की विशेषता क्या बताई गई है?
6. प्रेम मार्ग किनके लिए कठिन है?
7. कपटी प्रेमी और सच्चे प्रेमी में क्या मुख्य अंतर है?

काव्यगत विशेषताएँ

कथ्य और संरचना की दृष्टि से प्रस्तुत पद अप्रतिम है। एक एक शब्द अनेकार्थी है। प्रेम की पीर के कवि ये ऐसे ही मार्मिक सवैयों के लिए कहे जाते हैं। क्या भाषा और क्या भाव दोनों अद्‌भुत हैं। आरति में (आ+रति) परम प्रेम की अभिव्यंजना है। 'मोहन' और 'सोहन' में शब्दों का साहचर्य है जो 'जोहन' के साथ मिलकर इन तीनों शब्दों में अनुनासिकता की छटा है। घन आनंद शब्द को ही लें। इस शब्द के तीन अर्थ हैं - आनंद के बादल, घने आनंद के बादल (आँसू), और कवि का नाम घनानंद। दिखाई पड़ते हैं आनंद के बादल और बरसती हैं आँखें आनंद के घने आँसू। ताकना-निहारना और देखना आदि क्रियाओं का ऐसा मार्मिक प्रयोग कहीं अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ कवि ने ऐसा शब्द चित्र उपस्थित किया है कि पाठक या श्रोता अवाक रह जाता है। रस, छंद, और अलंकार का संतुलन है। विप्रलंभ (वियोग) शृंगार रस का यह एक ऐसा उदाहरण है जिसमें प्रिय मोहन आलंबन, वन तारे आदि उद्दीपन, अश्रु एकटक देखना आदि अनुभाव, उत्सुकता, चिंता आदि संचारी भाव हैं।

घनानंद द्वारा रचित इस पद में कथ्य और संरचना की दृष्टि से अद्‌भुत प्रयोग इस पद की प्रसिद्धि के कारण हैं। मुहावरेदार भाषा 'पाटी (पट्टी) पढ़ना', आलंकारिक भाषा 'मन' के दो अर्थ है – 40 सेर और हृदय इसलिए श्लेष अलंकार, मन को उलटने से 'नम' और छटांक को उलटने से कटाक्ष इंगित होता है। 'सनेह' के दो अर्थ (नेह सहित ('स्नेह' या 'प्रेम') और चिकनापन और रूखापन नहीं) प्रयोग में भी आलंकारिकता का निर्वाह हुआ है। इस प्रकार चमत्कारिक भाषा प्रयोग द्वारा प्रेम के पंथ का वर्णन गेय बन पड़ा है। अहंकार और अहंता का विसर्जन (संशयात्मा विनिष्यति) प्रेम मार्ग का शास्त्रोक्त लक्षण है। कवि अपने नाम - घनानंद - और सुजान के नाम को बहुत चतुराई से प्रयोग करता है - आप 'घन आनंद' हैं, केवल अपने आनंद को ही देखने वाले

हैं। आप 'सुजान' हैं 'सुज्ञान' हैं। चातुर्ययुक्त हैं। लोक विश्वास है कि श्रेष्ठ पुरुष 'एक आंक' (एक निश्चय) का पालन करते हैं ।

(घ) समीक्षात्मक अध्ययन

काल विभाजन के आधार पर रीतिकाल में घनानंद (1673-1760) की गणना की जाती है। फिर भी कभी कभी इन्हें कृष्णोपासक भक्त कवियों के साथ उल्लेख किया जाता है। अपने समय की बंधी बंधाई कविता की धारा में घनानंद जैसे स्वच्छंद कवि का होना अचरज की बात लगता है। 'प्रेम की पीर' का वर्णन करती इनकी कविता में अतिरिक्त निजीपन और आंतरिक उल्लास है। ब्रज भाषा के ये सुमधुर कवि हैं। इनके विरह के कवित्त-सवैये हिंदी में बेजोड़ हैं। इनके कारण ब्रजभाषा का रूप निखरा और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही कहा था, "प्रेम मार्ग का एक ऐसा धीर और प्रवीण पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

स्वच्छंदमार्गी घनानंद रीतिकाल के एक विलक्षण कवि हैं। मध्यकाल के दो भाग हैं - पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल कहा गया है और उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल या शृंगारकाल नाम दिया गया है। मध्यकालीन कविता में भक्ति, रीति और स्वच्छंदता की वृत्ति मिलती है। भक्ति और शृंगार की विभाजक-रेखा बहुत सूक्ष्म है। कबीर भी भक्ति में अपने आप को 'हरि की बहुरिया' कह उठते हैं। तुलसीदास को 'कामिही नारि पियारि जिमि' जैसी उपमा ही सूझी। भक्ति काल में ईश्वर की नर लीला का चित्रण है। रीति काल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रित करते हैं। घनानंद ने भक्ति को इतना नहीं अपितु स्वच्छंदता को सामने रखा। उनके लिए साधन और साध्य दोनों के केंद्र में कविता रही। घनानंद की कविता में प्रेम की वह पीर अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है जो आदिकाल में विद्यापति की 'प्रेम संवेदना' रही है। घनानंद की कविता में एक तो प्रेम संवेदना की अभिव्यक्ति है और दूसरे भक्ति संवेदना की अभिव्यक्ति है। किंतु घनानंद की कविता भक्तों के लिए नहीं हैं। वे रसखान के समान कृष्ण के नाम संकीर्तन के लिए कविता नहीं करते। कविता के प्रति आत्मपरक दृष्टिकोण रखते हुए और जीवन तथा का काव्य में रीति रूढ़ियों को परे हटाते हुए घनानंद ने प्रेम के आवेग को अपने काव्य में प्रधानता दी। इसलिए इनकी कविता भक्ति की सांप्रदायिकता से मुक्त है। इसलिए इन्हें शुद्ध कविता के पहले कवियों में रखा जा सकता है। केशवदास और बिहारी के समान घनानंद को काव्य के बहिरंग का पोषण प्रिय न था। काव्य में शब्दों के द्वारा चमत्कार पैदा करने वाले कवियों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा था -

लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरो कवित्त बनावत...

घनानंद मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रँगीले के मुंशी थे। कहा जाता है कि कवि दरबार की एक नर्तकी सुजान के प्रेम में पड़ गए थे। एक बार सुजान के कठोर व्यवहार से इनके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची और यह ठेस इतनी मर्मान्तिक सिद्ध हुई कि इनके जीवन की दिशा ही बदल गई। कवि ने राज दरबार त्यागने के बाद दीक्षा ले ली। किंतु यह नाम (सुजान) उन्होंने कभी न छोड़ा। सुजान के इंकार करने पर वे दरबार से चले तो गए किंतु संगीत के ज्ञान, कवित्व शक्ति और संस्कारों ने उनसे कवित्त लिखवाए। इन कवित्तों ने उन्हें ख्याति दिलाई। वे कृष्ण के नाम के स्थान पर सुजान कहते रहे और कई दर्जन छोटे बड़े ग्रंथ बन गए। इस प्रकार महान प्रेमी, ब्रजभाषा प्रवीण, सुंदरता के पारखी, योग-वियोग और रति तथा प्रेम के ज्ञाता के रूप में घनानंद स्थापित हुए। वियोग के कारणों और रूपों की विवेचना करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी ने अपने 'मध्ययुगीन काव्य साधना' नामक ग्रंथ में लिखा है "इन सभी वियोगों में सबसे अधिक मर्मांतक विश्वासघात-जनित वियोग होता है। यह जीवन की धारा को बदल देता है। घनानंद का वियोग इसी कोटि का था जिसने उनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया। वे शृंगारी कवि से भक्त कवि हो गए।" घनानंद की कविता का प्राण उनकी प्रेम की विरहानुभूति है। घनानंद की कविता में प्रेम के पीर की अनेक रूप विद्यमान हैं। घनानंद के जीवन में प्रेम का स्थान बहुत ही ऊँचा था। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र घनानंद रचित 38 पुस्तकों को प्रमाणित मानते हैं। 'सुजानहित', 'कृपाकंद', 'वियोगवेलि', 'इश्कलता', 'यमुनायश', 'प्रीतिप्रवास', 'प्रेमपत्रिका', 'अनुभव चंद्रिका' और 'प्रेमपद्धति' उनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं।

घनानंद की कविता की सबसे पहली विशेषता यह है कि उनकी कविता में 'मौन' की मुखरता पाठक के मन में पैठ जाती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "घनानंद की कविता 'हृदय के भवन में मौन का घूँघट डाले अपने को छिपाये बैठी है।" दूसरी विशेषता यह है कि फारसी भाषा में प्रवीण होने के बावजूद घनानंद कविता में ब्रजभाषा को प्रधानता देते हैं। तन मन से भारतीय घनानंद की कविता भी सोलह आने भारतीय है। मुहावरों के प्रयोग की प्रेरणा फारसी से ली अवश्य किंतु फारसी के मुहावरों का प्रयोग नहीं किया। एक उदाहरण है-

रावरे पेट की बूझि परे नहीं, रीझि पचाय के डोलत भूखे ।

पेट की न बूझ पड़ना, पचाना और भूखे डोलना, तीनों लाक्षणिक प्रयोग हैं। छंद विधान की दृष्टि से घनानंद ने कवित्त और सवैये ही अधिक लिखे हैं। वैसे उन्होंने दोहे और चौपाइयाँ भी लिखी हैं। रस की दृष्टि से घनानंद का काव्य मुख्यतः शृंगार रस प्रधान है। इनमें वियोग शृंगार की प्रधानता है।

कहना न होगा कि घनानंद की भाषा में चाहे कबीर सी सरलता, तुलसी सी सार्थकता और बिहारी सी दूर की कौड़ी लाने वाली चतुराई न हो, फिर भी उनमें सहजता, विशुद्धता और शक्ति का सम्यक परिपाक है। सच्चे प्रेम की कविता का जब जब प्रसंग सामने होगा और चर्चा

होगी, उस चर्चा को गहराई देने के लिए घनानंद की कविताई को लाना होगा। घनानंद काव्य के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ के शब्दों में घनानंद और उनके कवित्त की प्रशंसा के लिए आवश्यक है कि प्रशंसक भी उनकी तरह सहृदय हो।

नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन ओ सुंदरताहु के भेद कौ जाने ।

घनानंद की कविता को परखने के लिए हृदय की आँखें और प्रेम की पीड़ा की अनुभूति आवश्यक है। 'जग की कविताई' (उनके युग की कविता) से 'घनानंद की कविताई' भिन्न है क्योंकि वे प्रचलित काव्य रूढ़ियों के स्थान पर स्वरों के माधुर्य (melody) द्वारा अपनी कविता रचते हैं। नूतन भाव भंगिमा, सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति, वेदना निवृत्ति और प्रेम प्रवृत्तियों के उतार चढ़ाव की अभिव्यक्ति द्वारा जैसा प्रेम निरूपण घनानंद के कवित्त में है, वैसा कहीं नहीं। ब्रजनाथ द्वारा रचित उपरोक्त सवैये के आधार पर घनानंद की प्रेम व्यंजना के महत्व और वैशिष्ट्य का वर्णन किया जा सकता है। घनानंद के काव्य में प्रेम के शुद्ध स्वरूप की व्यापक भूमिका प्रस्तुत की गई है। प्रेम के अनेक आंतरिक और बाह्य भावों की अभिव्यक्ति सुजान के माध्यम से की। दूसरे शब्दों में सुजान के लिए उनके मन में जो प्रेम भाव था उसकी वास्तविक परिणति राधा कृष्ण के प्रेम के रूप में प्रकट हुई। इस कारण से उनकी प्रेम व्यंजना में सहजता के साथ ही सुनियोजितता भी है। प्रियतम की चिर प्रतीक्षा के कारण वियोगिनी का नैराश्यपूर्ण जीवन का अतिशयपूर्ण मार्मिक चित्रण 'भोर ते साँझ लो' पद में मिलता है। प्रतीक्षारत वियोगिनी की आँखें क्या कोई भूल सकता है?

कवि घनानंद ने शब्द शक्ति के सुष्ठु प्रयोग के द्वारा भाषा की व्यंजकता को बढ़ाते हुए पद रचना की। भाषा के लक्षण और व्यंजक बल की सीमा को पहचाना और प्रसाद और माधुर्य गुण से उसे सराबोर किया। वे ब्रज भाषा प्रवीण तो थे ही, भाषा प्रवीण भी कुछ कम न थे। वे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का खूब प्रयोग करते थे।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद के विषय में यह उचित ही लिखा है कि-

> "घनानंद की कृति में केवल रसखान की सी ही रचना नहीं मिलती, उसमें आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि सबकी उत्कृष्ट विशेषताओं का समावेश हो गया है। पर घनानंद की विशेषता ऐसी है जो न रसखान में है न आलम में, न ठाकुर में, न बोधा में, न द्विजदेव में, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो उक्त स्वच्छंद गायकों से अपनी विशेषताओं और प्रवृत्तियों के कारण पृथक और श्रेष्ठ है। वह रीतिकाल के कर्ताओं से अपनी विशेषताओं और प्रवृत्तियों के कारण निश्चय की पृथकतर और श्रेष्ठतर है।" (घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, परिचय, पृ.7)

विवेचनात्मक टिप्पणी

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य के रीतिकालीन काव्य की रीतिमुक्त अथवा स्वच्छंद काव्यधारा में घनानंद अथवा आनंदघन का स्थान प्रमुख है। इस काव्यधारा के अन्य कवियों के रूप में आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव का उल्लेख किया जाता है। घनानंद के व्यक्तित्व, जीवन वृत्तांत और कविताओं को पढ़कर आप यह समझ चुके होंगे कि घनानंद की रचनाओं के दो मूल स्वर हैं। एक लौकिक शृंगार और दूसरा भक्ति। कहा जा सकता है कि घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति अपने प्रेम का अपने आराध्य सुजान कृष्ण के प्रति भक्ति के रूप में उदात्तीकरण किया। उनका रचना संसार काफी विस्तृत है जिसमें 752 कवित्त-सवैये, 1057 पद और 2354 दोहे-चौपाइयाँ सम्मिलित हैं। इस विशाल रचना संसार के कारण ही उन्हें मुक्तक रचनाकार होने के बावजूद महाकवि का सा सम्मान प्राप्त है। मुक्तक रचनाकर होने के कारण घनानंद के काव्य की विषय वस्तु बहुत विविधतापूर्ण नहीं है। लेकिन उनके द्वारा चित्रित भावों में अत्यधिक विविधता प्राप्त होती है। भावों की इस अत्यधिक विविधता का कारण कवि कि अंतर्मुखी प्रवृत्ति को माना जाता है। इस विषय में डॉ. महेंद्र कुमार का यह मत द्रष्टव्य है-

> "इन (घनानंद) के वर्ण्य विषय में विविधता और विस्तार नहीं है, अपितु कवि की अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण विविधता भावों के सूक्ष्म भेद-प्रभेदों में मिलती है। भाव कवि की व्यक्तिगत, अतएव स्वच्छंद हैं, काव्य परंपरा के नहीं। विषय के समान भावों में भी कहीं-कहीं आवृत्ति के दर्शन होते हैं। भावों में विषाद और निराशा का प्राचुर्य है। कवि प्रेम की पराजय में भी अडिग है, अतएव उसे विजयी कहा जाएगा। यह विषाद उसके अभिलाषातिरेक का परिणाम है। प्रेम के हर्षावसरों पर बढ़ती हुई अभिलाषाएँ उसे बेचैन बना देती हैं। उसके भाग्य में प्रेम का हर्ष बदा नहीं है। प्रेम की यह विषादमयी अनुभूति हिंदी साहित्य की परंपरा के प्रतिकूल और फारसी परंपरा के अनुकूल है। घनानंद के समकक्ष फारसी के अन्य कवियों में यही प्रवृत्ति पाई जाती है। तत्कालीन समाज की हीन दशा और उसमें व्यक्ति की परवशता के अनुभव का भी यह परिणाम हो सकता है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 334)

जैसा कि बार-बार कहा जाता है, घनानंद 'प्रेम की पीर' के कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्पष्ट घोषणा की है कि प्रेम दशा की व्यंजना ही घनानंद का अपना क्षेत्र है। वे मानते हैं कि प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन जैसा घनानंद में है, वैसा हिंदी के किसी अन्य शृंगारी कवि में नहीं। इसका कारण है कि घनानंद हृदय या प्रेम के आधिपत्य में विश्वास रखने वाले कवि हैं। उनके यहाँ बुद्धि हृदय के अधीन रहती है। इसी के बल पर उन्होंने प्रेम की अनिर्वचनीयता को

भी भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है। घनानंद के प्रेम वर्णन की बिहारी के प्रेम वर्णन से तुलना करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिए हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बाहरी माप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है - बाहर से वह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल उछल कर भागना है। उनकी 'मौन मधि पुकार' (मौन में पुकार) है। (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 233)

2. उक्ति का अर्थ गर्भत्व भी घनानंद का स्वतंत्र और स्वावलंबी होता है, बिहारी के दोहों के समान साहित्य की रूढ़ियों (जैसे नायिका भेद) पर आश्रित नहीं रहता। उक्तियों की सांगोपांग योजना या अन्विति इनकी निराली होती है। (वही, पृ. 234)

24.4 पाठ-सार

कवि घनानंद के इन दो पदों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किसी काल विशेष का कोई कवि जब कविता के शिल्प में अपनी रचना प्रस्तुत करता है तो पाठक या श्रोता पर उसके प्रभाव को दृष्टि में रखकर भी करता है। आत्माभिव्यक्ति के साथ साथ प्रस्तुति का अनूठापन भी आवश्यक है। इसलिए मनोवैज्ञानिक चित्रण, उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार, आंतरिक भावना और प्रवृत्ति का प्रकटीकरण करने के लिए कवि रस, छंद और अलंकारों के प्रयोग के द्वारा शब्द और अर्थ का चमत्कार उत्पन्न करता है। यहाँ जीवन की गंभीर विवेचना के स्थान पर व्यक्ति के मानसिक द्वंद्व का चित्रण है। नायिका और प्रेमिका की वेदना के चित्रण के साथ ही प्रेम के वास्तविक स्वरूप का संधान है। इन सवैयों के पाठ मात्र से ही जब आनंदानुभूति होती है तो इसके अर्थ का बोध होते ही कवि की कवित्व शक्ति का भान हो जाता है।

इस इकाई में आपने जाना कि घनानंद मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रँगीले के मुंशी थे। माना जाता है कि ये दरबार की एक नर्तकी के प्रेम में पड़ गए थे, जिसका नाम था- सुजान। लेकिन एक बार सुजान के कठोर व्यवहार से इनके हृदय को ऐसी गहरी बड़ी ठेस पहुँची कि इनके जीवन की दिशा ही बदल गई। कवि ने राज दरबार त्यागकर दीक्षा ली, किंतु यह नाम (सुजान) उन्होंने कभी न छोड़ा। उन्होंने सुजान को संबोधित और समर्पित अनेक भावपूर्ण कवित्त रचे। इन कवित्तों ने उन्हें अ पार ख्याति दिलाई। वे कृष्ण के नाम के स्थान पर सुजान कहते रहे

और कई दर्जन छोटे बड़े ग्रंथ बन गए। इस प्रकार महान प्रेमी, ब्रजभाषा प्रवीण, सुंदरता के पारखी, योग-वियोग और रति तथा प्रेम के ज्ञाता के रूप में घनानंद स्थापित हुए।

इस इकाई में सम्मिलित पहले पद का आध्यात्मिक अर्थ भी लगाया जा सकता है। जीव जब स्वयं के प्रति असावधान होता है तब उसकी जो दशा होती है, यहाँ उसका खुलासा किया गया है। आत्मा की परमात्मा से मिलन की आतुरता भी देखी जा सकती है। इस पद में आध्यात्मिकता का आभास होने का कारण इस पद में अभिव्यक्त प्रेम का उदात्त वर्णन है।

ध्यान देने वाली बात यह भी है कि घनानंद के प्रेम में 'पजेसिव-नेस' (मालिकाना हक़) नहीं है। बल्कि दूसरे पक्ष के निर्णय के लिए सम्मान प्रदर्शन का भाव है। घनानंद प्रेम का एक आदर्श रूप प्रशस्त करते हैं। घनानंद का प्रेम शारीरिक नहीं बल्कि भावात्मक है।

24.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए –

1. ब्रजभाषा प्रवीण घनानंद ने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति को रीति के बंधन से मुक्त रखा है।
2. घनानंद की कविता उनके जीवन दर्शन का दर्पण है।
3. घनानंद का प्रेम संपूर्ण समर्पण और उदात्त भाव से प्रेरित है।
4. घनानंद ने लौकिक प्रेम और विरह को आध्यात्मिक ऊंचाई तक पहुँचाया।
5. रीतिकालीन स्वच्छंद कविता धारा में शृंगार के साथ भक्ति का भी पूत विद्यमान है।

24.6 शब्द संपदा

1. अनुभाव = मनोगत भाव की सूचक बाह्य क्रियाएँ या चेष्टाएँ, प्रभाव
2. अभिव्यंजना = मन के भावों का शब्दों में चित्रण या रूपविधान। वह बात जो अभिव्यंजन के रूप में प्रकट की गई हो
3. आलंबन = सहारा, नींव
4. उद्दीपन = उत्तेजित करना, प्रज्वलित करना
5. काव्य गुण = काव्य में आंतरिक सौंदर्य तथा रस के प्रभाव एवं उत्कर्ष के लिए स्थायी रूप से विद्यमान मानवोचित भाव और धर्म या तत्व को काव्य गुण या शब्द गुण कहते हैं। यह काव्य में उसी प्रकार विद्यमान होता है, जैसे फूल में सुगंध। काव्य की शोभा करने वाले और या रस को प्रकाशित करने वाले तत्व या विशेषता का नाम ही गुण है। काव्य गुण मुख्य रूप से तीन हैं -

ओज : ओज का शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप और दीप्ति। जिस काव्य को पढ़ने या सुनने से हृदय में ओज, उमंग और उत्साह का संचार होता है, उसे ओज गुण प्रधान काव्य कहा जाता हैं। यह गुण मुख्य रूप से वीर, वीभत्स, रौद्र और भयानक रस में पाया जाता है ।

प्रसाद : प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है निर्मलता, प्रसन्नता। जिस काव्य को पढ़ने या सुनने से हृदय या मन खिल जाए, हृदयगत शांति का बोध हो, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। इस गुण से युक्त काव्य सरल, सुबोध एवं सुग्राह्य होता है। जैसे अग्नि सूखे ईंधन में तत्काल व्याप्त हो जाती है, वैसे ही प्रसाद गुण युक्त रचना भी चित्त में तुरंत समा जाती है। यह सभी रसों में पाया जा सकता है।

माधुर्य : किसी काव्य को पढ़ने या सुनने से हृदय में जहाँ मधुरता का संचार होता है, वहाँ माधुर्य गुण होता है। यह गुण विशेष रूप से शृंगार, शांत, एवं करुण रस में पाया जाता है ।

6. नैराश्यपूर्ण = निराश होने की अवस्था या भाव। ऐसी स्थिति जिसमें मनुष्य निराश हो जाता हो। निराश होने के फलस्वरूप होनेवाली उदासी।

7. परिपाक = पकाया जाना, समाप्त होने की अवधि।

8. सुष्ठु = अतिशय, अत्यंत, अच्छी तरह, भली भाँति।

24.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।

1. कवि घनानंद का परिचय देते हुए उनकी कविता पर उनके व्यक्तित्व और व्यक्तिगत जीवन के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
2. 'भोर ते साँझ' सवैया प्रेम की पीड़ा को पूर्णतया अभिव्यक्त करता है। सिद्ध कीजिए।
3. "अति सूधो सनेह' के माध्यम से कवि ने किस प्रकार तर्क और उदाहरण देकर आज के पाठकों को भी प्रेम का सच्चा मार्ग दिखाया है, स्पष्ट कीजिए ।
4. पठित पदों के आधार पर घनानंद की काव्य कला का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'भोर ते साँझ' के आधार पर वियोगिनी की दिनचर्या का वर्णन कीजिए।
2. 'अति सूधो सनेह' के आधार पर घनानंद के प्रेम निरूपण की व्याख्या कीजिए।
3. घनानंद के पठित पदों के आधार पर उनकी काव्यगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।
4. किसी एक पठित पद के आधार पर घनानंद की कविता में 'प्रेम की पीर' पर प्रकाश डालिए।
5. घनानंद की प्रेम व्यंजना के महत्व और वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।
6. पठित पदों के आधार पर उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए कि कवि लक्षणा से अधिक व्यंजना का प्रयोग करके अपनी रचना में कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।
7. 'मन लेहू तो देहु छटाँक नहीं' पंक्ति के आधार पर विरहिणी की पीड़ा को व्यक्त कीजिए।
8. प्रेम के मार्ग को 'अति सूधो' कहकर कवि घनानंद क्या इंगित करना चाहते हैं?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

(क) घनानंद के लिए कौनसा विशेषण उपयुक्त होगा? ( )
(1) ब्रजभाषा प्रवीण (2) निर्गुण भक्त कवि (3) उत्तरमध्यकालीन वीर कवि

(ख) घनानंद की कविता है - ( )
(1) जीवन की गंभीर विवेचना करने वाली (2) भाषा का चमत्कार दिखने वाली
(3) शब्द चमत्कार के साथ अर्थ गौरव संपन्न

(ग) घनानंद के कवित्त-सवैयों की भाषा है - ( )
(1) खड़ीबोली (2) ब्रजभाषा (3) अवधी

(घ) घनानंद की कविता साहित्य की किस धारा के अंतर्गत रखी जा सकती है? ( )
(1) रीतिबद्ध (2) स्वच्छंद (3) भक्ति

(च) घनानंद काव्य में किस तत्व की प्रधानता है? ( )
(1) भक्ति (2) प्रेम (3) वीरता

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. घनानंद .... के दरबारी कवि थे।

2. .... नामक युवती से उन्हे प्रेम हो गया था।

3. 'अति सूधो सनेह' पद .... का उदाहरण है।

4. प्रिय की प्रतीक्षा .... पद का केंद्रीय भाव है।

5. प्रेम में सबसे पहले .... का त्याग करना होता है।

6. शब्द शक्ति के प्रयोग में कवि घनानंद ने लक्षणा से अधिक .... का प्रयोग किया है।

III सुमेल कीजिए।

1) छंद विधान	क) सुजान नर्तकी
2) भाषा	ख) कवित्त-सवैया
3) आसक्ति	ग) ब्रजभाषा

24.8 पठनीय पुस्तकें

1. घनानंद कवित्त, सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र.
2. घनानंद का शृंगार काव्य, रामदेव शुक्ल.
3. घनानंद : काव्य और आलोचना, किशोरी लाल.

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY
PROGRAMME: B.A (HINDI)
II – SEMESTER EXAMINATION
TITLE & PAPER CODE : मध्यकालीन हिंदी कविता
MADHYAKAALIN HINDI KAVITA - BAHN201CCT
TIME: 3 HOURS TOTAL MARKS:70

सूचनाएँ :-

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 और भाग - 3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्न लिखित सभी प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में देना अनिवार्य हैं।
10X1=10

i. कबीर को 'भाषा का डिक्टेटर' किसने कहा है ?
ii. सूरदास के गुरु का नाम बताइए।
iii. गोपियाँ किससे संवाद करती हैं ?
iv. 'रामचरित मानस' की रचना कब हुई ?
v. मीराबाई के गुरु का नाम बताइए।
vi. रसखान की मृत्यु कब हुई ?
vii. 'शिवराज भूषण' किसकी रचना है ?
viii. घनानंद के प्रेमिका का नाम बताइए ।
ix. रसखान का मूल नाम क्या है ?
x. कबीर का जन्म कब हुआ ?

भाग – 2

निम्न लिखित आठ प्रश्नों में से किन्ही पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दो सौ शब्दों में देना अनिवार्य है।

5X6 =30

2. सूरदास की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
3. तुलसीदास की भक्ति पद्धति के संबंध में रामचंद्र शुक्ल का क्या कथन है ?
4. मीरा बाई की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
5. रसखान की कृष्ण भक्ति का विवेचन कीजिए।
6. बिहारी की लोकप्रियता के बारे में बताइए।
7. भूषण के वीर रस पर प्रकाश डालिए।
8. घनानंद की भाषा की विशेताएँ बताइए।
9. बिहारी सतसई पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखकर उसका महत्व बताइए।

भाग- 3

निम्न लिखित पाँच प्रश्नों में से किन्ही तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर पाँच सौ शब्दों में देना अनिवार्य है।

3X10=30

10. झीनी झीनी बिनी चदरिया' इस पंक्ति का सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
11. 'वात्सल्य रस के प्रतिनिधि कवि के रूप में सूरदास का परिचय दीजिए।
12. 'दया धर्म का मूल है, पाप मल अभिमान। तुलसी दया न छांड़िए, जब तक घट में प्राण।।' इस दोहे की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
13. 'घनानंद प्रेम की पीर के कवि है' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
14. भूषण के साहित्यिक प्रदेय का आकलन कीजिए।